बी०टी०सी० द्वितीय सेमेस्टर

सामान्य विषय – 02

सामाजिक अध्ययन

राज्य शिक्षा संस्थान, उ0प्र0,
इलाहाबाद

ch0Vh0lh0 f}rh; lsesLVj

मुख्य संरक्षक	:	**श्री एच0एल0गुप्ता,** आई.ए.एस., सचिव, बेसिक शिक्षा, उ0प्र0, शासन, लखनऊ
संरक्षक	:	**सुश्री कुमुदलता श्रीवास्तव,** आई.ए.एस. राज्य परियोजना निदेशक, सर्व शिक्षा अभियान, लखनऊ
निर्देशन	:	**श्री सर्वेन्द्र विक्रम बहादुर सिंह, निदेशक,** राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, उ0प्र0
समन्वयन	:	**श्री दिब्यकान्त शुक्ल, प्राचार्य,** राज्य शिक्षा संस्थान, उ0प्र0, इलाहाबाद
परामर्श	:	**श्री अजय कुमार सिंह, संयुक्त निदेशक,** (एस0एस0ए0) राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, उ0प्र0, लखनऊ
लेखक	:	श्रीमती सुषमा यादव, श्रीमती नीलम मिश्रा, श्रीमती मंजुलेश विश्वकर्मा, डॉ0 संध्या सिंह, श्रीमती उषा अग्रवाल, श्रीमती निहारिका कुमार, श्रीमती दीपा मिश्रा, श्रीमती अंशिका यादव, श्री केशव कुमार, श्री रवीन्द्र प्रताप सिंह, श्रीमती अस्मत नीलो अन्सारी, श्रीमती शाबाना परवीन, श्रीमती अनिल कुमारी शुक्ला, सुमिता, श्रीमती अरूणा, श्रीमती दीपिका यादव, श्रीमती सुनीता उपाध्याय, श्रीमती जया शुक्ला, श्री अशोक कुमार।
कम्प्यूटर कम्पोजिंग	:	राजेश कुमार यादव

कक्षा शिक्षण : विषयवस्तु–सामाजिक अध्ययन

इतिहास :–

- ❖ भारत वर्ष में प्रथम साम्राज्य की स्थापना– मौर्यकाल, गुप्तकाल, वर्धनवंश।
- ❖ सामन्तवाद कालीन भारत– राजपूतों का उदय, प्रमुख राजवंश एवं उनकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियाँ।
- ❖ दक्षिण भारत के प्रमुख राजवंश –चालुक्य, पल्लव, चोल, राष्ट्रकूट एवं उनकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियाँ।
- ❖ अरब में इस्लाम धर्म का उदय, भारत में इसका आगमन व प्रभाव, तुर्क आक्रमण– मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी, मोहम्मद गौरी के आक्रमण व उनका प्रभाव।
- ❖ सल्तनतकालीन भारत––दिल्ली सल्तनत स्थापना एवं सुदृढ़ीकरण–दास व गुलामवंश, खिलजीवंश, तुगलक वंश–दक्षिण में बहमनी व विजयनगर राज्य की स्थापना। सल्तनत का विघटन–मंगोल, आक्रमण व उसका प्रभाव–तैमूर व चंगेज खाँ, सैय्यद वंश व लोदी वंश।
- ❖ सल्तनत कालीन उपलब्धियाँ– प्रशासनिक, सांस्कृतिक, कलात्मक साहित्यिक, आर्थिक, सल्तनकालीन समाज, भक्ति आंदोलन व सूफीमत।

भूगोल :–

- ❖ सूर्य, पृथ्वी, चन्द्रमा व प्राकृतिक शक्तियों का मानव जीवन पर प्रभाव, चन्द्रमा की कलाएं, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण।
- ❖ पृथ्वी के प्रमुख परिमण्डल– स्थलमंडल, वायुमण्डल, जलमण्डल, जीवमण्डल।
- ❖ स्थाल मण्डल– पृथ्वी की आंतरिक संरचना, शैल के प्रकार।
- ❖ धरातल के रूप बदलने वाले कारक– आंतरिक, पटलविरूपणी बल, आकस्मिक बल, (वलितपर्वत, ज्वालामुखी पर्वत, भूकम्प, प्रकार एवं प्रभावित क्षेत्र)।
- ❖ बाह्यबल अनाच्छादन–अपक्षय, अपरदन एवं इनसे बनने वाली भू–आकृतियाँ।
- ❖ वायुमण्डल– संघटन एवं संरचना, तापमान, वायुदाब, वायुदाबपेटियाँ, वायुमण्डल की आर्द्रता।
- ❖ पवन के प्रकार– स्थायी एवं अस्थायी (व्यापारिक, पछुआ, ध्रुवीय और मानसूनी), चक्रवात एवं प्रति चक्रवात।
- ❖ जलमण्डल– समुद्र व उसकी गतियाँ– समुद्री धाराएं तथा उनका तटवर्ती क्षेत्रों पर प्रभाव, ज्वार–भाटा।

नागरिक शास्त्र :–

- ❖ हमारा संविधान–
  - संविधान किसे कहते है?
  - संविधान के गठन की भूमिका।
  - संविधान का गठन ।
  - संविधान की प्रस्तावना एवं विशेषताएँ।
- ❖ नागरिकता
- ❖ मौलिक अधिकार, मौलिक कर्त्तव्य
- ❖ नीति निदेशक तत्व

अर्थशास्त्र :–

- ❖ उपभोक्त जागरूकता– उपभोक्ता शोषण के प्रकार, उपभोक्ताओं के अधिकार और कर्त्तव्य, उपभोक्ता सुरक्षा के उपाय।
- ❖ भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान– भारतीय कृषि की प्रमुख विशेषताएंव महत्व, भारतीय कृषि में उत्पादकता, हरित क्रांति व इसका प्रभाव, आर्थिक विकास, कृषि विकास हेतु सरकार द्वारा अपनाएं गए उपाय– भारतीय कृषि नीति।
- ❖ भारत का औद्योगिक विकास, प्रमुख उद्योग– लघुउद्योग, कुटीर उद्योग, भारत की नई औद्योगिक नीति, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ।

ekS;Z lkezkT;

भारतीय इतिहास में मौर्य साम्राज्य एक नए युग का क्रमबद्ध प्रारम्भ करता है। मौर्य साम्राज्य के उदय के पूर्व भारत असंख्य छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त था। मौर्यों ने एक केन्द्रीभूत शासन व्यवस्था स्थापित की जो आज भी समयानुकूल परिवर्तनों के साथ विद्यमान है। इस वंश के प्रमुख शासकों में चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार और अशोक के नाम उल्लेखनीय है।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- परिचय
- चन्द्रगुप्त मौर्य
- चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियाँ
- मेगस्थनीज
- चन्द्रगुप्त मौर्य के उत्तराधिकारी
- अशोक
- मौर्य प्रशासन
- मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण

चन्द्रगुप्त मौर्य

चन्द्रगुप्त मौर्य ने मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी। उसके सम्बन्ध में डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी का मत है कि ''सिकन्दर के चले जाने के उपरान्त भारत के राजनीतिक गगन मण्डल में एक नया सितारा निकला जिसने अपने प्रकाश से अन्य सभी को अन्धकार में डाल दिया।'' इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त का जन्म लगभग 345 ई0पू0 में मोरिय अथवा मौर्य वंश के क्षत्रिय कुल में हुआ था जो शाक्यों की एक शाखा थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने साम्राज्य का विस्तार कर समस्त भारत को एक राजनीतिक सूत्र में बाँधा। उसका साम्राज्य पश्चिम में हिन्दुकुश पर्वत से और पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में मैसूर तक विस्तृत था। चन्द्रगुप्त के विषय में जानने का मुख्य स्रोत कौटिल्य का अर्थशास्त्र एवं मेगस्थनीज की 'इण्डिका' है।

चन्द्रगुप्त की उपलब्धियाँ

चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य एक विशाल तथा संगठित केन्द्रीय भूल साम्राज्य की स्थापना करना चाहते थे। अपनी इस योजना को कार्यावित्त करने के लिए चन्द्रगुप्त ने निम्नलिखित प्रदेशों पर विजय प्राप्त की।

पंजाब पर विजय

चन्द्रगुप्त ने अपनी विजय पंजाब से आरम्भ की। पंजाब को अपने अधिकार में करने के उपरान्त सिकन्दर भारत से चला गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त भारतीयों ने यवनों के विरूद्ध विप्लव आरंभ कर दिया। उसने युनानियों को पंजाब से बाहर निष्कासित करना आरम्भ किया। 316 ई0 पूं0 में चन्द्रगुप्त सम्पूर्ण पंजाब पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

मगध राज्य पर विजय

अब चन्द्रगुप्त ने नन्दों का विनाश कर मगध साम्राज्य पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए पूर्व की ओर प्रस्थान कर दिया। नन्द राज घननन्द युद्ध में मारा गया। और चाणक्य ने 321 ई0पू0 में चन्द्रगुप्त को मगध के सिंहासन पर बैठा दिया।

मलय केतु के विद्रोह का दमन

मगध पर विजय प्राप्त करने के पूर्व ही चन्द्रगुप्त ने पर्वतक के साथ मैत्री कर ली। जो हिमालय पर्वत के कुछ जिलों में शासन कर रहा था। मगध पर जिस समय चन्द्रगुप्त को विजय प्राप्त हुई। उसके बाद ही पर्वतक की मृत्यु हो गयी और उसका पुत्र मलयकेतु राजा हुआ।

मुद्राराक्षस नाटक से हमें पता चलता है कि मलय केतु ने नन्दराज के मंत्री राक्षस तथा पाँच अन्य सामन्तों की सहायता से चन्द्रगुप्त के विरूद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। परन्तु चन्द्रगुप्त के मंत्री चाणक्य ने अपनी कूटनीति द्वारा विपक्षियों के फूट उत्पन्न कर दी। मलयकेतु ने विवश होकर चन्द्रगुप्त की अधीनता को स्वीकार कर ली।

दक्षिण भारत पर विजय

उत्तरी भारत पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त चन्द्रगुप्त ने दक्षिण भारत पर भी अपनी विजय पताका फहराने का साहस किया। महाक्षत्रप रूद्रदामन के जूनागढ़ के अभिलेख से पता चलता है कि सौराष्ट्र पर चन्द्रगुप्त का अधिकार था। संभवतः 303 ई0पू0 में मालवा उसके अधिकार में आया था और पुष्यगुप्त वैश्य राष्ट्रीय वहाँ के प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया गया था। जिसने सुदर्शनझील का निर्माण करवाया था। इससे यह निश्चित हो कि मालवा तथा काठियावाड़ उसके राज्य के अन्तर्गत थे।

सेल्यूकस के साथ संघर्ष

चन्द्रगुप्त का अंतिम संघर्ष सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस के साथ हुआ। 305 ई0पू0 में सेल्यूकस ने भारत पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में सेल्यूकस को विफलता का आलिंगन करना पड़ा। और जय लक्ष्मी चन्द्रगुप्त को ही प्राप्त हुई।

अतः सेल्यूकस संधि करने के लिए विवश हो गया। इस संधि की चार शर्ते थी। 1. वर्तमान अफगानिस्तान तथा बिलोचिस्तान का सम्पूर्ण प्रदेश जो खैबर दर्रे से हिन्दूकुश पर्वत तक फैला था सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को दे दिया। 2. सेल्यूकस ने अपनी कन्या का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ कर दिया। 3. चन्द्रगुप्त ने 500 हाथी उपहार के रूप में सेल्यूकस को भेंट किया। 4. दूतविनिमय हुआ जिसके फलस्वरूप युनानी राजदूत मेगस्थनीज पाटलिपुत्र में आया। चन्द्रगुप्त की इस विजय का एक अत्यंत महत्व पूर्ण परिणाम यह हुआ कि उत्तर पश्चिम में चन्द्रगुप्त की साम्राज्य की एक निश्चित वैज्ञानिक सीमा निर्धारित हो गई। क्योंकि उसके साम्राज्य का विस्तार अब हिन्दुकुश पर्वत तक हो गया।

मेगस्थनीज

मेगस्थनीज के अनुसार पाटलिपुत्र भारत का सबसे बड़ा नगर है यह गंगा एवं सोन नदियों के तट पर बसा है। यह नगर साढ़े नौ मील लम्बा तथा पौने दो मील चौड़ा है। उसने लिखा है कि चन्द्रगुप्त के राजभवन पाटलिपुत्र नगर में बने हुए थे। राजभवनों के चारों ओर सुन्दर उद्यान तथा सरोवर थे। पाटलिपुत्र की शासन व्यवस्था के बारे में लिखा है कि नगर का प्रबन्ध तीस सभासदों की एक समिति द्वारा होता था। यह समिति 6 उपसमितियों में विभक्त थी। प्रत्येक उपसमिति में पाँच सदस्य होते थे। प्रत्येक समिति अलग–अलग कार्य देखती थी। पहली समिति कला कौशल का दूसरी विदेशियों की देखभाल, तीसरी जन्म मरण का हिसाब, चौथी व्यापार का प्रबन्ध, पाँचवी व्यापारियों की वस्तुओं के क्रय–विक्रय, छठी कर अथवा चुंगी वसूल करती थी। सामूहिक रूप से नगर की समितियों के सदस्य नगर की सुव्यवस्था के लिए उत्तरदायी होते थे।

मौर्य प्रशासन

चन्द्रगुप्त मौर्य एक महान विजेता साम्राज्य संस्थापक होने के साथ–साथ एक अत्यन्त कुशल शासक भी था। उसके शासन की जानकारी हेतु दो प्रमुख साधन हैं कौटिल्य का अर्थशास्त्र एवं दूसरा यूनानी लेखकों के विवरण। 'अर्थशास्त्र' राजनीति ऐतिहासिक दृष्टिकोण से एक अमूल्य ग्रन्थ है। मेगस्थनीज की पुस्तक 'इण्डिका' का भी बहुत बड़ा महत्व है। यद्यपि यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है परन्तु जिन यूनानी लेखकों ने इस पुस्तक के आधार पर अन्य ग्रन्थों की रचना की है उनकी रचनाओं से पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो जाती है। मौर्य शासन प्रबन्ध का संक्षिप्त वर्णन निम्नवत् हैं–

केन्द्रीय शासन

चन्द्रगुप्त की शासन व्यवस्था एकतांत्रिक थी जिसमें सम्राट ही सम्पूर्ण शासन का प्रधान था। राज्य में उसी का अनुशासन एवं नियन्त्रण रहता था राजा प्रजा को अपनी सन्तान समझता था और उनके सुख–दुख के लिए उत्तरदायी समझा जाता था इसके लिए उसे कानून निर्माण, शासन, न्याय तथा सेना की सुव्यवस्था करनी पड़ती थी। शासन के कार्यों में राजा की सहायता के लिए मन्त्री होते थे। सम्राट पाँच प्रमुख विषयों पर मन्त्रियों की सलाह लेता था– देश रक्षा तथा विदेशों से सम्बन्ध, राज्य के आय के साधन, किसी कार्य का समय तथा स्थान का निर्धारण, आकस्मिक आपत्तियों के लिए व्यवस्था करना तथा कार्य सिद्धि अर्थात् शासन का सुचारू रीति से चलाना। शासन की सुविधा के लिए केन्द्रीय शासन कई विभागों में विभक्त था जिन्हें तीर्थ कहते थे। प्रत्येक विभाग का एक अध्यक्ष होता था जो अमात्य कहलाता था। इनका कार्य कर वसूलना था सेना का संचालन सम्राट स्वयं करता था। सेना का सर्वोच्च पदाधिकारी सेनापति होता था। चन्द्रगुप्त की सेना चतुरंगिणी थी जिसमें हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिक सम्मिलित थे। उसके पास एक जल सेना भी थी। सेना का प्रबन्ध एक मण्डल करता था। इस मण्डल में कुल 30 सदस्य होते थे।

आन्तरिक शन्ति तथा सुव्यवस्था बनाए रखने के लिए पुलिस की भी व्यवस्था थी। इसके अलावा गुप्तचरों की भी व्यवस्था थी। ये लोग राज्य के कर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण करते और लोगों के विचारों से सम्राट को अवगत कराते थे।

चन्द्रगुप्त के शासन काल में न्याय की बहुत अच्छी व्यवस्था थी। सम्राट स्वयं सबसे बड़ा न्यायाधीश था। नगरों के न्यायाधीश ***'व्यावहारिक महामात्र'*** और जनपदों के न्यायाधीश ***'राजुक'*** कहलाते थे। दीवानी अदालतों को ***'धर्मस्थ'*** और फौजदारी अदालतों को कण्टक शोधन कहा जाता था। दण्ड विधान अत्यन्त कठोर था। अपराध की गम्भीरता के अनुसार धिक्कार, बन्धन, अंग–भंग, निर्वासन अथवा मृत्यु दण्ड दिया जाता था।

चन्द्रगुप्त ने अपनी प्रजा के हित के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए। उसने यातायात की सुविधा के लिए मार्गों का निर्माण करवाया उनकी सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था की। सिंचाई की सुविधा के लिए झीलों तथा सरोवरों का निर्माण करवाया था। उसने अनेक चिकित्सालय खुलावाए थे। शिक्षा की समुचित व्यवस्था उसने अपने साम्राज्य में की थी।

चन्द्रगुप्त का शासन अत्यन्त सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित था। अतः सेना तथा शासन पर उसे अधिक धन व्यय करना पड़ता था। गाँव से धन प्राप्त करने के दो साधन थे 'भाग तथा बलि' जो भूमि की उपज का छठा भाग था भूमिकर एकत्रित करने वाले पदाधिकारी ***"अग्रम"*** कहलाते थे। दार्शनिकों, विद्वानों, वृद्धों, रोगियों, आपदाग्रस्तों तथा अपाहिजों की भी सहायता राजकीय कोष से की जाती थी।

प्रान्तीय शासन

चन्द्रगुप्त का साम्राज्य अत्यन्त विशाल था। अतएव शासन की सुविधा के लिए उसने साम्राज्य को कई भागों में प्रान्तों विभक्त कर दिया था। प्रत्येक प्रान्त कई आहारों तथा विषयों में विभक्त था। प्रान्तों का प्रबन्ध सम्राट अपने महामात्रों की सहायता से स्वयं करता था। दूरस्थ प्रान्तों के लिए राजकुमारों को नियुक्त किया जाता था।

स्थानीय शासन

गाँव का शासन तथा न्याय ***'ग्रामिक'*** किया करता था। ग्रामिक के ऊपर ***'गोप'*** होता था जिसके नियन्त्रण में पाँच से दस गाँव हुआ करते थे। गाँव का प्रबन्ध अत्यन्त सन्तोषजनक था। नगर का प्रधान प्रबन्धक नगराध्यक्ष कहलाता था। नगर के प्रबन्ध के लिए 6 समितियाँ होती थी प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य होते थे। यह समितियाँ थी–

1. **शिल्पकला समिति–** इस विभाग के सदस्य शिल्प तथा उद्योग–धन्धों का निरीक्षण तथा प्रबन्ध करते थे।
2. **विदेशी यात्री समिति–** इसका कर्तव्य विदेशियों को हर प्रकार की सुविधाएं देना था।
3. **जनगणना समिति–** यह समिति जन्म–मरण का हिसाब रखती थी।
4. **उद्योग समिति–** यह समिति कारखानों में बनी वस्तुओं की देखभाल करती थी।
5. **कर समिति–**यह समिति विक्रय की हुई वस्तुओं के मूल्य का दशमांश कर के रूप में वसूल करती थी।

वाणिज्य समिति

नाप–तौल का निरीक्षण करना, विक्रय की वस्तुओं का भाव निश्चित करना तथा माप का समुचित प्रबन्ध करना इस विभाग का कर्तव्य था।

चन्द्रगुप्त मौर्य के उत्तराधिकारी

बिंन्दुसार 'अमित्रघात' (300–272 ई0पू0)

चन्द्रगुप्त के पश्चात बिन्दुसार मौर्य साम्राज्य का राजा बना। बिन्दुसार इतिहास में अमित्रघात (शत्रुओं का संहारक) के नाम से भी विख्यात है। बिन्दुसार ने अपने पिता के साम्राज्य की सुरक्षा की उसने विद्रोहों को दबाया और विदेशी शासकों के साथ मित्रता का सम्बन्ध बनाए रखा बिन्दुसार एक धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था सम्भवतः उसकी इस प्रवृत्ति का प्रभाव अशोक पर पड़ा।

अशोक (273–ई0पू0 से 236 ई0पू0)

अशोक की गणना भारत के नहीं अपितु विश्व के महानतम शासकों में होती है। सम्भवतः वह विश्व का प्रथम शासक था जिसने साम्राज्यवादी नीति का त्याग किया तथा प्रजा को अपनी संतान के समान समझा। धर्म के साथ–साथ प्रशासनिक मामलों में भी अशोक की गहरी अभिरूचि थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने शासन काल में कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण पंजाब पर अधिकार कर लिया था। अतः जब अशोक मौर्य साम्राज्य का शासक बना तो उसने कश्मीर को विजित कर कश्मीर घाटी में श्रीनगर की स्थापना की। अशोक की कश्मीर विजय की पुष्टि कल्हण की राजतरंगिणी से होती है।

अशोक के जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण युद्ध कलिंग विजय थी। इस युद्ध ने अशोक को 'चंडाशोक' से 'धर्माशोक' में परिवर्तित कर दिया। अपने शासनकाल के 13 वें वर्ष में अशोक ने कलिंग राज्य पर आक्रमण किया था। कलिंग उस समय एक शक्तिशाली राज्य था। कलिंग के पास एक विशाल सेना थी। मगध के लिए अपने पड़ोस में ऐसे शक्तिशाली राज्य का होना मगध के अस्तित्व के लिए घातक था। अतः अशोक ने कलिंग की स्वतन्त्रता को समाप्त कर देने का निश्चय किया। कलिंग युद्ध में घायलों की संख्या 2,50,000 से अधिक दी लगभग 15,000 व्यक्ति इस युद्ध में कैद किए गए।

कलिंग युद्ध के परिणाम अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। युद्ध में हुए भीषण रक्तपात एवं घायलों आदि को देखकर अशोक ने अहिंसा की नीति अपना ली तथा सदैव के लिए युद्ध करना छोड़ दिया। अशोक की इस नीति का एक परिणाम यह भी हुआ कि इससे शनैःशनैः मगध साम्राज्य का पतन होना प्रारम्भ हो गया दूसरी ओर बौद्ध धर्म के प्रचार द्वारा भारतीय संस्कृति का प्रचार विदेशों में हुआ।

धार्मिक नीति– अशोक का 'धम्म' विश्व इतिहास में अशोक इसलिए महान नहीं है कि वह चक्रवर्ती सम्राट था बल्कि उसने मानव की नैतिक उन्नति के लिए जीवन पर्यन्त प्रयास किया। सत्य, अहिंसा और जीव के कल्याण को अपने जीवन का अभिन्न हिस्सा माना। कलिंग युद्ध के पश्चात् उसका हृदय परिवर्तन हुआ और उसने अपना सारा ध्यान मानव कल्याण हेतु लगा दिया। इसके लिए उसने जिन

नियमों एवं सिद्धान्तों का विकास और प्रचार किया वे इतिहास में **'धम्म'** के नाम से जाने जाते हैं। यद्यपि इतिहासकार अशोक को बौद्ध धर्मावलम्बी मानते हैं तथापि अशोक का धर्म कोई संकीर्ण अथवा साम्प्रदायिक धर्म नहीं था। उसने मानव जीवन को सुखी तथा पवित्र बनाने के उद्देश्य से कुछ आन्तरिक गुणों तथा आचरण का विधान किया था। अशोक के धम्म के अन्तर्गत अनेक बातें सम्मिलित थीं– 1. माता–पिता, गुरूजनों तथा वृद्धों की सेवा एवं आदर सम्मान। 2. ब्राहमणों, श्रमणों, सम्बन्धियों, मित्रों, वृद्धों तथा दीन–दुखियों के प्रति दयाभाव। 3. दया, दान, सत्य, संयम, कृतज्ञता, दृढ़भक्ति, शौच तथा माधुर्य आदि गुणों का आचरण करना चाहिए। 4.सेवकों तथा श्रमिकों के साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए। 5. अल्पव्यय तथा अल्प संग्रह करना चाहिए। 6. निषेधात्मक आदेशों में उसने कम से कम पाप करने पर बल दिया था इसके लिए निष्ठुरता, क्रोध, अभिमान। ईर्ष्या आदि दुर्गुणों से दूर रहने का उपदेश दिया था। 7. धार्मिक भावना तथा आचरण के विकास के लिए उसने समय–समय पर आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता पर विशेष बल दिया।

अशोक के धर्म की विशेषताएं

अशोक के धम्म के आदर्शों एवं सिद्धान्तो की विवेचना करने पर अशोक के धम्म में निम्नलिखित विशेषताएं परिलक्षित होती हैं–

सार्वभौमिकता

अशोक के धर्म को सार्वभौम कहा जा सकता है क्योंकि इस धर्म में उन उपदेशों का समावेश है जो सभी धर्मों में समान रूप से मान्य है। इस धर्म में साम्प्रदायिकता के लिए कोई स्थान न था।

सहिष्णुता

सार्वभौम होने के कारण इसमें सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान थ। यह धर्म ***''वसुधैव कुटुम्बकम्''*** के सिद्धान्त का अनुमोदन करता था।

तत्वों पर बल

अशोक के धर्म में सभी धर्मों के साथ अथवा मूल तत्व पर जोर दिया गया था न कि वाह्य आडम्बरों पर। यह धर्म दार्शनिक सिद्धान्तों के स्थान पर व्यावहारिक कर्तव्यों तथा आचरणों पर बल देता था।

नैतिकता तथा आचरण की प्रधानता

अशोक के धर्म में नैतिकता तथा आचरण की प्रधानता थी। यह धर्म शुद्ध नैतिक धर्म था और इसका सीधा सम्बन्ध मनुष्यों के आचरण तथा कर्मों से था। इस धर्म में आचरण की एक नियमावली थी जिसके अनुसार ही व्यवहार करना पड़ता था।

अहिंसा

अशोक का धर्म अहिंसात्मक था जिसमें न केवल मनुष्यों वरन् पशुओं की भी हत्या का निषेध था। इस धर्म में सभी प्राणियों पर दया दिखाने का अनुरोध किया गया था।

अन्य धर्मों का सम्मान

अशोक के धर्म में इस बात की छूट थी कि लोग इस धर्म को स्वीकार करते हुए भी विभिन्न धर्मों तथा सम्प्रदायों के लोग अपने धर्म में विश्वास रख सकते हैं।

मौर्य कालीन संस्कृति

सामाजिक दशा

मेगस्थनीज के विवरण तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि मौर्यकाल में वर्णव्यवस्था का पूर्ण विकास हो चुका था। समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार वर्णों में विभाजित था। मेगस्थनीज के अनुसार समाज 1. दार्शनिक 2. कृषक 3. गोपालक 4. शिल्पी 5. योद्धा 6. निरीक्षक अथवा गुप्तचर 7. मन्त्री इन सात जातियों में विभक्त था। समाज नैतिक दृष्टि से उच्चकोटि का था। स्त्रियों की स्थिति सन्तोषजनक थी। भोजन में ये लोग गेहूँ, चावल, जौ, फल, दूध, दही आदि लेते थे। गायन, वादन, नृत्य, नाटक, रथदौड़, शिकार, मल्लयुद्ध आदि लोगों के मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। मौर्यकालीन लोग आभूषण पहनने के शौकीन थे तक्षशिला, बनारस, उज्जयिनी इस काल के शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। झूठ, चोरी आदि से लोग घृणा करते थे।

आर्थिक दशा

मौर्यकाल में कृषि एवं कृषकों पर विशेष ध्यान दिया जाता था। अर्थशास्त्र में ब्रीहि (साठी धान), शामिल (अगहनी धान) मूँग, उड़द, अंगूर, कपास, जामुन, बेर, आँवला आदि का उल्लेख मिलता है। व्यापार जल एवं स्थल दोनों मार्गों से होता था। तक्षशिला, काशी, उज्जैन, कौशाम्बी, पाटलिपुत्र आदि मुख्य आन्तरिक व्यापारिक केन्द्र थे।

धार्मिक दशा

मौर्यकाल में ब्राह्मण धर्म प्रमुख धर्म था। ब्राह्मण धर्म के अतिरिक्त बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म के भी अनुयायी थे।

मौर्यकालीन कला

स्तूप मौर्यकालीन वास्तु कला के सर्वोत्तम उदाहरण है। स्तूप किसी महान व्यक्ति की स्मृति को यथावत रखने के लिए बनाया जाता है। ठोस पाषाण स्तम्भ भी कला के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। मौर्यकालीन स्तम्भों के निर्माण में चुनार के बलुआ पत्थर का प्रयोग किया जाता था। मौर्यकालीन भवनों में भी कलात्मकता दृष्टिगोचर होती थी। प्रारम्भ में भवन निर्माण में लकड़ी व ईंटों का प्रयोग होता था। अशोक के समय में भवन निर्माण में पत्थर का भी प्रयोग होने लगा। गुफाओं में बाराबर और नागार्जुनी की गुफाएँ कलात्मक है। मौर्यकालीन मूर्तियो में मथुरा के पास परखम से मिली यक्ष की मूर्ति, बेसनगर की स्त्री की मूर्ति उल्लेखनीय है।

मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण

मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए अनेक कारण उत्तरदायी इनमें मुख्य कारण इस प्रकार हैं–

अशोक के अयोग्य उत्तराधिकारी

अशोक की मृत्यु के बाद कुणाल, दशरथ, संप्रति, शालिशक, देवमर्वा, शतधनुष और बृहद्रथ उत्तराधिकारी हुए। सभी में यह योग्यता नहीं थी कि ये इतने बड़े साम्राज्य को बनाए रखते। मौर्यवंश का अन्तिम शासक बृहद्रथ था। वह एक अयोग्य शासक था। उसने राजकाज एवं सैनिक मामलों में कोई दिलचस्पी नहीं ली वरन् अपना सारा समय भोग विलास में व्यतीत करता था। इसका लाभ उठाकर बृहद्रथ के सेनापति पुष्पमित्र शुंग ने राजा की हत्या कर सत्ता हथिया ली और मौर्य वंश का अन्त कर दिया।

साम्राज्य की विघटनकारी प्रवृत्ति

अशोक की मृत्यु के साथ ही साम्राज्य की विघटनकारी शक्तियां सशक्त एवं सक्रिय हो गई जिन पर मौर्य शासक नियन्त्रण नहीं रख सके। धीरे–धीरे स्थानीय शासकों ने अपने को स्वतन्त्र कर मौर्य साम्राज्य को अत्यन्त संकुचित कर दिया।

आन्तरिक अव्यवस्था

मौर्य साम्राज्य के पतन में आन्तरिक अव्यवस्था ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया मौर्य साम्राज्य की विशालता के कारण उस पर साधनों के अभाव में नियन्त्रण रख पाना कठिन था। जिसका लाभ उठाकर प्रान्तीय अधिकारी शक्तिशाली और स्वतन्त्र होते गए।

अधिकारियों के अत्याचार

चन्द्रगुप्त मौर्य ने कठोर प्रशासनिक व्यवस्था द्वारा साम्राज्य पर नियन्त्रण बनाए रखा था। अशोक के पश्चात राज्य का कर्मचारियों पर से नियन्त्रण ढीला पड़ गया, जिससे वे अत्याचारी और उत्पीड़क बन गए इसलिए जब पुष्पमित्र ने बृहद्रथ की हत्या कर सत्ता हथिया ली तो जनता ने मौर्यों के लिए आंसू नहीं बहाए।

यवन आक्रमण

यवन या यूनानी आक्रमणकारियों ने लड़खड़ाते मौर्य साम्राज्य पर प्रहार कर इसे मृत प्राय बना दिया।

आर्थिक कारण

मौर्य साम्राज्य के प्रारम्भ में राज्य ने आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए कठोर कदम उठाए जिसके कारण राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ हुई किन्तु धीरे–धीरे राज्य में आर्थिक संकट छा गया जो मौर्य साम्राज्य के पतन का एक कारण बना।

अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियों का विवरण दीजिए।

2. मौर्य प्रशासन की विशेषताओं का उल्लेख करिए।

3. मेगस्थनीज की इण्डिका मौर्यों के सम्बन्ध में क्या–क्या विवरण प्रस्तुत करती है।

4. मानव की नैतिक उन्नति करना अशोक के धम्म का एक प्रयास था इस आधार पर अशोक के धम्म की विशेषताओं का निरूपण कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. चन्द्रगुप्त मौर्य के समय की नगर–समितियों के बारे में आप क्या जानते हैं?

2. मौर्य प्रशासन के अन्तर्गत केन्द्रीय शासन की विशेषताओं का उल्लेख करिए।

3. अशोक के धम्म में क्या–क्या बातें सम्मिलित थीं।

4. मौर्य साम्राज्य के बारे में मेगस्थानीज ने क्या लिखा है।

5. मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।

6. कलिंग युद्ध का अशोक के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा ?

अतिलघु प्रश्न

1. मौर्यों के विषय में जानने का मुख्य स्रोत क्या है ?

2. मौर्य प्रशासन में तीर्थ क्या था।

3. जनगणना समिति क्या कार्य करती थी।

4. अशोक धम्म की कोई एक विशेषता लिखिए।

5. मौर्य साम्राज्य के पतन का मुख्य कारण आपके विचार से क्या था ?

6. 'अर्थशास्त्र' के लेखक कौन हैं ?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. चन्द्रगुप्त मौर्य का जन्म हुआ था–

(क) लगभग 340 ई0पू0 (ख) लगभग 345 ई0पू0 (ग) लगभग 347 ई0पू0 (घ) लगभग 349 ई0पू0 में।

2. मौर्य शासन में सेना का प्रबन्ध करने वाले मण्डल में सदस्य होते थे।

(क) 20 (ख) 30 (ग) 10 (घ) 40

3. अमित्रघात के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है–

(क) चन्द्रगुप्त (ख) बिन्दुसार (ग) अशोक (घ) दशरथ

4. मौर्य प्रशासन में भूमिकर एकत्रित करने वाले अधिकारी कहलाते थे–

(क) अमात्य (ख) मंत्री (ग) अग्रम (घ) सेनापति।

xqIr oa'k ds 'kkld

गुप्त साम्राज्य

गुप्त काल का भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। इस काल से भारतीय इतिहास में एक नए युग का आरम्भ होता है। राजनैतिक दृष्टिकोण से यह राजनैतिक एकता का पुनः स्थापना का काल था। मौर्य–साम्राज्य के उपरान्त भारत की राजनैतिक एकता समाप्त हो गई थी। इस लुप्त प्राय राजनीतिक एकता को पुनः स्थापित करने का श्रेय गुप्त सम्राटों को ही है। गुप्तकाल से हमें क्रमबद्ध इतिहास प्राप्त होने लगता है।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु–
- परिचय
- गुप्त वंश के शासक
- चन्द्रगुप्त प्रथम की उपलब्धियाँ
- समुद्रगुप्त को उपलब्धियाँ
- चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' की उपलब्धियाँ
- फाह्यान
- कुमार गुप्त
- स्कन्दगुप्त
- गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण
- गुप्तकालः स्वर्णयुग
- हूण आक्रमण

श्री गुप्त (275–300 ई0)– गुप्त अभिलेखों के अनुसार गुप्त राजवंश की स्थापना आदिराज महाराज गुप्त द्वारा 275 ई0 में की गयी थी। परवर्ती गुप्त लेखों में इनका नाम श्री गुप्त मिलता है। गुप्त वंश के सस्थापक के नाम को लेकर विद्वानों में मत–भेद है कुछ के अनुसार इनका नाम श्री गुप्त था तथा कुछ के अनुसार इनका नाम केवल गुप्त था।

गुप्त अभिलेखों में श्री गुप्त के लिए महाराज उपाधि का प्रयोग किया गया है। जिससे प्रतीत होता है कि श्री गुप्त स्वतंत्र शासक नही था।

घटोत्कच (300–319 ई0)

श्री गुप्त कि मृत्यु के पश्चात इसका पुत्र घटोत्कच शासक हुआ। इसने भी महाराज की उपाधि धारण की। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि घटोत्कच भी स्वतन्त्र शासक न होकर किसी के अधीन शासक था।

चन्द्रगुप्त प्रथम (319–328 ई0)

घटोत्कच के पश्चात उसका पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम गुप्त साम्राज्य का शासक बना। गुप्त अभिलेखों से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम गुप्त वंश का प्रथम महान शासक था। जिसने सर्वप्रथम महाराजाधिराज की उपाधि धारण की थी। अतः कहा जा सकता है कि निश्चय ही वह अपने पूर्वजों से कही अधिक शक्तिशाली राजा रहा होगा। चन्द्रगुप्त की उपलब्धियों एवं राजनीतिक घटनाओं के बारे में बहुत कम ही जानकारी प्राप्त होती है। चन्द्रगुप्त प्रथम की उपलब्धियों अथवा उसके शासन काल की घटनाओं का वर्णन निम्नलिखित शीर्ष को के माध्यम से किया जा सकता है।

1. गुप्त संवत का प्रचलन

गुप्त संवत का प्रचलन चन्द्रगुप्त प्रथम के शासन काल की प्रमुख घटना है। चन्द्रगुप्त प्रथम ने 319–320 ई0 में संवत का प्रचलन किया। चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा स्थापित यह संवत् इतिहास में गुप्त संवत् के नाम से जाना जाता है।

2. महाराजाधिराज की उपाधि धारण करना

चन्द्रगुप्त प्रथम गुप्त वंश का प्रथम ऐसा शासक था। जिसने अपने बाहुबल के आधार पर एक स्वतन्त्र राज की स्थापना की और महाराजाधिराज की उपाधि धारण की।

3. समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी के रूप में निर्वाचन

सामान्यतः किसी शासक की मृत्यु के पश्चात ही उत्तराधिकारी शासक बनता था। किन्तु चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने जीवन काल में समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था।

समुद्रगुप्त

समुद्रगुप्त के विषय में अनेक शिलालेख, स्तम्भ लेख, मुद्रा, साहित्यक ग्रन्थ आदि से जानकारी प्राप्त होती है। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति जो उसके सम्बन्ध में ठोस जानकारी प्रदान करती है को सर्वाधिक प्रामाणिक माना गया है। शासक बनते ही समुद्र गुप्त ने साम्राज्य की चतुर्मुखी उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने भारत को एक राजनैतिक सूत्र में बाँधने का हर सम्भव प्रयास किया।

समुद्रगुप्त की विजय

सिंहासन पर आसीन होने के पश्चात समुद्रगुप्त ने भारत को एक राजनीतिक सूत्र में बाँधने के उद्देश्य से दिग्विजय की योजना बनायी अपनी इस योजना के अनुसार उसने उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के अनेक राज्यों को विजित कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से उसके विजय अभियान को निम्नवत् बाँटा जा सकता है–

आर्यावर्त का प्रथम सैन्य अभियान

प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त ने उत्तरी भारत जिसे आर्यावर्त भी कहा जाता है पर दो बार आक्रमण किया। अपने प्रथम अभियान में समुद्रगुप्त ने तीन शासक अच्युत, नागसेन, तथा कोट कुलज वंश के राजा को पराजित किया।

दक्षिणापथ का अभियान

उत्तरी भारत में अपनी स्थिति मजबूत करने के पश्चात समुद्रगुप्त ने दक्षिण को ओर ध्यान दिया। सम्भवतः अपने इस अभियान पर समुद्रगुप्त 346 ई0 में पाटलिपुत्र से चला। दक्षिण में उसने जिन राजाओं को पराजित किया उनके नाम प्रयाग प्रशस्ति में नहीं मिलते है पर पराजित राज्यों के नाम

मिलते है। जो इस प्रकार है। 1. कौशल 2. महाकान्तार 3. कोराल 4.पिष्टपुर 5. कोहर 6. एरण्डपल्ल 7. काँची 8. अवमुक्त 9. बेंगी 10. पालम्क 11. देवराष्ट्र 12. कुरूथलपु। विभिन्न स्रोतो से ज्ञात होता है कि इन राज्यों के क्रमशः शासक थे, महेन्द्र–व्याघ्रराज मंटराल, महेन्द्रगिरि, स्वामीदत्त, दमन, विष्णुगोप, नीलराज, हस्तिवर्मन, उग्रसेन, कुबेर तथा धनंजय।

दक्षिण नीति– समुद्रगुप्त ने अपने दक्षिण अभियान में 12 राज्य के राजाओं को पराजित कर अपने अधीन किया। उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत के बीच बहुत अधिक दूरी थी इसलिए उत्तरी भारत से दक्षिण भारत पर शासन करना न केवल मुश्किल वरन् असम्भव था। अतः समुद्रगुप्त ने दक्षिण भारत के राज्यों को विजित कर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। वहीं दक्षिण में उसने जिन राजाओं को विजित किया उनके राज्यों को उसने वापस कर दिया।

आर्यावर्त का द्वितीय सैन्य अभियान

दक्षिणापथ विजय का सैन्य अभियान पूरा करने के बाद समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त पर पुनः आक्रमण की योजना बनाई क्योंकि जब वह दक्षिण अभियान पर था उस समय उत्तरी भारत अथवा आर्यावर्त में पराजित शासकों ने अपनी शक्ति पुनः संगठित कर ली थी। समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त के द्वितीय सैन्य अभियान में नौ राजाओं – 1. रूद्रदेव 2. मतिल 3. नागदत्त 4. चन्द्रवर्मन 5. गणपति नाग 6. नागसेन 7. अच्युत 8. नन्दि 9.बलवर्मा को पराजित कर उनके राज्यों को गुप्त साम्राज्य में मिला लिया।

4. मध्य भारत अथवा आटविक राज्यों पर विजय

प्रयाग प्रशस्ति के विवरणानुसार आर्यावर्त को विजित करने के बाद समुद्रगुप्त ने मध्य भारत अथवा आटविक राजाओं को पराजित कर उनके साम्राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लिया। आटविक राजाओं में कौन से प्रदेश सम्मिलित थे यह अस्पष्ट है।

5. सीमान्त राज्यों पर विजय

समुद्रगुप्त की विजयों से सीमान्त राज्यों के राजा भयभीत हो गये। अतः जब समुद्रगुप्त ने उन पर आक्रमण किया तो कुछ राजाओं ने तो बिना युद्ध किये ही तथा कुछ ने युद्ध में पराजित होने के बाद समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर ली। साथ ही इन राज्यों के राजाओं ने समुद्रगुप्त को वचन दिया कि वे वार्षिक कर देने के अतिरिक्त हर सम्भव उसे (समुद्रगुप्त) सन्तुष्ट रखने का प्रयास करेगें। समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार करने वाले सीमान्त राज्य निम्नलिखित थे–

समतट– यह पूर्वी बंगाल का समुद्रतटीय प्रदेश था। इसको राजधानी कमन्ति थी।

दवाक– डॉ0 स्मिथ के अनुसार उत्तरी बंगाल के बोगरा दीनाजपुर और राजशाही के जिला इस राज्य में शामिल थे।

कामरूप– आधुनिक आसाम के प्रदेश प्राचीन काल में कामरूप के नाम से जाने जाते थे।

नेपाल– नेपाल से तात्पर्य आधुनिक नेपाल राज्य से है।

कर्तपुर– इस राज्य में सम्भवतः कुमायूँ गढ़वाल और रूहेलखण्ड के प्रदेश आते हैं।

गणराज्यों की विजय– समुद्रगुप्त की विजयों से भयभीत होकर गणराज्यों जिनकी संख्या 9 थी। इन्होंने बिना युद्ध किये ही समुद्रगुप्त की आधीनता स्वीकार कर ली। ये गणराज्य थे– 1.मालवा– (मन्दसौर प्राचीन दशपुर) 2. अर्जुनायन आगरा तथा जयपुर 3. यौधेय 4. मद्रक 5. प्रार्जुन 6. आभीर 7.सनकानीक 8. काक 9. खरपरिक

अश्वमेघ यज्ञ– अपनी विजयों के उपलक्ष्य में समुद्रगुप्त ने अश्वमेघ यज्ञ का आयोजन किया और महाराजाधिराज को उपाधि धारण की। इस अवसर पर उसने ब्राह्मणों को प्रचुर मात्रा में दान दिया तथा सोने के सिक्के चलवाए, सोने के यह सिक्के विभिन्न प्रकार के थे। इनमें सर्वाधिक प्रमुख अश्वमेघ प्रकार का सिक्का था। समुद्रगुप्त के चरित्र के विभिन्न गुणों का वर्णन निम्नलिखित शीर्षक के माध्यम से किया जाता है–

महान विजेता– समुद्रगुप्त की गणना भारत के ही नहीं बल्कि विश्व के गिने चुने विजेताओं में की जाती है। उसने अपने पिता से प्राप्त छोटे से राज्य को अपनी विजयों से अत्यधिक विस्तृत कर दिया था।

निपुण सेनानायक– महान विजेता होने के साथ ही समुद्रगुप्त एक निपुण सेना नायक था उसमें एक अच्छे सेनानायक के सभी गुण विद्यमान थे। यही कारण है कि विन्सेन्ट स्मिथ ने समुद्रगुप्त की तुलना विश्व के महान सेना नायक नेपोलियन बोनापार्ट से कि है और उसे भारतीय नेपोलियन की संज्ञा से विभूषित किया।

3. प्रजा हितैषी सम्राट – सर्वेसर्वा होते हुए भी वह निरंकुश शासक नहीं था। वास्तव में वह प्रजा के हित को सर्वोपरि रखता था। वह ***'दुखी'*** और गरीब व्यक्तियों की हमेशा सहायता करने के लिए तत्पर रहता था।

बहुमुखी प्रतिभा– समुद्रगुप्त के चरित्र में बहुमुखी प्रतिभा स्पष्ट रूप से विद्यमान थी।

महानकूटनीतिज्ञ– एक महान विजेता होने के साथ ही समुद्रगुप्त दूरदर्शी और महान कूटनीतिज्ञ भी था। छोटे–छोटे राज्यों को जीत कर अपने साम्राज्य में मिलाना दक्षिण के राज्यों को अपने अधीन रखना तथा सीमान्त राज्यों को अपना सेवक बना कर छोड़ देना उसकी कूटनीतिज्ञता का ज्वलंत प्रमाण है।

साहित्य एवं कला प्रेमी– समुद्रगुप्त एक उच्च कोटि का विद्वान, कवि व साहित्यकारों का संरक्षक था। उसने अपने दरबार में बहुत से विद्वानों को संरक्षण दे रखा था। उसके काल के सिक्के यह प्रमाणित करते थे कि वह उच्च कोटि का संगीतज्ञ भी था। महाकवि हरिषेण उसका मंत्री तथा दरबारी था।

कुशल शासक– समुद्रगुप्त में एक कुशल शासक के सभी गुण विद्यमान थे। उसने अपने शासन काल में एक सुव्यवस्थित शासन प्रबन्ध की व्यवस्था की थी। शासन सुविधा की दृष्टि से उसने अपने साम्राज्य को भुक्तियों, विषयों तथा ग्रामों में विभाजित कर रखा था। उसने स्थानीय सरकारों को आन्तरिक मामलों में पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर रखी थी। शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए उसने अनेक मंत्रियों

की नियुक्त की थी। इन मंत्रियों के अधीन कोई न कोई विभाग रहता था। प्रशासन में वह अपने मंत्रियों का परामर्श भी लेता था।

रामगुप्त

समुद्रगुप्त के दो पुत्र थे। राम गुप्त और चन्द्रगुप्त। विशाखदत्त के नाटक देवीचन्द्रगुप्तम के अनुसार रामगुप्त समुद्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र था। अतः अपने पिता की मृत्यु के बाद वह गुप्त सिहासंन पर आसीन हुआ। रामगुप्त एक अत्यन्त ही विलासी निर्बल एवं भीरू प्रकृति का व्यक्ति था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (380–414 ई0)

चन्द्रगुप्त द्वितीय समुद्रगुप्त का छोटा पुत्र तथा राम गुप्त का छोटा भाई था। राम गुप्त एक अयोग्य कायर तथा विलासी शासक था। अतः वह लम्बे समय तक शासन न कर सका। चन्द्रगुप्त द्वितीय अपने पिता के समुद्रगुप्त के समान ही वीर, पराक्रमी तथा धर्मनिष्ठ राजा था। भारतीय इतिहास में विक्रमादित्य के नाम से विख्यात है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की दिग्विजय– यद्यपि चन्द्रगुप्त को अपने पिता समुद्रगुप्त से एक विशाल राज्य प्राप्त हुआ अतः उसे समुद्र गुप्त के समान विशाल साम्राज्य की स्थापना के लिए को युद्ध नहीं लड़ना पड़ा, किन्तु जब समुद्रगुप्त के अधीन शासकों ने स्वतन्त्र होने के प्रयास किये तो इनको नतमस्तक करने के लिए तथा साम्राज्य को सुरक्षित और संगठित रखने लिए युद्ध करने पड़े।

गणराज्यों पर विजय

गुप्त साम्राज्य के पश्चिमोत्तर में भद्रगण से लेकर स्वर्णरिक तक अनेक छोटे–छोटे गणराज्य थे। यद्यपि ये गणराज्य स्वतन्त्रता प्रेमी थे। किन्तु उनमें पारस्परिक एकता का सर्वथा अभाव था। अतः ये किसी बाह्य आक्रमण का सामना नहीं कर सकते थे। अतः चन्द्रगुप्त द्वितीय ने गणराज्यों की इस कमजोरी का लाभ उठाया और गणराज्यों पर आक्रमण कर दिया।

शक क्षत्रपों पर विजय

शक क्षत्रपों पर विजय चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल की सर्वप्रमुख घटना है। जिनका मालवा गुजरात तथा सौराष्ट्र पर शासन था। यद्यपि इन शक–क्षत्रपों ने समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर ली थी। किन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय का विचार था की विदेशी शक क्षत्रप उसके लिए कभी भी घातक सिद्ध हो सकते है। अतः उसने शक क्षत्रपों पर आक्रमण कर शक राजा रूद्रसिंह को पराजित किया और उसकी हत्या करवा दी। अपनी इस विजय के उपलक्ष में चन्द्रगुप्त द्वितीय ने चाँदी की मुद्राएँ चलवायी।

पूर्वी प्रदेशों पर विजय

शक क्षत्रपों को विजित करने के पश्चात् चन्द्रगुप्त द्वितीय का ध्यान पूर्वी प्रदेशों की ओर गया। इस समय पूर्वी प्रदेश गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण करने के लिए संगठित हो रहे थे। अतः चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पूर्वी प्रदेश पर आक्रमण कर उन्हें विजित कर लिया।

वाह्लीको पर विजय– महरौली के स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने वाह्लीकों को परास्त किया है।

5. दक्षिण भारत की विजय– महरौली लौह स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त के शासन काल में दक्षिण भारत के जिन राजाओं ने उनकी अधीनता स्वीकार की थी उन्होंने रामगुप्त के शासन काल में गुप्त साम्राज्य की अधीनता को अस्वीकार कर दिया था। अतः चन्द्रगुप्त द्वितीय ने दक्षिण भारत पर आक्रमण कर वहाँ के शासकों को पराजित किया। और उन्हें अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की शासन व्यवस्था

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य न केवल एक महान विजेता वरन् एक कुशल प्रशासक भी था। शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए उसने उच्च स्तरीय व्यवस्था की थी। संक्षेप में उसके शासन की रूपरेखा निम्नवत् थी–

1. केन्द्रीय शासन

सम्राट अभिलेखों से ज्ञात होता है सम्राट राज्य का प्रधान था। राज्य की समस्त शक्तियाँ उसी में निहित थी। कानून बनाना, उसे लागू करना, न्याय की अन्तिम अपील सुनना आदि सम्राट के प्रमुख कार्य थे। वह अपनी सेना का प्रधान सेनापति होता था। निरंकुश होते हुए भी सम्राट स्वेच्छाचारी न था।

मंत्री

चन्द्रगुप्त द्वितीय मंत्रियों के सहयोग से शासन चलाता था। उसके प्रधान मंत्री को मन्त्रिन कहा जाता था। शान्ति व युद्ध का मंत्री सन्धिवग्राहिक कहलाता था। वीरसेन चन्द्रगुप्त का मंत्री था। एक अन्य मंत्री जो राजपत्रों को रखता था, अक्षयपटल अधीकृत कहलाता था।

सामन्त– सम्राट के अधीनस्थ अनेक छोटे–छोटे सामन्त अथवा महाराज होते थे। ये सम्राट के अधीन कार्य करते थे।

राजपदाधिकारी– चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शासन काल के कुछ पदाधिकारी के नाम इस प्रकार मिलते है।

- **कुमारामात्य–** यह विशिष्ट प्रकार के प्रशासनिक अधिकारियों का नाम था।
- **महाबलाधिकृत–** यह साम्राज्य की सम्पूर्ण शक्ति का अधिकारी अर्थात् सेनापति होता था।

- **महादण्ड नायक–** इसके अन्तर्गत अनेक दण्ड नायक नामक पदाधिकारी होते थे। इसका कार्य क्षेत्र युद्ध संचालन से सम्बन्धित था। कुछ विद्धानों के अनुसार यह मुख्य न्यायाधीश था।
- **महाप्रतिहार–** यह राजकीय महल का सर्वोच्च अधिकारी था। महलों की रक्षा करना इसका प्रमुख कर्तव्य था।
- **दण्ड पाशिक–** यह पुलिस विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी होता था।

2. प्रान्तीय शासन– शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपने साम्राज्य को अनेक प्रान्तों में विभाजित कर दिया था। ये प्रान्त देश अथवा, भुक्ति कहलाते थे।

3. विषय शासन– चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने भुक्ति अथवा देश को अनेक प्रदेशों में विभाजित कर रखा था। इन प्रदेशों को विषय कहा जाता था। विषय के शासक को विषयपति कहा जाता था। विषयपति का कार्य काल 5 वर्ष का होता था।

4. ग्राम शासक– प्रत्येक विषय का विभाजन अनेक ग्रामों में किया जाता था। ग्राम के शासक को ग्रामिक अथवा भोजक कहा जाता था।

5. न्याय व्यवस्था– चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने एक उच्च स्तरीय न्याय की व्यवस्था कर रखी थी। उसके काल में चार प्रकार के न्यायालय थे।

1. राजा का न्यायालय– 2. पूग 3. श्रेणी 4. कुल। दण्ड विधान बहुत अधिक कठोर नहीं था। दण्ड अपराध के अनुसार ही दिया जाता था।

6. आय के साधन– भूमि कर (जिसे उद्रंग भी कहा जाता था) चुंगी तथा विभिन्न प्रकार के कर आय के प्रमुख साधन थे। राजकीय भूमिपर कृषि करने वालो से उपज का 1/4 भाग अथवा 1/6 भाग कर के रूप में लिया जाता था। भूमिकर शाल्किक नामक पदाधिकारी वसूल करते थे।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य– चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य गुप्त वंश का एक प्रतापी तथा जनविख्यात साम्राट था। उसके चरित्र की विशेषताएं निम्न है–

महान विजेता– चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य एक महत्वाकांक्षी तथा साम्राज्य विस्तारवादी साम्राट था। उसमें अपने पिता समुद्रगुप्त के लगभग सभी गुण विद्यमान थे। उसने अपने विजयी अभियान द्वारा गणराज्यों का अन्त किया। बंगाल में विद्रोहियों का दमन किया। शक क्षत्रप तथा वाह्लीकों पराजित किया तथा दक्षिण के राजाओं को पुनः अपनी अधीनता स्वीकार कर लेने के लिए बाध्य किया। अपनी विजयों के उपलक्ष्य में उसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की।

महानकूटनीतिज्ञ– एक विजेता होने के साथ ही साथ वह महान कूटनीतिज्ञ भी था। यही कारण है कि उसने अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिये दक्षिण के राजाओं से वैवाहिक सबन्ध स्थापित किया।

कुशल प्रशासक– चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य एक कुशल प्रशासक था। उसके शासन काल में प्रजा सुखी और समृद्धि थी। फाह्यान ने भी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के प्रशासन की भूरि–भूरि प्रशंसा की है।

साहित्यानुरागी– तथा कला प्रेमी– चन्द्रगुप्त को साहित्य से विशेष लगाव था। वह स्वयं भी उच्च कोटि का विद्वान था। साहित्य की उन्नति के लिए उसने दरबार में अनेक विद्वानों को आश्रय प्रदान कर रखा था।

चीनी यात्री फाह्यान– 399– 414 ई0

चीनी यात्री फाह्यान जिसका वास्तविक नाम कुंग था। चन्दुगुप्त विक्रमादित्य के शासन काल में भारत आया। उसका यह नाम प्रवज्या ग्रहण करने के बाद पड़ा। फाह्यान का अर्थ होता है धर्म गुरू अथवा धर्म रक्षक। फाह्यान ने बचपन में ही अनेक बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया। उसने भारत आकर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासन काल में 389 ई0 से 414 ई0 तक भारत के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया। उसकी यात्रा का विवरण फो–क्यों की नामक पुस्तक में मिलता है। अपने भम्रण काल में उसने अनेक बौद्ध ग्रन्थों की खोज की। अनेक हस्तलिपियों की नकल की तथा अनेक ग्रन्थों का अनुवाद किया। भारत आने के समय उसके साथ नौ अथवा दस भिक्षु भी आये थे। अपनी यात्रा समाप्ति के पश्चात उसने अपनी यात्रा का विवरण दिया।

कुमार–गुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य (414–455)– यह चन्द्रगुप्त द्वितीय का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। यह कार्तिकेय का उपासक तथा अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु था। इसने अपने पूवर्जो से प्राप्त विशाल साम्राज्य को सुरक्षित तथा संगठित बनाए रखा। कुमार गुप्त का शासन शान्ति एवं समृद्धि के लिए प्रसिद्ध है।

स्कन्द गुप्त विक्रमादित्य (455–467 ई0)– कुमार गुप्त की मृत्यु के पश्चात मगध सिंहासन पर स्कन्दगुप्त आसीन हुआ। यह गुप्त वंश का अंतिम योग्य सम्राट था। इसके शासन काल में हूणों ने भारत पर आक्रमण किए। हूणों को परास्त कर क्रमादित्य अथवा विक्रमादित्य की उपाधि धारण की वह विष्णु का उपासक था।

पुरुगुप्त– स्कन्दगुप्त की मृत्यु के बाद उसका सौतेला भाई पुरूगुप्त सिंहान पर आसीन हुआ।

गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण

गुप्त साम्राज्य की स्थापना चन्द्रगुप्त प्रथम ने की जिसकी सीमाओं में समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अत्याधिक विस्तार किया। उसने भारत को राजनीतिक एकता के सूत्र में बांधा परिणाम–स्वरूप लगभग 250 वर्षों तक गुप्त साम्राज्य अस्तित्व में रहा। किन्तु प्रकृति का नियम है जिसका उत्थान है उसका पतन भी अवश्य है। गुप्त साम्राज्य पर भी लागू हुआ। और एक दिन ऐसा आया जब गुप्त शासकों का अन्त हो गया। गुप्त साम्राज्य के पतन के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे–

साम्राज्य की विशालता– समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपने सतत् प्रयासों से गुप्त साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार कर दिया था। साम्राज्य की विशालता के कारण एक समय ऐसा आया जब गुप्त शासकों के लिए एक तो आयोग्यता दूसरे अन्य समुचित साधनों के अभाव में दूरस्थ प्रान्तों पर शासन करना दुष्कर हो गया।

अयोग्य उत्तराधिकारी– स्कन्दगुप्त की मृत्यु के बाद जितने भी साम्राट हुए। उनमें इतनी क्षमता और योग्यता न थी कि वे अपने पूवर्जों के विशाल साम्राज्य को सुरक्षा कर सके। उदाहरणार्थ पुरूगुप्त और बुद्धगुप्त में योग्यता और क्षमता का नितान्त अभाव था। अतः वे केन्द्रीय शासन सत्ता को सुदृढ़ न रख सके।

उत्तराधिकार का युद्ध– गुप्तकाल में साम्राट पद के लिए कई बार गुप्त शासकों में संघर्ष हुआ। निश्चित ही उत्तराधिकार के युद्ध ने गुप्तशासकों को आन्तरिक रूप से कमजोर कर दिया होगा।

आन्तरिक विद्रोह– गुप्त वंश के अन्तिम शासकों की योग्यता के कारण साम्राज्य में आन्तरिक विद्रोह प्रारम्भ हो गया। क्योंकि प्रान्तपतियों को पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। अतः ऐसी स्थिति का लाभ उठाकर प्रान्तपतियों ने विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया।

हूणों के आक्रमण– उत्तर कालीन गुप्त सम्राटो की सीमान्त प्रदेश सीमा नीति असन्तोष जनक थी। जिसका लाभ उठाकर हूणों ने गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण किए और गुप्त साम्राज्य को अत्यधिक क्षति पहुँचाई। यद्यपि स्कन्द गुप्त ने हूणों को परास्त कर दिया थां किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात हूणों को अपने आक्रमण में सफलता मिली और गुप्त साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया।

बौद्ध धर्म के हानिकारक प्रभाव– गुप्तकालीन साम्राज्य ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे। उनकी प्रवृत्ति सामारिक थी किन्तु उत्तर कालीन गुप्त सम्राटों ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिए। इन सम्राटों की सामरिक प्रवृत्ति भी मन्द पड गयी। परिणामस्वरूप गुप्त साम्राज्य का पतन हो गया।

आर्थिक दुर्बलता– चन्द्रगुप्त प्रथम समुद्रगुप्त विक्रमादित्य कुमारगुप्त प्रथम आदि गुप्त शासकों ने अनेक युद्धों द्वारा विशाल गुप्त साम्राज्य की स्थापना की। इन युद्धों में अपार धनराशि खर्च हुई होगी। किन्तु योग्य गुप्त शासकों के कारण आर्थिक अभाव प्रारम्भ में नहीं खला बाद में गुप्त शासकों को धन की कमी अनुभव हुई।

गुप्तकाल– स्वर्ण युग

गुप्त वंशीय सम्राटों ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर दीर्घ काल तक शासन किया। अपने इस शासन काल के दौरान अनेक गुप्त सम्राटों ने न केवल भारत को राजनैतिक एकता, सुरक्षा व शान्ति ही प्रदान की वरन् सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं कला आदि प्रत्येक क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति की। उनके सतत् प्रयासों से गुप्त में जो चतुर्मुखी विकास हुआ वह इससे पहले कभी नहीं हुआ।

महान सम्राटों का युग– गुप्त काल में अनेक महान सम्राट हुए। जिन्होंने अपने शासन काल में आसाधारण प्रतिभा का परिचय दिया। इन सम्राटों में चन्द्रुगप्त प्रथम, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमार गुप्त प्रथम, स्कन्द गुप्त आदि प्रमुख थे। इन सम्राटों ने एक संगठित और विस्तृत गुप्त साम्राज्य का निर्माण किया था तथा अपनी विजय पताका दूर–दूर तक फैलायी।

राजनीतिक एकता का युग– अशोक की मृत्यु के बाद भारत छोटे टुकड़ों में बँट गया था और उसकी राजनीतिक एकता समाप्त हो गयी थी। गुप्त सम्राटों ने अपने प्रयासों से इस खोई हुई राजनैतिक एकता

को पुनः प्राप्त किया और अपनी दिग्विजयों द्वारा लगभग सम्पूर्ण भारत को एक राजनैतिक सूत्र में बाँध दिया।

शान्ति और सुव्यवस्था का युग– यह एक ऐसा युग था जिसमें शान्ति और सुव्यवस्था कायम थी। तथा लोगों को अपनी चरमोन्नति के सुअवसर प्राप्त हुए थे।

साहित्य की उन्नति का युग– गुप्त काल में संस्कृत भाषा और साहित्य की अवूर्ण उन्नति हुई। इस काल में अनेक प्रसिद्ध विद्वान हुए। जिन्होंने प्रचुर मात्रा में साहित्य लिखा। कालिदास के कुमार सम्भवम् 'अभिज्ञानशकुन्तलम्, मेधदूतम्, रघुवंशम्, ऋतुसंहार विक्रमोर्वशीयम्, विशाखदत्त ने देवीचन्द्रगुप्त और मुद्राराक्षस, भारवि का किरातार्जुनीय, शूद्रक का मृच्छकटिकम, सुबन्धु का वासवदत्ता, विष्णुशर्मा का पंचतंत्र, अमर सिंह का अमर कोष, आदि इस काल की साहित्य कृतियाँ है। बौद्ध साहित्य के रचयिता बुद्ध–घोष, वसुबन्धु, बुद्धदत्त, आर्यदेव, असंग एवं दिगनांग आदि तथा जैन साहित्य के रचयिता भद्रबाहुद्वितीय सिद्धसेन एवं उमास्वति आदि विद्धान इसी युग में हुए थे।

विज्ञान की उन्नति का युग– गुप्तकाल वैज्ञानिक उनति का युग था। ज्योतिष और गणित इस काल की महत्वपूर्ण वैज्ञानिक देन है। दशमलव पद्धति का विकास इसी युग में हुआ था। ज्योतिष, गणित, चिकित्सा सम्बनधी अनेक ग्रन्थों का सृजन इसी काल में हुआ। प्रसिद्ध गणितज्ञ आर्यभट्ट का आर्यभट्टीयम्, ज्योतिषाचार्य बराहमिहिर का पंचसिद्धान्तिका, आयुर्वेदशास्त्री वाग्भट का अष्टांग हृदय, पशुचिकित्सक पालकाप्य का हस्तुयुपवेद, इस काल की प्रसिद्ध वैज्ञानिक कृतियाँ है। प्रसिद्ध आयुर्वेद शास्त्री धन्वतरि भी इसी काल में हुआ था।

कला की उन्नति का युग– गुप्त काल में वास्तुकला, शिल्पकला, मूर्ति निर्माण कला, चित्रकला, संगीत कला, आदि की पर्याप्त उन्नति हुई। राज प्रसाद, स्तम्भ, स्तूप, चैत्य, विहार, गुहा और मंदिर निर्माण से वास्तुकला की उन्नति हुई। सारनाथ का घमेख स्तूप, उदयगिरि की गुहा, नालन्दा के विहार, महरौली का लौह स्तम्भ, भूमरा का शिव मंदिर, नचना कूथर का पार्वती मंन्दिर, देवगढ़ का दशावतार मन्दिर, भीतर गाँव का ईंटों का मन्दिर, आदि इस काल की वास्तुकला के प्रमुख उदाहरण है।

धार्मिक सहिष्णुता का युग– गुप्त काल में धार्मिक सहिष्णुता सर्वत्र व्याप्त थी। यद्यपि देश में विभिन्न धर्म के अनुपायी निवास करते थे। किन्तु फिर भी कभी भी धर्म के नाम पर हिंसा नहीं हुई। इस काल में ब्राह्मण, जैन एवं बौद्ध धर्म प्रचलन में थे।

हूण आक्रमण

हूणों का संक्षिप्त परिचय– हूण लोग मध्य एशिया के खानाबदोश जंगलियों के समूह थे। इनका सम्बन्ध सीथियनों की एक शाखा से था। मंगोल जाति के लोग पूर्णतया असभ्य, बर्बर तथा युद्ध प्रेमी थे।

हूणों के भारत पर आक्रमण – हूणों ने भारत पर प्रथम आक्रमण कुमार गुप्त के शासन काल में किया। किन्तु कुमार गुप्त के पराक्रमी पुत्र स्कन्द गुप्त ने इस आक्रमण को विफल कर दिया। विवश होकर हूणों को पीछे लौटना पड़ा। किन्तु कुछ समय बाद ही पाँचवी शताब्दी के अन्तिम भाग में हूणों ने फिर भारत पर आक्रमण

कर दिया। इस समय भारत में स्कन्द गुप्त का शासन था। स्कन्दगुप्त ने एक फिर हूणों को परास्त करके भारत से खदेड़ दिया। लेकिन इसके बाद भी भारत पर हूणों के आक्रमण होते रहे।

हूण आक्रमण का भारत पर प्रभाव– हूण आक्रमण का भारत पर निम्नांकित प्रभाव पड़ा–

राजनीतिक एकता का विनाश– हूणों के आक्रमण के परिणाम स्वरूप गुप्त साम्राज्य को भारी क्षति पहुँची। उनका साम्राज्य खण्ड–खण्ड हो गया। और गुप्त साम्राज्य के खण्डहरों पर छोटे–छोटे राज्यों का उदय हुआ।

सामाजिक प्रभाव– हूणों ने भारतीय जाति रचना को भी प्रभावित किया। जब भारत में हूणों का पतन हो गया तो यह जाति भारतीय समाज में घुल मिल गयी।

धार्मिक तथा नैतिक प्रभाव– हूणों से भारतीयों का घनिष्ठ सम्बन्ध बढ़ जाने के परिणामस्वरूप भारतीयों का धार्मिक और नैतिक स्तर गिर गया।

सांस्कृतिक प्रभाव– हूणों के आक्रमण से भारतीय कला एवं संस्कृति को भारी नुकसान पहुँचा। असभ्य और बर्बर होने के कारण हूणों ने विहारों, मठों, स्तूपों और भव्य इमारतों को नष्ट कर डाला।

vH;kl ç'u

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. गुप्तवंश का संस्थापक था।

(क) चन्द्रगुप्त प्रथम (ख) समुद्रगुप्त (ग) श्रीगुप्त (घ) रामगुप्त

2. बुद्धचरित के लेखक थे –

(क) अश्वघोष (ख) नागार्जुन (ग) कालिदास (घ) चरक

3. गुप्तयुग का महान वैद्य था–

(क) बाणभट्ट (ख) भट्टी (ग) धन्वन्तरि (घ) चरक

4. शून्य के आविष्कारक थे–

(क) आर्यभट्ट (ख) भास्कर (ग) सी0वी0रमन (घ) वराहमिहिर

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. गुप्त साम्राज्य का संस्थापक कौन था ?
2. समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तम्भ लेख के रचयिता का क्या नाम था।
3. गुप्त काल के दो प्रसिद्ध वैज्ञानिक कौन थे ?
4. गुप्त काल के दो प्रसिद्ध साहित्यकारों के नाम लिखिए।
5. गुप्तवंश के पतन के कोई दो प्रमुख कारण लिखिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. समुद्रगुप्त को 'भारतीय नैपोलियन' क्यों कहा जाता है।

2. गुप्तकालीन साहित्यिक प्रगति का विवरण दीजिए।
3. गुप्त साम्राज्य के पतन के कारणों का उल्लेख करिए।
4. समुद्रगुप्त द्वारा विजित दक्षिणा पथ के किन्हीं चार राज्यों और उनके राजाओं का उल्लेख कीजिए।
5. हूणों के भारतीय आक्रमण और उसके प्रभाव का वर्णन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।
2. समुद्रगुप्त के चरित्र तथा उसकी विजयों का वर्णन करिए।
3. गुप्तवंश के शासकों की शासन व्यवस्था का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कीजिए।
4. समुद्रगुप्त की दक्षिणापथ की विजयों एवं उसके साम्राज्य विस्तार का वर्णन करिए।
5. गुप्त युग को प्राचीन भारत का स्वर्ण युग क्यों कहा जाता है ?
6. भारत पर हूण आक्रमण का संक्षिप्त विवरण दीजिए। इन आक्रमणों का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा ?
7. गुप्तवंश के पतन के कारणों का उल्लेख करिए।

प्रॉजेक्ट कार्य– अपने आस–पास की किसी धार्मिक इमारत, किला एवं पुस्तकालय आदि के भवन का चयन करें और निम्नलिखित जानकारी प्राप्त करने का प्रायस कीजिए–

g"kZo/kZu

सातवीं शताब्दी में हर्षवर्धन उत्तर भारत के शक्तिशाली सम्राट थे। हर्षवर्धन एक साम्राज्य निर्माता, कुशल प्रशासक , धर्म, शिक्षा एवं साहित्य के संरक्षक के रूप में प्रसिद्ध है। यह पुष्यभूमि वंश के प्रथम प्रभावशली राजा थे। हर्ष का जन्म 590 ई0 में हुआ। वह प्रभाकर वर्धन एवं यशोमती का पुत्र था। राज्यवर्धन हर्ष के बड़ा भाई था जो पिता की मृत्यु के पश्चात् थानेश्वर के सिंहासन पर बैठे। उसकी बहन राज्यश्री का विवाह कन्नौज के मौखरी शासक गृहवर्मन के साथ हुआ था। बंगाल के शासक शशांक और मालवा के राजा देवगुप्त ने मिलकर कन्नौज पर आक्रमण पर ग्रहवर्मा की हत्या कर दी तथा राज्यश्री को बन्दी बना लिया। यह खबर सुनकर राज्यवर्धन कन्नौज की सुरक्षा के लिए आगे बढ़ा किन्तु शशांक ने धोखें से उसकी हत्या कर दी।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- हर्ष : महान सम्राट
- महान विजेता
- महान शासक
- महान धर्मपरायण
- महान साहित्यानुरागी
- हवेनसांग

राज्यवर्धन की मृत्यु के पश्चात् 606 ई0 में हर्षवर्धन थानेश्वर का राजा बना। राजा बनने के बाद उसने राज्यश्री की खोज की। तथा राज्यश्री की सहमति से वह कन्नौज का भी शासक बन गया तथा अपनी राजधानी थानेश्वर से कन्नौज स्थानान्तरित कर ली।

हर्षवर्धन के साम्राज्य की जानकारी उसके अभिलेखों बाणभट्ट कृत 'हर्षचरित' तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरणों से प्राप्त होती है। हर्ष का साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक तथा पूर्व में कामरूप से लेकर पश्चिम में बल्लभी तक फैला था। चालुक्य वंश के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि हर्ष का दक्षिण भारत के चालुक्य सम्राट पुलकेशिन द्वितीय से लगभग 620ई0 में भीषण संग्राम हुआ जिसमें हर्ष की सेना को अपार क्षति पहुँची और उसके साम्राज्य की सीमा नर्मदा नदी के तट से आगे नहीं बढ़ सकी। कश्मीर, नेपाल तथा चीन के साथ भी हर्ष के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे।

हर्ष एक महान विजेता होने के साथ ही कुशल प्रशासक भी था। उसने अधिकांशतः गुप्तकालीन शासन व्यवस्था का ही अनुपाल किया। केन्द्रीय शासन का प्रधान सम्राट स्वयं होता था। वह न्यायाधीश का भी कार्य करता था तथा युद्ध के समय सेनाध्यक्ष का पदग्रहण करता था। सम्राट की सहायता के लिए मन्त्रि परिषद् होती थी। मंत्री अथवा अमात्य राजा को परामर्श दिया करते थे। हर्ष के अभिलेखों तथा हर्षचरित में महासंधिविग्रहाधिकृत, सांधिविग्राहिक, महाबलाधिकृत, सेनापति, इत्यादि सैन्य अधिकारियों का उल्लेख मिलता है। शासन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण देश प्रान्तों में विभक्त था। यह प्रान्त 'भुक्ति' कहलाते थे। प्रत्येक भुक्ति कई विषयों (जिलों) में विभक्त था। प्रत्येक विषय कई पृथकों (तहसील) तथा प्रत्येक पथक कई गाँवों में विभक्त था।

हर्षवर्धन का प्रशासन 'उदार सिद्धान्तों' पर आधृत था। चीनी यात्री ह्वेनसाँग ने हर्ष के प्रशासन की प्रशंसा करते हुए लिखा है , सरकारी माँगें कम थी। परिवारों के पन्जीकरण की न तो आवश्यकता थी और न जबर्दस्ती बेगार ही लिए जाते थे। कर बहुत हल्के थे और बेगार न होने के कारण सभी

अपने कार्यों मे तथा पैतृक सम्पत्ति की सुरक्षा में लगे रहते थे । प्रशासन ईमानदार था, सभी लोग आपस में मिलकर रहते थे। उसने जनहित में चैत्यों, विहारों, मन्दिरों तथा सरायों का निर्माण करवाया। **'नालन्दा– विश्वविद्यालय'** भी हर्षवर्धन के दान से लाभान्वित था। उसने सड़कों का निर्माण तथा उनकी सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था की थी।

हर्ष धर्मसहिष्णु शासक था। वह विभिन्न सम्प्रदायों के विद्वानों को बुलवाकर उनसे धर्म–चर्चा करता था। आरम्भ में वह शैव मतावलम्बी था किन्तु बहन राज्यश्री के कारण वह बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हुआ तथा ह्वेनसांग के प्रभाव के कारण बौद्ध धर्मानुयायी बन गया। बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए हर्ष ने कन्नौज में एक सभा बुलाई जिसमें 20 राज्यों के राजा, विभिन्न धर्मों के विद्वान ब्राह्मण तथा सहस्रों हीनयानी तथा महायानी बौद्ध एकत्र हुए।

बौद्ध धर्म का समर्थक होने पर भी ब्राह्मण धर्म में उसकी अभिरूचि कम नहीं हुई थी। हर्ष प्रत्येक पाँचवें वर्ष प्रयाग में 'महामोक्ष' परिषद्' का आयोजन कर बुद्ध, सूर्य तथा शिव की उपासना करता था। इस अवसर पर वह अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान दे देता था।

हर्ष विद्यानुरागी तथा साहित्य प्रेमी शासक के रूप में भी विख्यात है। वह स्वयं विद्वान था तथा विद्वानों का आदर करता था। हर्ष का दरबार विद्वानों से भरा रहता था। इनमें बाणभट्ट सर्वाधिक प्रसिद्ध था। बाणभट्ट के अतिरिक्त मयूर, मातंग, दिवाकर भी उसके दरबार में थे। बाणभट्ट के, अनुसार हर्ष स्वयं काव्य रचना में दक्ष था। हर्ष ने 'प्रियदर्शिका', नागानन्द तथा 'रत्नावली' नामक तीन नाटकों की रचना की थी।

हर्ष की गणना भारत के महान शासकों में की जाती है जिसने अपने शासन काल में बड़ी उदारता तथा योग्यता के साथ शासन किया और अपनी प्रजा की भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रयत्न किया। लगभग 42 वर्षों तके कुशलतापूर्वक शासन करने वाले राजा हर्षवर्धन की 648 ई0 में मृत्यु हो गई।

ह्वेनसांग का भारत विषयक वर्णन

ह्वेनसांग भारत में लगभग 15 वर्षों तक रहा। यहाँ के सम्बन्ध में उसने लिखा है कि हर्षवर्धन की शासन व्यवस्था अत्यधिक सुव्यवस्थित थी। निरंकुश होते हुए भी वह स्वेच्छाचारी नहीं था। किसानों से उनकी उपज का 1/6 भाग सरकारी कर के रूप में वसूल किया जाता था। अपराध के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था थी।

स्त्री पुरुष दोनों ही शिक्षा ग्रहण करने के अधिकारी थे। समाज में स्त्रियों का सम्मान था। भोजन में दूध, घी, मक्खन, शक्कर तथा रोटी का प्रयोग किया जाता था। लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। बौद्धधर्म का देश में प्राधान्य था परन्तु साथ ही अन्य धर्म जैसे– ब्राह्मण, जैन भी प्रचलित थे। हर्ष ने अनेक प्रसिद्ध विद्वानों को आश्रय दिया इन विद्वानों ने अपनी रचनाओं से साहित्य में अभिवृद्धि की।

vH;kl ç'u

क. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. हर्ष थानेश्वर का राजा बना–

(क) 605 ई0 (ख) 604 ई0 (ग) 606 ई0 (घ) 607 ई0

2. हर्ष चरित के लेखक हैं–

(क) बाणभट्ट (ख) हर्षवर्धन (ग) ह्वेनसांग (घ) कालिदास

3. 'महामोक्ष परिषद' का आयोजन होता था–

(क) कन्नौज में (ख) थानेश्वर में (ग) प्रयाग में (घ) पाटलिपुत्र में

ख. अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. पुष्पभूति वंश का प्रभावशाली शासक कौन था?
2. हर्ष कालीन इतिहास की जानकारी के प्रमुख स्रोत लिखिए।
3. बाणभट्ट कौन थे।
4. हर्ष के समय के किन्ही दो विद्वानों के नाम लिखिए।

ग. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. हर्ष के प्रशासन का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. प्रयाग की 'महामोक्षपरिषद' का उल्लेख करिए।
3. हर्ष के साहित्यानुराग के बारे में आप क्या जानते हैं ?
4. ह्वेनसांग ने हर्ष के बारे में क्या जानकारी दी है ?

घ. दीर्घ प्रश्न

1. विजेता एवं शासक के रूप में हर्ष की कृतियों का उल्लेख कीजिए। धर्म और साहित्य के क्षेत्रों में उसके काल में क्या प्रगति हुई ?
2. ह्वेनसांग की यात्रा का विवरण देते हुए बताइए कि उसने तत्कालीन भारत की स्थिति के विषय में क्या लिखा हैं?
3. हर्ष के शासनकाल का संक्षिप्त इतिहास लिखिए।
4. हर्ष की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

lekUrokn dkyhu Hkkjr&jktiwrksa dk mn;] çeq[k jktoa'k ,oa mudh lkekftd ,oa lkaLd`frd miyfC/k;k¡

हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद भारत में राजनीतिक उथल–पुथल थीं भारत छोटे–छोटे राज्यों में बँट चुका था, न केवल आन्तरिक अराजकता ही थी अपितु बाह्य आक्रमण भी प्रारम्भ हो चुके थे। इस दौरान जिन महान शक्तियों का उदय हुआ, उसमें से अधिकतर राजपूत की श्रेणी में आती है। कुछ इतिहासकारों ने 7 वीं से 12 वीं सदी के काल को राजपूतकाल तक की संज्ञा दे दी। राजपूत बड़े वीर एवं स्वाभिमानी होते थे और साहस, त्याग, देशभक्ति आदि के गुण उनमें कूट–कूटकर भरे हुए थे।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- परिचय
- प्रमुख राजवंश
  - गुर्जर प्रतिहार
  - पाल राजवंश
  - चाह्मान वंश
  - चन्देल वंश
  - परमार वंश
  - गहड़वाल वंश
  - कलचुरि चेदि वंश
  - राजपूत कालीन समाज एवं सस्कृति
  - शासन व्यवस्था
  - आर्थिक जीवन
  - भाषा एवं साहित्य
  - कला एवं स्थापत्य

इन राजपूतों के उत्पत्ति के विषय में भिन्न–भिन्न मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वान इन्हें भारत में ही रहने वाली एक जाति मानते हैं, तो कुछ अन्य इन्हें विदेशियों की संतान मानते हैं, जो भारत में आकर बस गए और कालान्तर में जिन्होंने अपने शारीरिक शक्ति के बल पर उच्च सामाजिक स्तर को प्राप्त कर राजनीतिक सत्ता को प्राप्त किया। कुछ विद्वान राजपूतों को आबू पर्वत पर वशिष्ठ के अग्निकुण्ड से उत्पन्न हुआ मानते हैं, किन्तु राजूपतों के उत्पत्ति के प्रश्न को देशी–विदेशी श्रेणियों में निबद्ध न कर एक व्यापक सामाजिक– आर्थिक राजनीतिक प्रक्रिया के रूप में देखना अधिक तर्कसंगत लगता है।

प्रमुख राजवंश

प्राचीन ग्रंथ कुमारपालचरित्र एवं वर्णरत्नाकर आदि में परम्परागत छत्तीस कुलों की सूची मिलती है। राजतंरगिणी में भी 36 राजपूत कुलों का लेख हैं। परन्तु दोनों सूचियों में भिन्नता हैं। प्रमुख राजपूत व राजवंशों का विवरण निम्नलिखित हैं–

गुर्जर प्रतिहार वंश

अग्निकुल के राजपूतों में सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रतिहार वंश था। जो गुर्जरों की शाखा से संबंधित होने के कारण इतिहास में गुर्जर प्रतिहार कहा जाता हैं। पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल लेख में गुर्जर जाति का उल्लेख सर्वप्रथम हुआ हैं। प्रतिहार वंश की स्थापना हरिश्चन्द्र ने की, किन्तु वंश का वास्तविक प्रथम महत्वपूर्ण राजा नागभट्ट प्रथम था, जिसने अरबों से लोहा लिया था और पश्चिमी भारत

में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की थी। इस वंश का चौथा शासक वत्सराज (775–800 ई0) हुआ। इसने कन्नौज के आयुघ वंश के राजा इन्द्रायुध को हराया तथा उसे अपने अधीन कर लिया। इसी क्रम में वत्सराज ने गौड़ों (धर्मपाल) के विरूद्ध भी सफलता पायी किन्तु राष्ट्रकूट शासक ध्रुव के हाथों पराजित हुआ। वत्सराज के पश्चात उसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय (800–833 ई0) गुर्जर प्रतिहारों का राजा हुआ। नागभट्ट ने आयुध शासक को पराजित कर कन्नौज को अपनी राजधानी बनायी। ग्वालियर प्रशस्ति में नागभट्ट द्वारा आंध्र, सिंधु, विदर्भ तथा कलिंग का विजेता बताया गया। मिहिरभोज इस वंश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक हुआ। ग्वालियर प्रशस्ति में उसे आदिवराह कहा गया हैं। भोज के बाद महेन्द्रपाल– प्रथम, महिपाल–प्रमुख शासक हुए।

पाल राजवंश

गुर्जर प्रतिहारों के समान बंगाल में गोपाल ने एक ऐसी राजशक्ति को जन्म दिया, जिसने वहाँ दशकों से चली आ रही अराजकता को समाप्त किया। गोपाल के पश्चात उसका पुत्र और उत्तराधिकारी धर्मपाल (770–810 ई0) पालवंश का राजा हुआ। शीघ्र ही धर्मपाल अपने पराक्रम से उत्तर भारत का स्वामी बन गया। धर्मपाल के मृत्यु के बाद उसका सुयोग्य पुत्र देवपाल पालवंशी गद्दी पर बैठा। देवपाल के नेतृत्व में पाल साम्राज्य अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। उसने प्रतिहार शासक रामभद्र को पराजित कर उत्तर भारत पर अपना प्रभुत्व कायम किया। देवपाल का शासनकाल पालशक्ति के चरमोत्कर्ष को प्रकट करता हैं। इसके बाद पाल साम्राज्य की अवनति प्रारम्भ हुई। देवपाल का उत्तराधिकारी अवन्तीपाल हुआ जिसने अल्पकालीन शासन के बाद अपने पुत्र नारायणपाल के पक्ष में सिंहासन त्यागकर संन्यास ग्रहण कर लिया। नारायण पाल के शासनकाल में पाल साम्राज्य बंगाल के एक भाग में संकुचित हो गया। राजपाल गोपाल द्वितीय तथा विग्रहपाल द्वितीय तक पाल साम्राज्य लगभग समाप्त प्राय होने वाला था कि इस वंश पर महीपाल प्रथम जैसा एक शक्तिशाली शासक आसीन हुआ। महीपाल पुनः अपनी वंश की लुप्त हुयी प्रतिष्ठा स्थापित करने में जुटा। उसने शीघ्र ही बंगाल के विद्रोहियों का दमन कर सम्पूर्ण उत्तरी तथा पूर्वी बंगाल को जीत लिया। महीपाल के बाद जयपाल विग्रहपाल तृतीय आदि शासकों के नाम अभिलेखों में मिलते हैं। जो अयोग्य तथा निर्बल थे। 12वीं शताब्दी के अंत में बंगाल का पाल राज्य सेनवंश के अधिकार में चला गया।

चाहमान वंश

इस वंश का उदय शाकम्भरी (सांभर– अजमेर के आसपास का क्षेत्र) में हुआ। चाहमान के प्रारम्भिक राजाओं में वासुदेव और गुवक के नाम उल्लेखनीय हैं। चाहमानों के शक्ति का विशेष विकास अर्णोराज के पुत्र चतुर्थ विग्रहराज वीसलदेव (1153–1164) के समय हुआ। उसने सबसे बड़ा कार्य मध्यदेश से मुसलमान आक्रमणकारियों को समाप्त करके किया। चाहमान वंश का सबसे प्रसिद्ध एवं अन्तिम शक्तिमान राजा पृथ्वीराज तृतीय (1179–1193 ई0) था। इसके राजकवि चन्दरबरदायी ने पृथ्वीराजरासों नामक अपभ्रंश महाकाव्य की रचना की। परमारों तथा गहढ़वालों के साथ पृथ्वीराज का शत्रुतापूर्ण संबंध था। 1193 ई0 में तराईन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज पराजित हो गया। अजमेर व दिल्ली दोनों ही तुर्कों के हाथ लगे। इस प्रकार चाहमान सत्ता का अन्त हुआ।

चंदेलवंश

जहाँ आजकल बुंदेलखण्ड हैं वही पर चंदेलों के राजनीतिक शक्ति का उदय हुआ। खजुराहों उनकी राजधानी थी। इस वंश का सर्वप्रथम राजा नन्नुक हुआ। उसके पौत्र जयसिंह अथवा जेजा के नाम पर यह प्रदेश जेजाभुक्ति कहलाया। यशोवर्मन का पुत्र धंग (950–1008 ई0) बड़ा प्रतापी एवं विजयी सिद्ध हुआ। प्रतिहारों से पूर्ण स्वतंत्रता का वास्तविक श्रेय उसी को दिया जाता हैं धंग के बाद उसका पुत्र गंड राजा हुआ। उसने भी 1008 ई0 में महमूद गजनवी का सामना करने के लिए बनाए हुए संघ में भाग लिया। विद्याधर ने भोज परमार और कल्लचुरि गांगेय की सहायता से तुर्को को मध्यदेश से निकालने का प्रयास किया। विद्याधर के उत्तराधिकारी कीर्तिवर्मा ने कल्चुरियों को पराजित कर अपनी शक्ति सुदृढ़ की। चंदेल वंश का अंतिम शक्तिशाली राजा परमर्दि अथवा परमल थे। इसके समय में अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज ने आक्रमण किया। कुतुब्ददीन ऐबक ने कालान्जर पर आक्रमण किया तब परमर्दि ने उसका घोर विरोध किया किन्तु अन्त में उसे हार खानी पड़ी। इस प्रकार चंदेल राजवंश का अंत हुआ।

परमार वंश

दसवीं शती के प्रारम्भ में जब प्रतिहारों का आधिपत्य मालवा में नष्ट हो गया तब वहाँ पर परमार शक्ति का उदय हुआ। इस वंश का प्रथम स्वतंत्र एवं शक्तिमान राजा सीयक अथवा श्री हर्ष था। परमारों की शक्ति का उत्कर्ष वाक्पतिमुन्जु (972–994 ई0) के समय में प्रारम्भ हुआ। उसने त्रिपुरी, लाट (गुजरात), कर्नाटक, चोल और केरल के राजाओं को युद्ध में हराया। भोज (1000–1055 ई0) इस वंश का सबसे लोक प्रसिद्ध राजा हुआ। उदयपूर्व प्रशस्ति के अनुसार उसने अनेक भारतीय राजाओं, विशेषकर चेदि के इन्द्रनाथ गुजराज के प्रथम जोग्गल और भीम, लाट और कर्णाट के राजाओं, गुर्जरों एवं तुरूष्कों से युद्ध किया। भोज के बाद परमारों की शक्ति क्षीण होती गयी और कालान्तर में तुर्कों के सैलाब में बह गई।

गहड़वाल वंश

प्रतिहार साम्राज्य के पतन के पश्चात कन्नौज तथा बनारस में जिस राजवंश का प्रशासन स्थापित हुआ उसे गहड्वाल वंश कहा जाता हैं। 1090 ई0 के लगभग चंद्रदेव नामक व्यक्ति ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया। उसके पूर्वजों में महीचन्द्र तथा यशोविग्रह के नाम मिलते हैं। इनमें यशोविग्रह इस वंश का प्रथम पुरुष था, जो कल्चुरी शासन में कोई अधिकारी था। गहड़वाल की स्वतंत्रता का जनक चन्द्रदेव ही था। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि वाराणसी, अयोध्या तथा दिल्ली पर उसका अधिकार था। चन्द्रदेव का पुत्र तथा उत्तराधिकारी मदनपाल एक निर्बल शासक था। मदनपाल का पुत्र गोविन्द चन्द्र (1114–1155 ई0) गहड़वाल का सर्वाधिक योग्य एवं शक्तिशाली शासक था। उसने कन्नौज के प्राचीन गौरव को पुनःस्थापित करने का प्रयास किया। गोविन्द चन्द्र के पश्चात उसका पुत्र विजयचन्द्र (1155–1169 ई0) शासक हुआ। विजयचन्द्र का पुत्र जयचंद्र (1194 ई0) गहड़वाल वंश का

अंतिम शासक था। भारतीय लोकसाहित्य, कथाओं में वह ***'राजा जयचन्द्र'*** के नाम से विख्यात हैं। मुस्लिम स्त्रोतों के अनुसार– कन्नौज तथा वाराणसी का वह सार्वभौम शासक था। चन्दावर के युद्ध में जयचन्द्र मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा पराजित हुआ। इस प्रकार गहड़वाल वंश का अंत हुआ।

कलचुरि– चेदि राजवंश

चंदेल राज्य के दक्षिण में चेदि के कलचुरियों का राज्य स्थित था। अभिलेखों में वे अपने को हैहैयवंशी सहस्त्रार्जुन कीर्तिवीर्य का वंशज कहते हैं पूर्व–मध्यकालीन भारत में कल्चुरि वंश की कई शाखाओं के अस्तित्व का प्रमाण मिलता हैं। त्रिपुरी के कलचुरि इनमें से सबसे प्रसिद्ध एवं शक्तिशाली थे। इसने मध्य भारत पर तीन शताब्दियों तक शासन किया। इस वंश का पहला राजा कोक्कल प्रथम था। जो संभवतः (845 ई0) में गद्दी पर बैठा। उसने कन्नौज के प्रतिहार शासक भोज तथा उसके सामन्तों को युद्ध में पराजित किया। चंदेल राजकुमारी नट्टादेवी के साथ अपना विवाह तथा राष्ट्रकूट वंश के कृष्ण–द्वितीय के साथ अपनी एक पुत्री का विवाह किया था। इन संबंधों के परिणामस्वरूप उसने अपने साम्राज्य के पश्चिमी तथा दक्षिणी पश्चिमी सीमाओं को सुरक्षित कर लिया। कलचुरि सत्ता का उत्कर्ष कोक्कल द्वितीय के पुत्र तथा उत्तराधिकारी गांगेयदेव विक्रमादित्य के काल में हुआ। उसके राज्यरोहण के समय कलचुरि राज्य की स्थिति अत्यन्त निर्बल थी। परमार भोज तथा चंदेल विद्याधर उसके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी थे। इसने अपने प्रतिद्वन्दियों को परास्त कर कलचुरि सत्ता को शिखर पर पहुँचा दिया। गांगेयदेव के बाद उसका पुत्र कर्णदेव अथवा लक्ष्मीकर्ण शासक बना। अभिलेखों से ज्ञात होता हैं कि उसने परमार तथा चंदेल राजाओं का उन्मूलन करके अपनी स्थिति सार्वभौम बना ली थी लेकिन उसकी अजेयता अधिक समय तक सुरक्षित नहीं रह सकी। कर्णदेव की मृत्यु के पश्चात कलचुरियों की शक्ति क्रमशः क्षीण होने लगी। 13वीं शती के प्रारम्भ में इस वंश के अन्तिम शासक विजय सिंह को चंदेल शासक त्रैलोक्यवर्मन ने परास्त कर त्रिपुरी को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार कललुरि चेदि वंश का अंत हुआ।

गुजराज का चालुक्य अथवा सोलंकी वंश

चालुक्य अथवा सोलंकी अग्निकुल से उत्पन्न राजपूतों में से एक थे। वाडनगर लेख में इस वंश की उत्पत्ति ब्रह्मा के चुलुक अथवा कमण्डलु से बताई गयी हैं। उन्होंने गुजरात में 10 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से 13 शताब्दी के प्रारम्भ तक शासन किया। उनकी राजधानी अहिन्लवाड़ा में थी। गुजरात के चालुक्य शाखा की स्थापना मूलराज प्रथम (914–995ई0) ने की थी। उसने प्रतिहारों तथा राष्ट्रकूटों के पतन का लाभ उठाते हुए एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। इस वंश के प्रमुख शासक भीमदेव प्रथम, जयसिंह सिद्धराज, कुमारपाल, अजयपाल तथा भीमदेव द्वितीय थे।

इन बड़े राजवंशों के अतिरिक्त उत्तरभारत में अनेक छोटे क्षेत्रीय राज्य थे, जैसे –आयुध (कन्नौज में, जिनकी चर्चा त्रिपक्षीय संघर्ष के संबंध में आती हैं), पंजाब, कश्मीर, नेपाल तथा उड़ीसा में भी कई राजवंश शासन किए।

राजपूतकालीन समाज एवं संस्कृति

राजपूत युगीन समाज वर्णों एवं जातियों के जटिल नियमों द्वारा शासित था। इस समय जातिप्रथा की कठोरता बढ़ी तथा हिन्दू समाज की ग्रहणशीलता एवं सहिष्णुता कम हुयी। परम्परागत चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के अतिरिक्त समाज में अनेक जातियाँ व उपजातियाँ पैदा हो गयी थी। ब्राहमणों का इस युग में प्रतिष्ठित स्थान था। वे राजपूत शासकों के मंत्री व सलाहकार नियुक्त किए जाते थे। अधिकांश ब्राह्मण अध्ययन यज्ञ, तप आदि में अपना जीवन व्यतीत करते थे। क्षत्रिय जाति के लोग युद्ध तथा शासन का कार्य करते थे। उनमें साहस, आत्मसम्मान, वीरता एवं स्वदेशभक्ति की भावनाएँ कूट–कूटकर भरी थी। वे अपने जीवन के अंतिम क्षण तक प्रतिज्ञा का पालन करते तथा शरणागत की रक्षा करना अपना परम कर्तव्य समझते थे। वैश्य जाति के लोग व्यापार का काम करते शूद्र का कार्य कृषि, शिल्पकारी तथा अन्य कार्य करना था।

राजपूत कालीन समाज में महिलाओं को सम्मानित स्थान प्राप्त था। राजपूत कुलों में विवाह स्वयंवर द्वारा होते थे। जिसमें कन्याएँ अपना वर स्वयं चुनती थी। कभी–कभी अन्तर्जातीय विवाह भी होते थे। विवाह की उम्र क्रमशः कम होती जा रही थी। राजपूत युग में प्रायः बाल विवाह का भी प्रचलन हो चुका था। समाज में जौहर तथा सती प्रथाएँ प्रचलित थी। समाज की उच्च वर्ग की महिलाओं में पर्दा प्रथा का प्रचार होता जा रहा था। इस काल की कुछ महिलाएँ विदुषी भी होती थी। राजशेखर की पत्नी अवंति संदुरी एक विदुषी थी। इस काल के व्यवस्थाकारों ने स्त्री के सम्पति संबंधी अधिकारों को मान्यता प्रदान कर दी थी। अलबेरूनी के विवरण से पता चलता है कि स्त्रियाँ सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भाग लेती थी। कन्याएँ संस्कृत लिखना पढ़ना तथा समझना जानती थी और वे संगीतक, नृत्य एवं विद्या में निपुण थी।

शासनव्यवस्था

प्राचीन इतिहास के अन्य युगों की भाँति राजपूत युग में वंशानुगत राजतंत्र सर्वमान्य शासन पद्धति थी। राजा की स्थिति सर्वोपरि थी। न्याय तथा सेना का वह सर्वोच्च अधिकारी था। महाराजाधिराज, परमभट्टारक, परमेश्वर जैसी उच्च सम्मानपरक उपाधियाँ धारण कर वह अपनी महत्ता को ज्ञापित करता था। राजा देवता का प्रतीक समझा जाता था।

इस काल में शासन के क्षेत्र में सामन्तवाद का पूर्ण विकास दिखायी देता हैं। राजपूतों का सम्पूर्ण राज्य छोटी–छोटी जागीरों में विभक्त था। प्रत्येक जागीर का प्रशासन एक सामन्त के हाथ में होता था। जो प्रायः राजकुल से संबंधित होता था। सामंत, महाराज महासामंत, मंडलेश्वर आदि उपाधियाँ धारण करते थे। राजपूत शासक अपनी प्रजा पर शासन न करके सामंतों पर ही शासन करते थे। सांमतों के पास अपने न्यायालय तथा अपनी मंत्रिपरिषद होती थी, तथा समय–समय पर राजदरबार में उपस्थिति होकर भेंट उपहार आदि दिया करते थे। राजा की वास्तविक शक्ति व सुरक्षा की जिम्मेदारी

सामंतों पर ही होती थी। सामंतों की संख्या में वृद्धि से जनता का जीवन कष्टमय हो गया था। वे जनता का मनमाने ढंग से शोषण करते थे।

राजपूत युग में राजाओं द्वारा अपने कुल तथा परिवार के व्यक्तियों को ही उच्च पद पर आसीन किया जाता था। फलस्वरूप इस युग में मंत्रिपरिषद का महत्व अत्यंत घट गया था। इस काल में मंत्रियों का स्थान एक नियमित नौकरशाही ने ग्रहण कर लिया था। तत्कालीन अभिलेखों में कायस्थ नामक अधिकारियों का उल्लेख मिलता हैं। लेखों तथा तत्कालीन साहित्य में कुछ केन्द्रीय पदाधिकारियों के नाम मिलता हैं संधिविग्रहिक, महाप्रतीहार महादण्डनायक, धर्मस्थीय सेनापति आदि। उल्लेखनीय हैं कि ये पद गुप्तकाल से ही शासन में चले आ रहे थे।

राज्य की आय का प्रमुख स्त्रोत भूमिकर था। यह भूमि की स्थिति के अनुसार तीसरे से लेकर 12 वें भाग तक लिया जाता था। उद्योग तथा वाणिज्य कर भी राजस्व का साधन था। वाणिज्य तथा उत्पादित वस्तुओं पर कर लगाए जाते थे। आपातकाल में राजा प्रजा से अतिरिक्त कर वसूलता था। कुलीनों तथा सामंतों द्वारा प्रदत्त उपहार तथा युद्ध में लूट के धन से ही राजकोष में पर्याप्त वृद्धि होती थी। कर ग्राम पंचायतों द्वारा एकत्र किया जाता था। ग्राम पंचायतें केन्द्रीय शासन से प्रायः स्वतंत्र होकर अपना कार्य करती थी। दीवानी एवं फौजदारी के मुकदमों के फैसले भी ग्राम पंचायत द्वारा ही किए जाते थे।

आर्थिक जीवन

राजपूत काल में कृषि जनता की जीविका का मुख्य साधन थी। इस समय तक कृषि का पूर्ण विकास हो चुका था। उत्पादकता के हिसाब से भूमि का वर्गीकरण किया जाता था। जैसे– वाहीत, जो बोया गया हो, अकृष्ट, जिसमें खेती न की गयी हो, ऊसर, जहाँ बीज न उगता हो। कृषि कार्य के लिए हल, फावड़ा, दराती इत्यादि कृषि उपकरणों का उल्लेख हैं। सिंचाई रहट से भी होती थी।

कृषि के साथ व्यापार व्यवसाय उन्नति पर था। तत्कालीन साहित्य तथा लेखों विभिन्न प्रकार के उद्यमियों जैसे तैलिक, रथकार बढ़ाई, ताम्बूलिक, मालाकार, कलाल आदि का उल्लेख मिलता हैं लोहे से अस्त्र–शस्त्र एवं धातुओं से बर्तन तथा आभूषण बनाने का व्यवसाय भी प्रगति पर था। अलबेरुनी जूते बनाने, टोकरी बनाने, ढाल तैयार करने, मत्स्य पालन, कताई–बुनाई आदि का उल्लेख करता हैं व्यवसायियों की अलग–अलग श्रेणियाँ भी होती थी। राज्य श्रेणियों के नियमों का आदर करता था। वे अपने क्षेत्र में कार्य करने के लिए स्वतंत्र थी, किन्तु सामंतो के बढ़ते प्रभाव के कारण श्रेणियों उनती शक्तिशाली नहीं थी जितनी पूर्ववर्ती काल में।

राजपूत युग में आंतरिक तथा बाह्य दोनों ही व्यापार प्रगति पर थे। अलबेरूनी भारत के प्रमुख नगरों को जोड़ने वाले मार्गों का विसतार–पूर्वक उल्लेख करता हैं। जल एवं स्थल दोनों के माध्यम से व्यापर होता था। राजपूत युग में देश की अधिकांश सम्पत्ति मंदिरों में जमा थी। इस कारण मंदिर

अर्थव्यवस्था के केन्द्र बनते गए तथा श्रेणियों की भूमिका घटती गयी। यही कारण है कि मुस्लिम आक्रमणकारियों ने मंदिरों को अपना निशाना बनाया।

धार्मिक जीवन

इस युग में ब्राह्मण तथा जैन धर्म अत्यधिक लोकप्रिय थे। बौद्ध धर्म का अपेक्षाकृत कम प्रचलन था और वह अपने पतन की अंतिम अवस्था में पहुँच गया था। हिन्दू धर्म के अंतर्गत भक्तिमार्ग एवं अवतारवाद का व्यापक प्रचलन था। विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा आदि देवी देवताओं की उपासना होती थी। इनकी पूजा में मंदिर तथा मूर्तियों को बनाया जाता था। भक्ति सम्प्रदाय के आचार्यों में रामानुजाचार्य एवं माधवाचार्य के 8 नाम उल्लेखनीय हैं। रामानुज ने विशिष्टाद्वैत का प्रचार किया तथा उन्होंने ईश्वर की प्राप्ति के लिए भक्ति को आवश्यक बताया। हिन्दू धर्म में बहुदेववाद की प्रतिष्ठा थी तथा अनेक देवी देवताओं की उपासना की जाती थी। वैदिक यज्ञ क्रमशः महत्वहीन हो रहे थे तथा पौराणिक धर्म का ही बोलबाला था। अलवर संतों ने वैष्णव मत के भावनात्मक पक्ष का प्रचार किया तो आचार्यों ने बौद्धिक व दार्शनिक पक्ष को अपनाया। उनकी शिक्षाओं में कर्म ज्ञान व भक्ति का समिश्रण हैं। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत जितने सम्प्रदाय थे, उनमें शैव सम्प्रदाय सबसे अधिक प्रबल था। जनसाधारण के अतिरिक्त अनेक राजवंशों ने शैव धर्म अपनाया और मंदिर बनवाए।

शैव सम्प्रदाय के अन्तर्गत कई मत प्रचलित हुए जैसे– पाशुपत, कपालिक और कालुख। नयनार संतों ने शैव धर्म को और अधिक लोकप्रिय एवं ग्राहय बनाया। इस समय शाक्त सम्प्रदाय भी बहुत अधिक लोकप्रिय हो गया था। हिन्दू धर्म की उन्नति के साथ ही साथ राजपूताना तथा पश्चिमी और दक्षिणी भारत में जैन धर्म भी उन्नति कर रहा था। विभिन्न राजवंशों ने जैन धर्म को संरक्षण प्रदान किया तथा जैन मंदिरों का निर्माण करवाया। राजपूत युग में बौद्ध धर्म अवनति पर था। इस काल आते–आते इस धर्म का नैतिक स्वरूप समाप्त हो चुका था तथा उसका स्वरूप तांत्रिक बन गया। इसके उपासक अनेक प्रकार के मंत्र–तंत्र, जादू टोने आदि में विश्वास करने लगे। बज्रयान का उदय बौद्ध धर्म के अवनति का कारण बना। इस काल में महात्मा बुद्ध को विष्णु का अवतार मानकर हिन्दू धर्म में उन्हें प्रमुख स्थान दे दिया गया।

भाषा एवं साहित्य

राजपूत राजाओं का शासनकाल साहित्य की उन्नति के लिए विख्यात हैं कुछ राजपूत नरेश न केवल उच्च कोटि के विद्वान थे अपितु वे विद्वानों के संरक्षक भी थी। मुन्ज एक उच्च कोटि का कवि था जिसकी राजसभा में ***'नव सहसांकचरित'*** के रचयिता पद्मगुप्त तथा ***'दशरूपक'*** के रचयिता धनन्जय निवास करते थे। भोज अपनी विद्वता तथा काव्य प्रतिभा के लिए लोक विख्यात थे। इस काल में साहित्य संगीत, वास्तु, स्थापत्य, शिल्पशास्त्र, दर्शन आदि पर अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया गया।

कला एवं स्थापत्य

इस काल की वास्तुकला की मुख्य कृतियाँ मंदिर हैं। मोटे तौर पर भौगोलिक आधार पर शास्त्रकारों ने इनकी तीन शैलियां निर्धारित की है। नागर, द्रविड़ और वेसर। नागर शैली उत्तरी भारत में हिमालय से विन्ध्य प्रदेश के भू–भाग में पायी जाती हैं। उत्तर भारत के मंदिरों की दो विशेषताएँ थी– वे वर्गाकार होते हैं और प्रत्येक भुजा के बीच से प्रक्षेप निकलकर क्रमशः ऊपर तक चला जाता हैं। उठानी में एक–एक शिखर होता हैं जो ऊपर जाते हुए वक्र का रूप लेता हैं। शीर्ष भाग गोलाकार आमलक और कलश होता हैं। शिखर में खड़ी रेखा की प्रधानता दिखायी देती हैं। प्रादेशिक विभिन्नता के कारण नागर शैली में भी विभिन्नता दिखायी देती हैं, किन्तु वर्गाकार तथा ऊपर की ओर वक्र होते हुए शिखर इन मंदिरों को विशेषताएँ हैं। उड़ीसा, खजुराहों तथा राजस्थान के मंदिर नागर शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं।

vH;kl ç'u

बहुविकल्पीय प्रश्न

1.कलचुरि सत्ता का उत्कर्ष हुआ–

(क) कोक्कल प्रथम द्वारा (ख) गांगेयदेव विक्रमादित्य (ग) कोक्कल द्वितीय द्वारा (घ) लक्ष्मी कर्ण द्वारा

2. राजपूत शासन व्यवस्था में न्याय एवं सेना का सर्वोच्च अधिकारी था –

(क) सेनापति (ख) राजा (ग) सामन्त (घ) मंत्री

3. राजपूत युग में आय का मुख्य स्रोत था–

(क) भूमिकर (ख) वाणिज्यकर (ग) उपहार (घ) लूट में प्राप्त धन

4. चन्देल शासकों की राजधानी थी–

(क) उज्जैन (ख) धार (ग) खुजराहो (घ) कन्नौज

5. पृथ्वीराजरासो कृति है–

(क) आनन्दवर्धन (ख) भट्ट नारायण (ग) माघ (घ) चन्दरबरदाई

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. राजपूतों की उत्पत्ति सम्बन्धी विवरण दीजिए।
2. प्रमुख चार राजपूत वंशों का वर्णन कीजिए।
3. राजपूत कालीन साहित्य और कला के विकास का उल्लेख कीजिए।
4. राजपूत कालीन धार्मिक जीवन की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1.चन्देलों की राजधानी क्या थी ?
2. परमार वंश का प्रथम स्वतन्त्र शासक कौन था ?
3. गहड़वालों का सर्वाधिक योग्य एवं शक्तिशाली शासक कौन थ ?
4. जयचन्द्र किस युद्ध में पराजित हुआ था ?
5. अवन्ति सुन्दरी कौन थी।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्रमुख राजपूत वंशों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. राजपूत कालीन शासन व्यवस्था की विशेषताओं का निरूपण कीजिए।
3. राजपूत कालीन आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति की विवेचना कीजिए।
4. राजपूत संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं का संक्षिप्त निरूपण कीजिए।

nf{k.k ds jktoa'k

यदि दक्षिण भारत को व्यापक अर्थ में लिया जाए तो इसका तात्पर्य उस सम्पूर्ण क्षेत्र से है जो नर्मदा नदी के दक्षिण में है और पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा पश्चिम में अरब सागर से घिरा है। प्राचीन काल में यह प्रदेश दक्षिण पंथ के नाम से जाना जाता था। दक्षिण भारत में राज्य करने वाले प्रमुख वंश चालुक्य, चोल, राष्ट्रकूट एवं पल्लव थे।

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- दक्षिण भारत के राजवंश एवं उनकी उपलब्धियाँ–
  - चालुक्य वंश
  - राष्ट्रकूट वंश
  - पल्लव वंश
  - चोल वंश

चालुक्य वंश

चालुक्यों ने दक्षिण भारत में कई वर्षो तक शासन किया। चालुक्यों की तीन शाखाएं थीं–

(1) कल्याणी के चालुक्य (2) वातापी के चालुक्य (3) वेंगी के चालुक्य

कल्याणी के चालुक्य– जिन चालुक्य वंशी शासकों ने हैदराबाद स्थित कल्याणपुर को राजधानी बनाया वे कल्याणी के चालुक्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। तैलप प्रथम, तैलप द्वितीय, सत्याश्रय, विक्रमादित्य, जयसिंह, सोमेश्वर प्रथम, सोमेश्वर द्वितीय, विक्रमादित्य पष्टम, सोमेश्वर तृतीय तथा तैलप तृतीय आदि इस वंश के प्रमुख शासक थे। ये चालुक्य शासक कला प्रेमी थे उन्होंने चिकने काले पत्थर से बहुतायत भवन बनवाए। लकुण्डी का काशी विश्वेश्वर मन्दिर (धरवट जिले में) तथा महादेवी का मन्दिर (इत्तगी) में कला के सुन्दर उदाहरण है।

विक्रमादित्य षष्टम इस वंश का सर्वाधिक प्रतापी राजा था। विजेता होने के साथ ही कवियों, विद्वानों का संरक्षण एवं आश्रयदाता था। प्रसिद्ध कवि बिल्हण इन्हीं के दरबार में थे जिन्होंने विक्रमांकचरित नामक ग्रन्थ की रचना कर विक्रमादित्य षष्टम की कीर्ति को चारों ओर फैलाया। इन्हीं के समय में विज्ञानेश्वर ने हिन्दू कानून की प्रसिद्ध पुस्तक 'मिताक्षरा' की रचना की थी। इस वंश का अन्तिम शासक तैलप तृतीय था।

वातापी के चालुक्य

जिन चालुक्य शासकों ने बीजपुर स्थित वातापी को अपनी राजधानी बनाया वे वातापी के चालुक्य कहलाए। इस वंश की स्थापना जय सिंह नामक शासक ने की थी। रणराज, पुलकेशिन प्रथम, कीतिवर्मन, पुलकेशिन द्वितीय, विक्रमादित्य, विनयादित्य, विजयादित्य आदि इस वंश के प्रमुख शासक थे। वातापी का मंगलेश मन्दिर, मेंगुती का शिव मन्दिर तथा ऐहोल का विष्णु मन्दिर इन शासकों की कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। रविकीर्ति जैन चालुक्यों का दरबारी कवि था।

पुलकेशिन द्वितीय इस वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था। इसने अपने साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार किया एवं 'पृथ्वीबल्लभ सत्याश्रय' की उपाधि धारण की। उत्तरी भारत के सम्राट

हर्षवर्धन को नर्मदा नदी के किनारे पराजित किया। पुलकेशिन द्वितीय के अयोग्य उत्तराधिकारियों का लाभ उठाकर राष्ट्रकूटों ने इस राजवंश का अन्त कर दिया।

वेंगी के चालुक्य

आन्ध्र प्रदेश स्थित वेंगी को अपनी राजधानी बनाने वाले शासक वेंगी के चालुक्य कहलाए। इस राजवंश का संस्थापक विष्णुवर्धन था। जयसिंह प्रथम, इन्द्रवर्धन, विष्णुवर्धन द्वितीय, मंगि युवराज, जयसिंह द्वितीय, कोकिल, विष्णुवर्धन तृतीय, आदि इस वंश के प्रमुख शासक थे।

इस वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक विजयादित्य था। शासक बनते ही इसने पल्लवों को पराजित कर नेल्युर नगर पर तथा नोलम्ब राज्य के राजा गांगी को परास्त कर उस पर भी अपना अधिकार कर लिया।

राष्ट्रकूट वंश

चालुक्यों के पतन के बाद आठवीं शताब्दी के अन्त में राष्ट्रकूट नरेश दन्तिदुर्ग ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की एवं मालखड़े को अपनी राजधानी बनाया। कृष्ण प्रथम, ध्रुव धारा वर्ष, गोविन्द द्वितीय, गोविन्द तृतीय तथा अमोघवर्ष प्रथम आदि इस वंश के प्रमुख शासक थे।

गोविन्द तृतीय जो इस वंश का एक प्रमुख शासक था ने दक्षिण भारत में मंगों, चोलों, पाण्ड्यों तथा केरलों को बुरी तरह पराजित किया। कृष्ण तृतीय इस वंश का अन्तिम महान शासक था। लगभग दसवीं शताब्दी में चालुक्य राजा तैलय द्वितीय ने राष्ट्रकूटों के राज्य पर अधिकार कर लिया।

राष्ट्रकूट कालीन संस्कृति

राष्ट्रकूटों के समय में साहित्य की अपार उन्नति हुई। अमोघवर्ष प्रथम द्वारा लिखित 'कविराज मार्ग' तथा ***'रत्नमालिका',*** जिनसेन द्वारा लिखित पार्श्वाभ्युदय प्रसिद्ध कृति हैं। इसके अतिरिक्त अमोघवृत्ति भी एक मुख्य साहित्यिक कृति हैं। जिनसेन, शाक्तायन, वीराचार्य, पोन्न, पाम्पा, रन्ना आदि इस काल के प्रसिद्ध लेखक कवि एवं दार्शनिक थे। ***'कन्हेरी'*** का बौद्ध बिहार इस काल का शिक्षा एवं विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र था। कला के क्षेत्र में कृष्ण प्रथम के समय में निर्मित एलोरा का कैलाश मन्दिर स्थापत्य कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। राष्ट्रकूटों के समय में दक्षिण में पौराणिक हिन्दू धर्म उन्नति पर था। यज्ञों का प्रचलन था।

पल्लव वंश

कृष्णा नदी के दक्षिणी भाग पर पल्लवों का अधिकार था। कांची पल्लवों की राजधानी थी। बप्पादेव इस वंश का संस्थापक एवं प्रथम शासक था। महेन्द्र वर्मन, नरसिंह वर्मन प्रथम, महेन्द्रवर्मन द्वितीय, परमेश्वर वर्मन प्रथम, नरसिंहवर्मन द्वितीय, दन्तिवर्मन आदि इस वंश के प्रमुख शासक थे।

पल्लवकालीन संस्कृति

पल्लवों के शासनकाल में साहित्य की अपार उन्नति हुई। इन शासकों ने तमिल भाषा के स्थान पर संस्कृत भाषा को प्रोत्साहन दिया। पल्लवों की राजधानी कांची साहित्य का प्रमुख केन्द्र थी। कवि भारवि, दण्डिन, मातृदत्त आदि साहित्य सम्राट थे। महेन्द्रवर्मन द्वारा रचित ***'मत्तविलास प्रहसन'*** पल्लवकालीन साहित्य की अनुपम कृतियों में से एक है।

इस काल में वेद अध्ययन तथा संस्कृत भाषा की शिक्षा का अधिक प्रचार हुआ। राजकीय आज्ञाएँ संस्कृत भाषा में लिखी जाती थी। कांची का विश्वविद्यालय शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था। इस काल में मूर्तिकला एवं स्थापत्य का अत्यधिक विकास हुआ। मन्दिर स्थापत्य की चार शैलियाँ 1. महेन्द्र शैली जिसके प्रवर्तक महेन्द्रवर्मन थे। 2. मामल्ल शैली जिसके प्रवर्तक नरसिंह वर्मन प्रथम थे। 3. राज सिंह शैली 4. अपराजित शैली विकसित हुई। पल्लवकालीन शासक वैष्णव एवं शैव धर्म अनुयायी थे। विभिन्न शैव सम्प्रदायों का जन्म इसी काल में हुआ। सन्त अय्यर एवं तिरूज्ञान सम्बन्दर ने शैव धर्म का प्रचार–प्रसार किया।

चोल वंश

नवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पल्लवों की शक्ति क्षीण हो जाने पर चोल वंश का पुनः उदय हुआ। इसके पहले तीसरी व चौथी शताब्दी में पाण्ड्य तथा चेर वंशीय शासकों ने इनका पतन कर दिया था। नवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक इनका प्रभाव न के बराबर रहा। चोल वंश की पुनः स्थापना का श्रेय विजयालय को जाता है। इसके पश्चात आदित्य प्रथम, परान्तक प्रथम, राजराज प्रथम, राजाधिराज प्रथम, राजेन्द्र द्वितीय, वीर राजेन्द्र, कोलोत्तुंग आदि प्रमुख चोल शासक थे।

विजयालय ने तंजौर को अपनी राजधानी बनाकर शासन किया। राजराज प्रथम चोल वंश का शक्तिशाली शासक था। इसने मैसूर के गंगों, मदुरा के पाण्ड्यों तथा वेंगी के चालुक्यों को पराजित कर साम्राज्य विस्तार किया। इसने तंजौर में शिव का एक विशाल मन्दिर निर्मित कराया जो कालान्तर में 'राजराजेश्वर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। चोल साम्राज्य का सर्वाधिक विस्तार राजेन्द्र प्रथम के काल में हुआ। इन्होंने पाण्ड्य तथा केरल राजाओं को परास्त किया तथा अपनी राजधानी ***'गंगौकोण्ड चोलपुरम'*** में एक विशाल मन्दिर तथा एक राजप्रसाद का निर्माण कराया। इस वंश के अन्तिम शासक राजेन्द्र तृतीय को पाण्ड्य शासकों ने पराणित कर चोल वंश का अन्त कर दिया।

चोलकालीन संस्कृति

चोल राजाओं के काल में साहित्य की अपार उन्नति हुई। जीवक चिन्तामणि, शूलमणि, गत्तुप्पीर्ण, कुण्डलकेशि कल्लदम, रसोलियम, दण्डिमलंगारम आदि इस काल की मुख्य साहित्यिक कृति हैं। जैन पण्डित तिरत्क्कदेवर, तोलामोक्ति (लेखक) जयन्गोन्दार कम्बन, कल्लदनर (कवि) आदि इस काल के महान विद्वान थे। इस काल में मन्दिर शिक्षा के केन्द्र थे। कला के क्षेत्र में अपूर्ण उन्नति हुई

तन्जौर का राजराजेश्वर मन्दिर, ब्रह्मदेशम का तिरूपालीशरम मन्दिर ऐरावतेश्वर मन्दिर आदि इस काल की कला के सुन्दर उदाहरण है। चोलकालीन शासक शैव धर्म के अनुयायी थे। शैव मत के अलावा वैष्णव बौद्ध एवं जैन सम्प्रदाय भी अस्तित्व में थे।

चोल प्रशासन

चोलों के शासन की व्यवस्था राजतन्त्रात्मक थी। राजा स्वयं शासन का प्रधान होता था। शासन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण राज्य कई मण्डलों में विभक्त रहता था। प्रत्येक मण्डल में शासन के लिए प्रांतपति नियुक्त किया जाता था। प्रत्येक मण्डल कई कोट्टम में विभक्त रहता था। प्रत्येक कोट्टम कई नाडुओं अर्थात जिलों में विभक्त रहता था। प्रत्येक नाडु के अन्तर्गत कई ग्राम अथवा ग्राम समूह होते थे। चोलों के शासन का संचालन समितियों द्वारा होता था। स्थानीय शासन के लिए श्रेणियाँ तथा अन्य संस्थाएँ भी होती थी। गाँव के लिए ग्राम–समितियाँ होती थी। चोलों के पास स्थल सेना एवं जल सेना की समुचित व्यवस्था थी। चोल शासकों ने सिंचाई के लिए बहुत से कुएँ तथा तालाब खुदवाए तथा नदियों में बाँध बँधवाएं थे। यातायात की सुविधा के लिए बड़ी–बडी सड़कों का निर्माण करवाया था।

vH;kl ç'u

क. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. कन्हेरी का बौद्ध विहार शिक्षा का केन्द था–

(क) चालुक्य (ख) चोल (ग) राष्ट्रकूट (घ) पल्लव

2. मत्तविलास प्रहसन कृति सम्बन्धित हैं–

(क) पल्लवों से (ख) राष्ट्रकूटों से (ग) चोलों से (घ) चालुक्यों से

3. रत्नमालिका के लेखक हैं–

(क) जिनसेन (ख) अमोघवर्ष (ग) रन्ना (घ) दण्डिन

ख. अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. हर्षवर्धन को किस चालुक्य नरेश ने पराजित किया था ?

2. राष्ट्रकूट वंश के प्रमुख शासकों के नाम लिखिए ?

3. ऐहोल का विष्णु मन्दिर किसने बनवाया था ?

4. चोल वंश के चार प्रमुख शासकों के नाम लिखिए।

ग. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. दक्षिण भारत के किन्ही दो राजवंशों का परिचय दीजिए।

2. पल्लव शासन व्यवस्था का उल्लेख कीजिए।

3. चोल प्रशासन की विशेषताओं को लिखिए।

घ. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. चालुक्य वंश का इतिहास लिखिए।

2. पल्लवों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखिए। कला तथा साहित्य के क्षेत्र में उनका क्या योगदान था?

3. चोल साम्राज्य की उपलब्धियों का वर्णन करिए।

bLyke /keZ dk mn;

- ❖ अरब में इस्लाम धर्म का उदय, भारत में उसका आगमन व प्रभाव
- ❖ तुर्क आक्रमणकारी मुहमद बिन कासिम, महमूद गजनवी, मोहम्मद गौरी के आक्रमण व उसका प्रभाव

bLyke /keZ dk mn;

इस्लाम का उदय

इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब का जन्म अरब देश में जिस युग में हुआ वह अत्यन्त पतनोन्मुखी था। अरब के निवासी अज्ञानता के अन्धकार से ग्रस्त थे। ऐसी भीषण प्रतिकूल परिस्थितियों में सातवी शताब्दी में अरब देश में इस्लाम धर्म का उदय हुआ।

महत्वपूर्ण तथ्य

इस्लाम के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब का जन्म 570 ई0 (हिजरी सम्वत् से 53 वर्ष पूर्व) अरब के मक्का नगर में हुआ।

40 वर्ष की अवस्था में उन्हें सत्य का दिव्य दर्शन प्राप्त हुआ और एक देवदूत द्वारा इस बात का सन्देश प्राप्त हुआ कि 'अल्लाह के अतिरिक्त दूसरा कोई ईश्वर नही हैं और मुहम्मद उसके पैगम्बर है। मुहम्मद साहब ने अल्लाह के आदेश से इस्लाम धर्म का प्रचार किया।

महत्वपूर्ण तथ्य

मुहम्मद साहब की शिक्षाएँ पवित्र कुरान में संकलित है। उन्होने प्रत्येक मुसलमान को पाँच कर्म सिद्धान्त निर्धारित किये।

कलमा– अल्लाह एक है।

नमाज– काबा की ओर मुख करके प्रतिदिन पाँच बार अल्लाह की नमाज करना।

रोजा– रमजान के माह में रोजा (व्रत) रखना।

जकात– वर्ष में एक बार अपनी आय का चालीसवाँ हिस्सा गरीबो को दान करना।

हज– जीवनकाल में कम से कम एक बार मक्का की तीर्थयात्रा करना।

भारत में इस्लाम धर्म अरब के व्यापरियों के माध्यम से और मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के समय से स्थापित माना जाता है। जो अरब के व्यापारी इस्लाम धर्म को मानते थे, भारत में उनके आगमन के प्रभाव में आये आस–पास के लोग मुसलमान बने व उन लोगों ने इस्लाम धर्म को अपनाया और अपने पुराने रीति रिवाजों को भी बनाए रखा। भारत के पश्चिमी क्षेत्रों में इस्लाम धर्म का उदय एक महत्वपूर्ण घटना थी।

इस्लाम उदय के साथ भारतीय संस्कृति पर व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा। जिसमें सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं कला के क्षेत्र में काफी व्यापक परिवर्तन देखने को मिला जिसका प्रभाव आने वाले समय में दिखाई पड़ रहा है।

बोध प्रश्न

प्रशिक्षु इस्लाम धर्म के उदय पर अपने विचार व्यक्त करें।

eqgEen fcu dkfle

अरब पहले मुसलमान आक्रमणकारी थे जिन्होंने भारत पर आक्रमण किया। मकरान के मरूप्रदेश के समतली मार्ग से वे सिन्ध में प्रवेश करने में सफल हुये। 712 ई0 में मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध पर सफल आक्रमण किया। अरोर की विजय के बाद मुहम्मद बिन कासिम मुल्तान की ओर बढ़ा और उसको भी विजित कर लिया। मुहम्मद कासिम की सफलता में निम्न कारक उत्तरादी थे।

1. आन्तरिक एकता का अभाव।

2. प्रजा का असहयोग।

3. भारतीयों का विश्वासघात

4. अरब सेना का संगठित होना।

अरब आक्रमण का राजनीतिक दृष्टि से तो बहुत कम प्रभाव पड़ा किन्तु सांस्कृतिक क्षेत्र में इसका प्रभाव स्थायी तथा महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। अरब आक्रमण के फलस्वरूप धार्मिक क्षेत्र अधिक प्रभवित हुआ उसके द्वारा ही इस्लाम का देश में बीज बोया गया सिन्ध की जनता में से बहुतो ने अपना धर्म छोड़कर इस्लाम स्वीकार कर लिया।

बोध प्रश्न

- भारत में इस्लाम धर्म के उदय में मुहम्मद बिन कासिम की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

egewn xtuoh

गजनवी वंश जिसे यामिनी वंश भी कहा जाता है ईरान के शासकों की एक शाखा थी उसके शासक सुबुक्तगीन का बड़ा पुत्र महमूद गजनवी 998 ई0 में गद्दी पर बैठा। जिसका भारत आक्रमण का उद्देश्य इस्लाम धर्म की प्रतिष्ठा को स्थापित करना और भारत की अतुल सम्पत्ति को लूटना था। इसी के तहत् 11वीं सदी में उसने भारत पर आक्रमण किया। उसके द्वारा किया गया 1024 ई0 में सोमनाथ पर आक्रमण बहुत महत्वपूर्ण था वहाँ अतुल धन–सम्पदा मौजूद थी जो उसके आक्रमण का कारण बनी। 1030 ई0 में महमूद की मृत्यु हो गयी।

मुहम्मद गोरी

महमूद गजनवी के भारत आक्रमण के कुछ समय पश्चात् मुहम्मद गोरी ने (148 वर्ष बाद) 12वीं सदी पर भारत में आक्रमण किया। भारत पर उसके आक्रमण का उद्देश्य यहाँ अपने राज्य की स्थापना करना था। सबसे पहले 1175 ई0 में मुल्तान पर आक्रमण किया। पृथ्वीराज के साथ 1191 ई0 में तराइन का प्रथम युद्ध हुआ जिसमें गोरी पराजित हुआ तत्पश्चात् तराईन के द्वितीय युद्ध में उसकी विजय हुयी। इसके बाद गोरी लाहौर लौट रहा था तो शाम की नमाज पढ़ते समय कुछ व्यक्तियों ने अचानक आक्रमण कर 1206 में उसकी हत्या कर दी।

भारत पर उसका प्रभाव

भारतीयों की पराजय का एक कारण जाति व्यवस्था, छुआछूत, ऊँच नीच की भावना व स्त्रियों की हीन स्थिति थी। समाज और धर्म की इस स्थिति ने भारतीयों को विदेशियों की प्रगति से अनभिज्ञ रखा। भारत की नैतिकता, कला, साहित्य और सम्पूर्ण संस्कृति को भी इन परिस्थितियों ने प्रभावित किया। तुर्की आक्रमण के फलस्वरूप राजपूत राजाओं की सैनिक शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा व भारतीय स्थापत्य कला की बड़ी क्षति हुयी इन आक्रमणों के फलस्वरूप ही भारत में एक मुस्लिम राजवंश का प्रारम्भ हुआ।

बोध प्रश्न

✯ महमूद गजनवी व मुहम्मद गोरी के द्वारा किये गये आक्रमणों का राजनैतिक प्रभाव क्या पड़ा।

lYrur dky

- सल्तनत युग की स्थापना व सुदृढ़ीकरण
- सल्तनत कालीन शासकीय वंशो का क्रमिक वर्णन (गुलामवंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैय्यद वंश, लोदी वंश)
- सल्तनत काल की उपलब्धियाँ (प्रशासन, समाज, आर्थिक, सांस्कृतिक, कला एवं साहित्य)
- सल्तनत काल में मंगोल आक्रमण (चंगेज खान व तैमूर) व उसका प्रभाव
- सल्तनत काल के विघटन के कारण

lYrur dkyhu Hkkjr

जैसा कि आप सभी इस तथ्य से परिचित होगे कि भारत को अपने धन व वैभव की उपलब्धता के कारण ***सोने की चिड़िया*** कहा जाता था। उसकी इस प्रसिद्धि ने ही अनेक विदेशी आक्रान्ताओं को भारत पर आक्रमण करने के लिये आमंत्रित किया। इसी क्रम में 12 वीं सदी में जिस वंश का भारत में उदय हुआ उसी से सल्तनत काल के प्रारम्भिक युग का सूत्रपात हुआ।

✯ 1206 ई0 से 1526 ई0 के मध्य भारत में दिल्ली सल्तनत के पाँच राजवंशो का उदय हुआ जिसमें 1206 में मोहम्मद गौरी की मृत्यु के उपरान्त उसके महत्वपूर्ण गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक ने गुलाम वंश की स्थापना की जिसे दास वंश भी कहा जाता है।

गुलाम वंश (दास वंश)

ऐबक का राज्यारोहण 25 जून 1206 ई0 में हुआ। इसने लाहौर को अपनी राजधानी बनायी! इसकी उदारता के कारण इसे लाखबख्श (लाखों का दान देने वाला) कहा जाता था। ऐबक ने कुब्वत–उल–इस्लाम मस्जिद का निर्माण दिल्ली में कराया साथ ही ***अढ़ाई दिन का झोपड़ा*** व ***कुतुबमीनार*** की पहली मंजिल का निर्माण कराया।

गुलाम वंश

कुबुबुद्धीन ऐबक

↓

आरामशाह (1210–11)

↓

इल्तुतमिश (1211–36)

↓

एक्तुद्धीन (1236 ई0)

↓

फिरोजशाह (1236 ई0)

↓

रजिया (1236–40)

↓

मुइजुद्धीन बहराम शाह (1240–42)

↓

अलाउद्धीन मसूदशाह (1242–46)

↓

नासिरूद्धीन महमूद (1246–65)

↓

ग्यासुद्धीन बलबन (1265–87)

↓

कैकूबाद (1287–90)

नोट– *प्रशिक्षु अब ये बताये कि दिल्ली सल्तनत की स्थापना में ऐबक की क्या भूमिका थी।*

कालान्तर में पोलो खेलते समय घोड़े से गिर जाने के कारण 1210 में इसकी मृत्यु हो गयी। कुतुबुद्धीन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र आरामशाह लाहौर की गद्दी पर बैठा किन्तु वह एक अयोग्य शासक सिद्ध हुआ। उसके पश्चात् ऐबक के दामाद और बदायूँ के सूबेदार इल्तुतमिश ने उसकी हत्या कर दिल्ली सल्तनत पर अपना अधिकार कर लिया। उसने चालीस दल या चहलगार्मी का गठन किया जो 40 तुर्की सरदारो का गुट था। इक्ता प्रथा का प्रारम्भ व टंका (चाँदी) व जीतल (ताँबे) का सिक्का चलवाया व कुतुब मीनार का निर्माण पूरा करवाया।

इल्तुतमिश के बाद उसकी पुत्री रजिया बेगम ने 1236–46 तक दिल्ली पर राज्य किया। रजिया के बाद शासन सत्ता बलबन (1266–1287 ई0) के हाथ में आ गयी। 1287 ई0 में बलबन की मृत्यु के पश्चात उसका पोता कैकुबाद दिल्ली की गद्दी पर बैठा जो एक अयोग्य शासक था, जिसका लाभ उठाकर खिलजी अमीरो ने 1290 ई0 में उसकी हत्या कर दी और इस तरह गुलाम वंश के शासन का अन्त हो गया।

खिलजीवंश

खिलजी वंश का शासन काल (1290–1320ई0) के समय दिल्ली सल्तनत की सामाजिक आर्थिक एवं प्रशासनिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। इस काल में न केवल शासक वर्ग के सामाजिक आधार में व्यापक परिवर्तन हुआ अपितु आर्थिक क्षेत्र में भूराजस्व सुधार तथा बाजार नियंत्रण व्यवस्था के साथ–साथ उलेमा वर्ग का राजनीति से पृथक्करण जैसे सुधार हुये थे।

1290 ई0 में जलालुद्दीन फिरोज खिलजी ने भारत में खिलजी वंश की स्थापना की जिसने गुलाम वंश के अन्तिम शासन कैकुबाद की 1290 ई0 में हत्या करके वह दिल्ली की गद्दी पर बैठा। उसके 6 वर्ष के उपरानत 1296 ई0 में अलाउद्दीन खिलजी ने जलालुद्धीन की हत्या कर स्वयं सुल्तान बन बैठा। अलाउद्धीन खिलजी अपने आर्थिक सुधारों जिनमें बाजार व्यवस्था उल्लेखनीय है के लिए इतिहास में प्रसिद्ध था। उसने 1296 से 1316 तक दिल्ली की गद्दी पर कुशलता पूर्वक शासन किया। उसके द्वारा किये गये प्रशासनिक सुधार तत्कालीन परिस्थितियों का ही परिणाम थे। इसके उपरान्त मुबारक खिलजी 1316 से 20 तक दिल्ली सल्तनत की गद्दी पर बैठा यह पहला सुल्तान था जिसने खलीफा का प्रतिनिधि मानने से इन्कार कर दिया तथा दक्षिण भारत में अलाउद्दीन के विपरीत नीति अपनायी। नासिरूद्धीन खुशुरो खिलजी वंश का अन्तिम शासक बना। गयासुद्दीन ने इसकी हत्या कर तुगलक वंश की नीव डाली।

नोट– *प्रशिक्षु अब अलाउद्दीन खिलजी के आर्थिक सुधारों की विवेचना करेगे।*

तुगलक वंश

गाजी मलिक अथवा तुगलक गाजी ग्यासुद्दीन तुगलक के नाम से 1320 ई0 दिल्ली का सुल्तान बना। इस समय सल्तनत विस्तृत समस्याओं से घिरा हुआ था। ***नहर खुदवाने वाला ग्यासुद्दीन पहला शासक था***। 1325 ई0 में 'अफगानपुर में उसकी मृत्यु हो गयी।

इसके पश्चात् मु0 बिन तुगलक (जौना खाँ) 1325 ई0 में दिल्ली का सुल्तान बना। इसके शासन काल में 1333 ई0 में अफ्रीकी यात्री इब्नबतूता भारत आया।

बरनी सुल्तान की पाँच मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करता है।

1. दोआब में कर वृद्धि
2. देवगिरि को राजधानी बनाया
3. सांकेतिक मुद्रा जारी करना
4. खुरासान पर आक्रमण
5. कराचिल पर आक्रमण

सुल्तान ने दीवान–ए–कोही नामक कृषि विभाग का गठन किया। इसी क्रम में थट्टा में 1351 में इसकी मृत्यु हो गयी। 1351 ई0 में मुहम्मद बिन तुगलक की मृत्यु के बाद उसका चचेरा भाई फिरोजशाह तुगलक सुल्तान बना उसमें एक सफल शासक के गुण एवं साहस दोनो का अभाव था। वह प्रथम सुल्तान था, जिसने विजयों तथा युद्धों की तुलना में अपनी प्रजा की भौतिक उन्नति को श्रेष्ठ स्थान दिया शासक के कर्त्तव्यों को विस्तृत किया तथा इस्लाम धर्म को राज्य के शासन का आधार बनाया। 1388 ई0 में फिरोज तुगलक की मृत्यु हो गयी।

फिरोज का उत्तराधिकारी उसका पौत्र तुगलक शाह था जो ग्यासुद्दीन तुगलक द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठा। अगले पाँच वर्षों में तीन शासक आये नासिरूद्दीन महमूद (1394–1412 ई0) में सिंहासनारूढ़ हुआ जो तुगलक वंश का अन्तिम शासक था।

बोध प्रश्न

- ✯ प्रशिक्षु ये बताये कि सल्तनत काल के पतन में निम्न शासको की क्या भूमिका थी।
- ✯ दिल्ली सल्तनत के पतन में फिरोज कितना उत्तरदायी था।

lS¸;n oa'k

तुगलक शासकों के पतन के बाद दिल्ली पर सैय्यदों का अधिकार हो गया। जिसमें सैय्यद वंश की स्थापना खिज्र खाँ ने की उसने 1414 ई0 से 1421 तक शासन किया। 1421–34 तक मुबारक शाह उसका उत्तराधिकारी बना। इसने शाह की उपाधि धारण की व अपने नाम के सिक्के चलवाए। इसके बाद के दो शासक मुहम्मद शाह (1434–44) व अलाउद्धीन आलमशाह (1444–51) हुये जो अयोग्य थे।

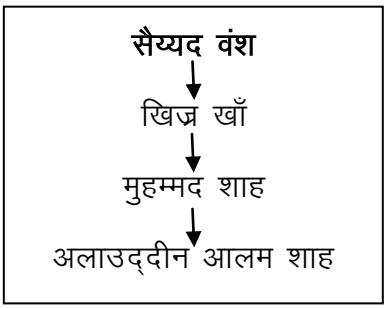

लोदी वंश

अलाउद्दीन आलमशाह ने स्वेच्छा से दिल्ली का शासन त्याग दिया तत्पश्चात् बहलोल लोदी ने 1451 में सिंहासन पर अधिकार कर लिया। बहलोल खाँ अफगानो के लोदी जाति का था। उसने प्रथम अफगान साम्राज्य की नींव डाली। 1489 ई0 में बहलोल लोदी की मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र निजाम शाह ने 17 जुलाई 1489 ई0 को सिकन्दर शाह की उपाधि धारण कर सुल्तान बना। सिकन्दर लोदी ने 1506 में आगरा नगर का निर्माण कराया। सिकन्दर लोदी **''गुलरूखी''** उपनाम से कविताएँ लिखता था व आयुर्वेद पर– फरंहग–ए–सिंकदरी की रचना की।

सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसका बड़ा पुत्र इब्राहिम लोदी 1517 ई0 को गद्दी पर बैठा। 1517–18 ई0 में इब्राहिम लोदी व राणा सांगा के मध्य युद्ध हुआ जिसमें लोदियों की हार हुयी। अप्रैल 1526 ई0 को पानीपत के मैदान में बाबर से युद्ध में इब्राहिम लोदी की पराजय हुयी।

सल्तनत कालीन शासन की उपलब्धियाँ

प्रशासन

मुस्लिम राज्य सैद्धान्तिक रूप से धर्मावलम्बी या ***धर्म प्रधान राज्य*** था। खलीफा ही पूरे मुस्लिम जगत का सर्वोच्च प्रधान होता था। सल्तनकालीन प्रशासन तीन भागों में विभक्त था केन्द्रीय प्रशासन प्रान्तीय प्रशासन व स्थानीय प्रशासन। सुल्तान को शासन कार्य में सहायता के लिये मन्त्रिपरिषद होती थी प्रान्तों में विभक्त साम्राज्य में एक–एक सूबेदार होता था। सल्तनत कालीन शासन का सबसे दुर्बल एवं अव्यस्थित विभाग न्याय विभाग था। सुल्तान राज्य का सर्वोच्च पदाधिकारी होता था। वह पूर्णतया निरंकुश होता था। स्वयं को वह अलाल्ह का प्रतिनिधि मानता था।

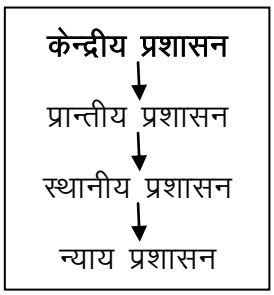

बोध प्रश्न–

✯ प्रशिक्षु सल्तनत कालीन प्रशासन से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों की विवेचना करें।

सल्तनत कालीन सामाजिक दशा

सल्तनत कालीन समाज अपनी विशिष्टताओ के कारण प्रसिद्ध था इस काल में हिन्दू और मुसलमान दोनो का सामाजिक परिदृश्य अलग–अलग था। इस काल में मुस्लिम समाज का रहन–सहन अच्छा था। आरम्भिक काल में मुसलमान कठोर परिश्रमी, उत्साह सम्पन्न थे। तुर्क शासको के शासनकाल में हिन्दू समाज की स्थिति पर्याप्त असन्तोष जनक थी। सल्तनत काल में पितृसत्तात्मक परिवार होते थे। स्त्रियों का स्थान पुरुष की अपेक्षा गिरावट पूर्ण था। इस समय सती प्रथा– जौहर प्रथा बाल विवाह का प्रचलन था। समाज में शाकाहारी और माँसाहारी दोनो प्रकार के लोग थे। सल्तनत काल में हिन्दू व मुसलमान दोनो अलग–अलग पोशाक धारण करते थे।

सल्तनत कालीन आर्थिक दशा

तुर्क आक्रमण के पहले भारत धनसम्पन्न व समृद्धिशाली देश था, किन्तु विदेशी आक्रान्ताओं की लूट–पाट एवं आक्रमण ने उस सम्पन्नता को तहस–नहस कर दिया। सल्तनत कालीन शासको ने अर्थव्यवस्था को सुधारने का पूरा प्रयास किया जिसमें अलाउद्दीन खिलजी व तुगलक शासकों का योगदान स्मरणीय है। सल्तनत काल में कृषि से प्रचुर मात्रा में अन्न का उत्पादन होता था। कृषि पर कुछ कर भी लगाये गये। विदेशी व्यापार भी प्रचलित था। लाहौर, भड़ौच, कोचीन, इस समय के प्रमुख बन्दरगाह थे।

सांस्कृतिक व कलात्मक साहित्य

दिल्ली सल्तनत की स्थापना से भारतीय–इस्लामी संस्कृति का एक नवीन युग प्रांरभ हुआ। जो कि एक समन्वित संस्कृति का सूचक थी। मध्यकाल के दौरान हिन्दू व मुस्लिम सन्तो ने दो सम्प्रदायों के बीच भाईचारा बनाएं रखने के प्रयासों द्वारा सांस्कृतिक विकास में योगदान दिया।

कलाओं के विकास के दृष्टिकोण से सल्तनतकाल उतना सम्पन्न नहीं कहा जा सकता है। तथापि ऐबक के काल में कुतुबमीनार की आधारशिला रखी गयी व कई मस्जिदों का निर्माण किया गया। अरबी–फारसी के मदरसे भी खुले फिर भी साहित्य व कला उपेक्षित रही।

इस काल को साहित्यिक दृष्टिकोण से भी मध्यम माना जा सकता है, इस समय फारसी संस्कृत भाषा के अतिरिक्त हिन्दी, उर्दू और अन्य प्रान्तीय भाषाओं में ग्रन्थ लिखे गये। इस काल के प्रमुख ग्रन्थों में ***मिनहाज–उस–सिराज की तबकाते नासिरी, बरनी की तारिखे फिरोजशाही, अमीर खुसरों की नूहे सिपेहर, तुगलकनाम, जयदेय की गीतगोविन्द, कल्हण की राजतंरगिणी व पृथ्वीराजरासो के रचयिता चन्दरबरदाई*** उल्लेखनीय है।

महत्वूर्ण बिन्दू

- ✯ 1206 ई0 से 1526 के मध्य भारत में दिल्ली सल्तनत के पाँच राजवंशों ने शासन किया।
- ✯ सल्तनकाल में चार कर लिये जाते थे– खम्स, जजिया, जकात व खराज।

बोध प्रश्न

- ✯ प्रशिक्षु सल्तनतकालीन सभ्यता एवं संस्कृति की विवेचना करे।
- ✯ सल्तनतकालीन शासन व्यवस्था के महत्वपूर्ण तथ्यों का वर्णन कीजिए।

lYrurdky esa eaxksy vkØe.k paxst [kk¡ o rSewj ,oa mldk çHkko

13 वीं और 14वीं शताब्दियों का मंगोल साम्राज्य दुनिया का एकमात्र ऐसा खानाबदोश (घुम्मकड़) साम्राज्य माना जाता था जो चंगेज खाँ के नेतृत्व में स्थापित हुआ। साथ ही साथ यह साम्राज्य दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों के लिये एक ऐसे नए शत्रु के आगमन का संकेत था जो आन्तरिक शत्रु की तुलना में कहीं ज्यादा शक्तिशाली, विनाशकारी व आक्रमक थे।

तेमूचिन जो बाद में चंगेज खान के नाम से प्रसिद्ध था खासुल खान का पड़पोता था। चंगेज खान (1206–1227) के नेतृत्व में मंगोलो ने उत्तरी चीन को अपने अधीन किया। दिल्ली सल्तनत स्थापित होने के साथ ही उत्तरी–पश्चिमी सीमा पर वास्तविक समस्या खड़ी हो गयी। उसके द्वारा किये गये आक्रमणों का परिणाम सल्तनत काल को भुगतना पड़ा।

तैमूर का आक्रमण 1398–99 में प्रारम्भ हुआ उसका जन्म 1336 में ट्रांस ओक्सियाना प्रदेश के केश नामक स्थान में हुआ था। 1369 में जब वह समरकन्द के सिंहासन पर बैठा तो उसकी विजय लालसाओ ने उसे भारत–विजय के लिये आकृष्ट किया उस समय भारत में अराजकता फैली हुयी थी। भारत आक्रमण का उसका उद्देश्य मात्र धन–सम्पदा को लूटना था। 1398 में तैमूर ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया व सैनिकों को दिल्ली लूटने का आदेश दिया। लूट में उसे अपार सम्पत्ति प्राप्त हुयी। 1399 में वह स्वदेश समरकन्द लौट गया।

प्रभाव

मंगोल आक्रमणों ने परिस्थितियों में बदलाव उत्पन्न किए जिसका असर मौजूदा संस्थाओं पर भी पड़ा। दिल्ली सुल्तानों के लिये उत्तर–पश्चिमी सीमा को नियंत्रण में रखना आवश्यक था क्योंकि उनको मध्य एशिया और मध्य–पूर्व के साथ व्यापार संपर्क बनाने में मद्द मिलती थी। निरंतर मंगोल आक्रमण के दूरगामी प्रभाव भी पड़ सकते थे। उपजाऊ क्षेत्रों का नाश हो गया, जिससे इस क्षेत्र का सामाजिक–आर्थिक ढाँचा नष्ट हो जाता। अतंतः दिल्ली के सुल्तानों को अपनी राजनीतिक शक्ति और स्थिति सुरक्षित करनी थी।

बोध प्रश्न

★ प्रशिक्षु सल्तनतकाल में हुये मंगोल आक्रमणों के प्रभाव की चर्चा करें।

lYrur dky dk fo?kVu ds dkj.k

दिल्ली सल्तनत की स्थापना गोरी के गुलाम कुतुबुद्धीन ऐबक से शुरू होकर इब्राहिम लोदी की मृत्यु 1526 में खत्म हो गयी साम्राज्य 320 वर्षो तक स्थापित रहा इस प्रकार 320 वर्षो के लम्बे काल में पाँच राजवंशों ने शासन किया। सल्तनत काल के विघटन में बहुत से कारक उत्तरदायी थे।

- साम्राज्य की विशालता
- निरंकुश शासन
- अमीरो का षडयंत्र
- उत्तराधिकार के नियम का अभाव
- केन्द्रीय दुर्बलता
- मुगल आक्रमण

★ उस काल में यातायात के साधनों का अभाव था, भारत जैसे विशाल देश में जीते हुये क्षेत्रों को चिरस्थायी रखना दुष्कर कार्य था।

★ दिल्ली सल्तनत का शासन स्वेच्छाचारिता व निरंकुशता पर आधारित था। ऐसा शासन योग्य शासकों के समय ही स्थायी रहता किन्तु अयोग्य शासकों के समय में गर्त में चला जाता है।

★ दिल्ली सल्तनत के सुल्तान अमीरों के हाथों की कठपुतली मात्रा थे।

★ मुसलमानों में उत्तराधिकार का कोई नियम नही था। सैन्य–शक्ति के आधार पर कोई भी व्यक्ति राज्य का उत्तराधिकारी बन सकता था।

★ फिरोज तुगलक के समय से ही केन्द्रीय सत्ता का ह्रास प्रारम्भ हो गया था इसका प्रभाव प्रान्तीय शासकों पर अत्यधिक पड़ा।

★ मुगलों के लगातार आक्रमणों से दिल्ली सल्तनत की शक्ति को घातक प्रहार लगा तैमूर ने आक्रमणों ने तो उसे जीर्ण–शीर्ण बना डाला और बाबर ने 1526 में दिल्ली सल्तनत को सदैव के लिये समाप्त कर दिया।

बोध प्रश्न

★ प्रशिक्षु ये बतायें कि सल्तनत काल के पतन में कौन से कारक उत्तरदायी थे।

lwQh vkUnksyu

सूफी

सूफी सम्प्रदाय जिसे हम मुस्लिम रहस्यवादी आन्दोलन के नाम से भी पुकारते है इसमें इस्लाम के वाह्य स्वरूप अथवा क्रिया–कलापों धार्मिक यात्राओं आदि पर बल नहीं दिया अपितु आन्तरिक प्रेरणा, सदाचार, मानवता, ईश्वर के प्रति प्रेम अर्थात् धर्म के आध्यात्मिक स्वरूप को पहचानने व उसके अनुसार कार्य करने को ही धर्म का पालन माना है।

- सूफी क्या है।
- इसका स्वरूप
- सूफी आन्दोलन का उद्देश्य
- समाज पर सूफी आन्दोलन का प्रभाव

महत्वपूर्ण तथ्य

अरब में जो व्यक्ति 'सफ' अर्थात् भेड़ के बालों का ऊनी वस्त्र पहनते थे उन्हें सूफी पुकारा गया।

✯ सूफी–दर्शन केवल एक ईश्वर में विश्वास करता है तथा सभी पदार्थों एवं व्यक्तियों को उस ईश्वर में मानता है उसके अनुसार ***'ईश्वर एक है सभी कुछ ईश्वर में है' 'उसके बाहर कुछ नहीं और सभी कुछ त्याग कर प्रेम के द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है'*** वे सभी सांसारिक वस्तुओं का त्याग आवश्यक मानते थे। मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं करते थे ईश्वर में उनकी गहरी आस्था थी जीवो पर दया व गुरू में उनका विश्वास था। (जिसे वे पीर पुकारते थे)।

✯ सूफी आन्दोलन का एकमात्र उद्देश्य सभी को बिना किसी भेद–भाव के ईश्वर के प्रति प्रेम सिखाना तथा पारस्परिक मतभेदों को भुला देना था जो मध्य काल के दौरान समाज में व्याप्त था। इसके अतिरिक्त सल्तनत युग में शहरीकरण की वृद्धि से अनेक सामाजिक कुरीतियाँ बढ़ रही थीं। इन कुरीतियों को समाप्त कर व्यक्तियों को सांसारिक भौतिक दुखों से दूर करना था। हिन्दू और मुसलमानो के पारस्परिक सहयोग से उर्दू भाषा के विकास में भी योगदान दिया। दिल्ली–सल्तनत के समय में सूफी सन्तों में शेख मुईनउद्दीन चिश्ती, बाबा फरीद्दीन, नासिरूद्दीन महमूद, चिराग–ए–देहलवी, मुहम्मद गौस व मलिक मुहम्मद जायसी प्रमुख थे।

✯ सूफी सम्प्रदाय का भारत के धार्मिक जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। यह अन्य बात है कि वह प्रभाव कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित रहा। सूफी सन्तो ने खानकाह बनवाये जहाँ वह स्वयं रहते थे उपदेश देते थे और मानव–सेवा भी करते थे। उन खानकाहों के द्वार हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिये खुले हुये थे। सम्प्रदायिक और धार्मिक मतभेदों को भुलाकर मानवीय एकता और ईश्वर प्रेम पर बल दिया।

''सूफीवाद इस्लाम के धार्मिक जीवन की वह अवस्था है, जिसमें बाह्या क्रियाओं की अपेक्षा आन्तरिक क्रियाओं पर विशेष बल दिया जाता है।''

बोध प्रश्न

1. सूफी सम्प्रदाय किस सम्प्रदाय का अंश है।
2. भारत में सूफीमत के प्रमुख सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिये।
3. सूफी सन्तों का जीवन कैसा था।

HkfDr vkUnksyu

भक्ति आन्दोलन

भक्ति की धारणा का अर्थ एकेश्वर के प्रति सच्ची निष्ठा है। भक्ति आन्दोलन के उपासकों ने विधियों के रूप में कर्मकाण्डों तथा यज्ञों का परित्याग किया। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत उत्पन्न भक्ति आन्दोलन मध्य युग के धार्मिक जीवन की एक महान विशेषता रही है।

- भक्ति आन्दोलन क्या है?
- भक्ति आन्दोलन का स्वरूप व इसके उद्देश्य

भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने उन विशेष बातों पर बल दिया जो इस आन्दोलन का आधार थी, इसके उदय के दो प्रमुख कारण थे–

1. इस्लाम के आक्रमणों से सुरक्षा

2. हिन्दू समाज और धर्म में सुधार की आवश्यकता

इन सभी सन्तो ने किसी विशेष सामाजिक अथवा धार्मिक सम्प्रदाय से अपने को नहीं बाँधा बल्कि उनका विश्वास था कि ईश्वर एक है जिसे हम कई नामों से पुकारते है? उन्होंने मूर्ति पूजा और जाति प्रथा का विरोध किया व केवल भक्ति के द्वारा ही मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बताया।

महत्वपूर्ण तथ्य–*''ईश्वर से केवल भक्ति द्वारा सम्पर्क स्थापित करना ही भक्ति सन्तों का मूल आधार था।''*

इसमें धर्म व जाति पर आधाराति भेदभाव का निषेध किया। इनके मूल सिद्धान्त सूफी सन्तों से समानता रखते थे।

भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्तों के नाम

- रामानुज
- निम्बार्क
- माधवाचार्य
- रामानन्द
- कबीर
- नानक
- बल्लभाचार्य
- चैतन्य
- नामदेव

भक्ति आन्दोलन के मुख्य उद्देश्य पहला इसने हिन्दू धर्म में सुधार का प्रयत्न किया। मूर्तिपूजा व जाति प्रथा का विरोध इसका मुख्य आधार बना। तत्कालीन युग में इस आन्दोलन ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति में कुछ सकलता प्राप्त की परन्तु वह सफलता न तो स्थायी थी न ही स्र्वव्यापी। हिन्दू धर्म में सुधार करने में इस आन्दोलन की क्षमता सीमित और अस्थायी सिद्ध हुयी परन्तु फिर भी यह आन्दोलन बहुत महत्वपूर्ण था। मध्य युग में हिन्दू आत्मा को जीवित रखने और उसे शक्ति प्रदान करने में उसका योगदान अमूल्य रहा। इस आन्दोलन का लक्ष्य हिन्दू–मुस्लिम एकता को स्थापित करना था जो कि इसमें पूर्णतया असफल रहा। इस प्रकार मध्य युग का यह भक्ति आन्दोलन महत्वपूर्ण तथा अपने युग की एक महान विशेषता माना गया है।

बोधप्रश्न

1. भक्ति आन्दोलन के उदय में प्रमुख सन्तों की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
2. प्रशिक्षु भक्ति आन्दोलन के प्रमुख उद्देश्यों की विवेचना करें।

cgeuh jkT;

बहमनी राज्य की स्थापना

1347 ई0 में स्वतंत्र बहमनी राज्य की स्थापना मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल में हुयी वस्तुतः दक्कन में अमीरान–ए–सदा के विद्रोह के फलस्वरूप ही बहमनी राज्य का उदय हुआ। इस विद्रोह की सफलता के बाद विद्रोही अमीरों ने इस्माइल मुख को अपना सुल्तान चुना जिसने अलाउद्दीन हसन शाह को उपाधि धारण की तथा गुलबर्गा को अपनी राजधानी बनाया। इसे खलीफा से शासन की मान्यता प्राप्त हो गयी। इस वंश का अन्तिम शासक कलीमुल्लाशाह हुआ 1527 में उसकी मृत्यु के साथ बहमनी राज्य का अन्त हो गया। बहमनी राज्य में कुल चौदह शासक हुये जिन्होने 180 वर्षो तक शासन किया।

बहमनी राज्य के प्रमुख सुल्तान

- मुहम्मदशाह प्रथम
- मुजाहिब शाह
- मुहम्मदशाह–द्वितीय
- अहमद शाह
- अलाउद्दीन–द्वितीय
- हुँमायू
- निजाम शाह
- मुहम्मदशाह तृतीय

महत्वपूर्ण तथ्य

1470 में एथनेसियम निकितिन नामक रूसी यात्री बहमनी राज्य के भ्रमण पर आया था।

बहमनी साम्राज्य के पतन के लिये निम्न कारक उत्तरदायी थे।

1. बहमनी राज्य को विजयनगर के हिन्दू राज्य से अनवरत युद्ध करना पड़ा जिससे बहमनी राज्य की शक्ति क्षीण हो गयी।
2. बहमनी सुल्तान अत्यधिक असहिष्णु थे और हिन्दुओं का निर्दयतापूर्वक वध करना उनके मन्दिरों को विध्वंस करना उनके जीवन का प्रमुख उद्देश्य था।
3. मुहम्मदशाह की मृत्यु के उपरान्त जो भी शासन राज सिंहासन पर आरूढ़ हुये वे अत्यन्त विलासी स्वभाव के थे। इससे वे अमीरों और प्रान्तीय शासकों पर सकल नियन्त्रण न रख सके।

महत्वपूर्ण तथ्य

बहमनी राज्य के पतन के बाद दक्कन में पाँच स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ– बीदर, बरार, बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुंडा

बोध प्रश्न

- ✯ प्रशिक्षु ये बतायें कि बहमनी राज्य के पतन होने पर यह किन छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त हो गया।
- ✯ बहमनी राज्य में कुल कितने शासकों ने राज्य किया।
- ✯ बहमनी राज्य की राजधानी क्या थी?

fot;uxj lkezkT;

स्थापना

विजयनगर राज्य की स्थापना हरिहर और बुक्का नामक दो भाइयों ने की। ये दोनों भाई यादव वंशीय क्षत्रिय थे। 1336 ई0 में दोनों भाईयो ने संस्कृत के विद्वान ***'माधव विद्यारण्य'*** की सहायता से तुगंभद्रा नदी के तट पर विजयनगर की स्थापना की। हरिहर प्रथम इस वंश का प्रथम शासक हुआ उसके बाद बुक्का शासक बना। 1419 ई0 में देवराय–द्वितीय राजसिंहासन पर आसीन हुआ। वह बड़ा वीर तथा योग्य शासक था उसके शासन काल में दो विदेशी यात्री इटली का निकोलोकोन्टी और फारस का अब्दुर्रज्जाक विजयनगर भ्रमण करने आये और यहाँ का आँखो देखा वर्णन किया।

विजयनगर के प्रमुख सम्राट
- हरिहर प्रथम
- बुक्का
- हरिहर–द्वितीय
- देवराय–द्वितीय
- नरसिंह
- कृष्णदेव राय
- सदाशिव राय

1486 के लगभग नरसिंह सालुव ने अपने स्वामी विरूपाक्ष को सिंहासनाच्युत करके स्वयं राजगद्दी पर अधिकार कर लिया। 1509 से 1529 तक कृष्ण देवराय गद्दी पर बैठा। उसने अपने शासन काल में बड़ी उपलब्धियाँ प्राप्त की। उसकी राज्यसभा में आठ कवियों को आश्रम प्राप्त था जिन्हें 'अस्ट दिग्गज' कहा जाता था।

महत्वपूर्ण तथ्य

कृष्णदेवराय को आन्ध्र भोज की उपधि प्राप्त थी।

उसने अमुक्त माल्यद व जांबवती कल्याणम् जैसे ग्रन्थों की रचना की। पुर्तगाली यात्री डोमिगोसपेइज उसके सम्बन्ध में लिखता है– ''वह इतना विद्वान तथा सफल शासक है। जितना कि होना संभव है। अपने पद, सेना तथा भूमि की दृष्टि से वह किसी भी सम्राट से बढ़कर है''।

1530 ई0 में कृष्णदेव राय की मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य का पतन होना आरम्भ हो गया। कृष्णदेव के बाद उसका भाई अच्युतदेव शासक बना। 1542 में उसकी मृत्यु के बाद सदाशिव राय सिंहासन पर बैठा वह नाममात्र का शासक था। राज्य की वास्तविक शक्ति उसने मन्त्री रामराय के हाथ में थी रामराय की बढ़ती शक्ति से मुसलमान बहुत भयभीत हुये इस्लाम की रक्षा के लिये एक संयुक्त मोंचा बनाया जिसमें बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुण्डा तथा बीदर के राज्य सम्मिलित हुये और 1565 में तालीकोट का युद्ध हुआ जिसमें विजेताओं ने निर्दयतापूर्वक विजयनगर का विनाश किया।

विजयनगर की शासक–व्यवस्था
- केन्द्रीय शासन
- प्रान्तीय शासन
- स्थानीय शासन
- न्याय व्यवस्था
- सामाजिक दशा
- आर्थिक दशा
- साहित्य व कला

विजयनगर राज्य सामन्तशाही प्रथा पर आधारित था। राजा पूर्णतया निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी था। राज्य प्रशासन को सुविधा पूर्वक संचालित करने के लिये साम्राज्य 6 प्रान्तों में विभाजित था।

प्रशासन की सुविधा के लिये प्रान्त ***'कोट्टम'*** में कोट्टम नाडुओं में और नाडु कई नगरों व ग्रामों में विभक्त थे ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई थी। न्याय का प्रमुख स्रोत राजा था। दण्ड विधान कठोर था।

विजयनगर की सामाजिक दशा अच्छी थी। स्त्रियों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। इस काल में सती प्रथा तथा बहु–विवाह प्रचलित था। आर्थिक दृष्टि से विजयनगर अत्यधिक सम्पन्न था। लोगों का प्रमुख पेशा कृषि एवं व्यापार था। विजयनगर के राजाओं की संरक्षता में तेलुगू, तमिल व कन्नड़ भाषाओं तथा साहित्य की बड़ी प्रगति हुयी। दो सौ वर्ष से अधिक तक दक्षिण की राजनीति में सक्रिय भाग लेने वाले विजयनगर साम्राज्य का तालीकोट के युद्ध के उपरान्त पतन हो गया। जिसमें निम्न कारक उत्तरदायी थे।

- ✯ बहमनी राज्य से अनवरत युद्ध।
- ✯ अयोग्य सैनिक संगठन।
- ✯ प्रान्तपतियों की प्रबलता।
- ✯ राज्य के परिश्चमी तट पर पुर्तगालियों का आवास ।
- ✯ अन्तिम शासकों का अत्याचार।

बोध प्रश्न

- ✯ प्रशिक्षु विजयनगर की शासन व्यवस्था का उल्लेख करे ?
- ✯ तालीकोट के युद्ध का क्या परिणाम हुआ।
- ✯ विजयनगर राज्य की स्थापना किसने की थी।
- ✯ हरिहर की मृत्यु के बाद विजयनगर का शासक कौन बना।

नोट– प्रशिक्षु मुगल साम्राज्य की स्थापना, मराठाशक्ति, यूरोपीय शक्तियों का प्रवेश एवं भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना से सम्बन्धित विषयवस्तु का अध्ययन तृतीय सेमेस्टर में करेंगे।

lw;Z] i`Foh] pUnzek dh xfr;ksa esa vUrlZEcU/k

सौरमण्डल के अभिन्न अंग के रूप में पृथ्वी, सूर्य एवं चन्द्रमा की परस्पर एक दूसरे के सापेक्षिक गतियाँ बहुत ही रोचक घटनाओं को जन्म देती हैं। पृथ्वी सौरमण्डल का एक अंग हैं। अतः चन्द्रमा एवं सूर्य से इसका विशेष सम्बन्ध है। जहाँ एक ओर पृथ्वी सूर्य के परितः घूमती है और चन्द्रमा पृथ्वी के परितः चक्कर लगाती है, वहीं दूसरी ओर पृथ्वी अपनी धुरी पर भी घूमती है। पृथ्वी, सूर्य एवं चन्द्रमा के मध्य गतिक सम्बन्धों का हमारे लिए महत्व है। इन्हीं गतियों, सापेक्षिक गतियों के परिणाम स्वरूप, धरातल पर दिन–रात का होना, ऋतु परिवर्तन, महासागरीय भागों में ज्वार व भाटे का आना एवं सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण जैसी घटनायें हमारे समक्ष घटकर कौतूहल उत्पन्न करती हैं। पृथ्वी के धरातल पर मौसमी एवं जलवायविक परिवर्तन इन्हीं गतिक सम्बन्धों का समेकित परिणाम है।

- ✯ सूर्य, पृथ्वी एवं चन्द्रमा की सापेक्षित गतियाँ
- ✯ चन्द्रमा की कलाएं
- ✯ चन्द्रग्रहण
- ✯ सूर्यग्रहण
- ✯ प्राकृतिक शक्तियों का मानव जनजीवन पर प्रभाव

पृथ्वी और सूर्य के मध्य सापेक्षिक गतियों को हम पिछले सेमेस्टर में विस्तृत रूप से अध्ययन कर चुके हैं जिसके परिणाम स्वरूप दिन व रात का होना, ऋतु परिवर्तन अध्ययन के प्रमुख बिन्दु थे। सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा की सापेक्षिक गतियों व उनसे जनित रोचक घटनाओं का अध्ययन भी अतिमहत्वपूर्ण हैं।

पृथ्वी का एक उपग्रह चन्द्रमा है, जो पृथ्वी के निकटस्थ उपग्रह है। चन्द्रमा के धरातल पर वायुमण्डल का अभाव है। चन्द्रमा पर यही कारण है कि जीवन की सम्भावनायें न के बराबर हैं। हम जानते हैं कि चन्द्रमा का स्वयं का कोई प्रकाश नहीं है, बल्कि यह सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशमान होता है। सौरमण्डल के अन्य आकाशीय पिण्डों के समान चन्द्रमा भी गतिशील है। चन्द्रमा की तीन प्रकार की गतियाँ महत्वपूर्ण हैं–

1. घूर्णन
2. परिक्रमण
3. सूर्य के सापेक्षिक गति

चन्द्रमा अपने अक्ष के परितः लगभग 29 दिनों से कुछ अधिक समय में एक परिभ्रमण पूरा करता है। यह अवधि चन्द्रमास के नाम से जानी जाती है। कुल 12 चन्द्रमासों का समूह ***''चन्द्रवर्ष''*** कहलाता है। ध्यातव्य है कि 24 घण्टे 50 मिनट का वह समय जिस दौरान चन्द्रमा की सीध में पृथ्वी पर स्थित बिन्दु पुनः एक बार घूमकर चन्द्रमा के ठीक नीचे उस बिन्दु पर पहुँचता है, ***'चन्द्र दिवस'*** कहलाता है।

अपने दीर्घवृत्तीय पथ पर चन्द्रमा, पृथ्वी के परितः चक्कर लगाता है। यह अवधि 27 दिन 7 घण्टे 43 मिनट होती है। इसे 'नाक्षत्र माह' के नाम से संबोधन प्राप्त है। यह चन्द्रमा की परिक्रमण

अवधि है। इस प्रकार चन्द्रमा की परिभ्रमण तथा परिक्रमण अवधि लगभग समान ही है। अतः चन्द्रमा का केवल आधा भाग ही पृथ्वी से देखा जा सकता है। पृथ्वी की परिक्रमा के साथ ही साथ, चन्द्रमा की सूर्य के सापेक्ष गति होती है।

चन्द्रमा की कलाएं

चन्द्रमा एक ऐसा आकाशीय पिण्ड है जिसका अपना प्रकाश नहीं है। सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा के धरातल से परावर्तित होकर पृथ्वी से दिखाई पड़ता है। जितना प्रकाश चन्द्रमा के धरातल से परावर्तित होता है, उतना ही भाग हमें दिखलाई पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप ही सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा की सापेक्षित स्थितियों में परिवर्तन के कारण सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करने वाले चन्द्रमा के धरातल का क्षेत्रफल भी बदलता जाता है। दूसरे शब्दों में इसकी गोल आकृति के कारण ही आधे भाग पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है, शेष आधा भाग अंधकारमय रहता है। यही कारण है कि हम उसके केवल प्रकाशित भाग को ही घटता या बढ़ता देख पाते हैं। यह आकार कभी हँसिया के समान, कभी अर्द्धवृत्ताकार तो कभी पूर्णतः गोलाकार दिखलाई देता है। यही चन्द्रमा की कलाएं कहलाता है।

जब चन्द्रमा का प्रकाशमान भाग उत्तरोस्तर बढ़ता जाता है, तो उसे शुक्ल पक्ष के नाम से एवंज ब चन्द्रमा का प्रकाशमान भाग उत्तरोत्तर घटता जाता है तो उसे 'कृष्ण पक्ष' से सम्बोधित किया जाता है।

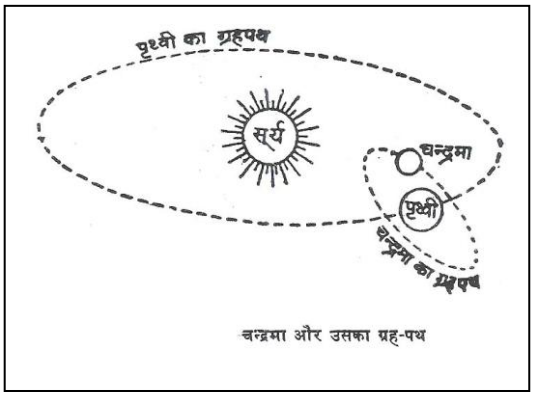

चन्द्रमा और उसका ग्रह-पथ

प्रशिक्षुओं के समक्ष चर्चा करें कि

चन्द्रमा की कलाएं क्यों दिखाई देती हैं?

पूर्णिमा के दिन पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य के मध्य अवस्थित होती है। अतः इस तिथि विशेष को चन्द्रमा, का पूर्ण पटल दिखलाई पड़ता है। वहीं दूसरी ओर अमावस्या के दिन चन्द्रमा, पृथ्वी व सूर्य के मध्य अवस्थित होता है। अतः सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा के उस भाग पर पड़ता है, जो हमारी ओर से दृष्टिगोचर नहीं होता है। फलतः हम चन्द्रमा का अवलोकन नहीं कर पाते हैं। यद्यपि चन्द्रमा का शेष आधा भाग सदैव सूर्य के प्रकाश द्वारा प्रकाशित रहता है।

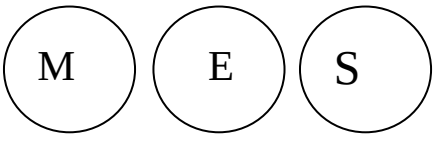

पूर्णिमा

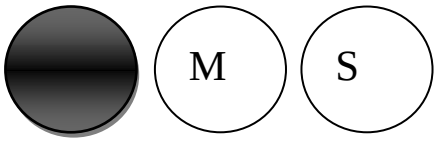

अमावस्या

किन्तु अमावस्था के ठीक अगले ही दिन पृथ्वी के जिस भाग पर हम हैं, उससे चन्द्रमा का केवल चापाकार भाग (नवचन्द्र) ही प्रकाशित दिखलाई देता है। सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित चन्द्रमा का यह दृश्य भाग दिन–प्रतिदिन आकार में उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है और अन्ततः पूर्णिमा तिथि को इसका पूर्ण भाग दिखाई देने लगता है।

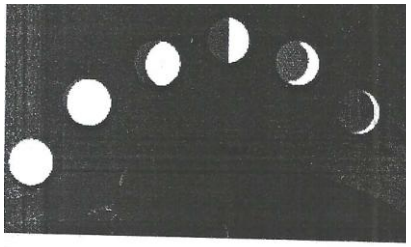

चंद्रमा की विभिन्न कलाएँ

इन्हें भी जानें–

- ✯ चन्द्रमा दीर्घवृत्ताकार कक्षा में पृथ्वी की परिक्रमा करता है। चन्द्रमा की सापेक्षिक स्थिति पृथ्वी के सर्वाधिक निकटस्थ होती है तो इस अवस्था को 'पेरीजी' कहा जाता है।
- ✯ चन्द्रमा की सापेक्षित स्थिति पृथ्वी से सर्वाधिक दूरस्थ होती है तो इस अवस्था को 'एपोजी' कहा जाता है।

ग्रहण

यदि किसी एक प्रकाश बिन्दु से मुक्त होने वाले प्रकाश के मार्ग में कोई वस्तु आ जाती है, तो उससे एक छाया बनती है। इसे 'ग्रहण' के नाम से संबोधित किया जाता है। प्रच्छाया के अन्तर्गत किसी भी स्थान विशेष से अवलोकन करने पर प्रकाश स्रोत ढका या छिपा हुआ दिखलाई देता है। किन्तु यदि प्रकाश स्रोत एक बिन्दु न होकर विस्तृत क्षेत्र होता है, तो उसके मार्ग में आने वाली वस्तु की छाया के तीन अलग–अलग क्षेत्र होंगे। पहली एक नोक पर झुकी हुई घनी शंक्वाकार छाया होती है जो कि प्रच्छाया होती है। प्रच्छाया में प्रकाश बिल्कुल भी नहीं दिखलाई देता है। द्वितीयतः एवं तृतीयतः प्रच्छाया के दोनों ही ओर एक नोक पर झुकी हुई कम घनी छाया होती है। दूसरे शब्दों में इन भागों में आंशिक रूप से प्रकाश विद्यमान होता है।

चन्द्रग्रहण

पृथ्वी, सूर्य एवं चन्द्रमा की सापेक्षिक स्थितियों में परिवर्तन होता रहता है। जब पृथ्वी, सूर्य एवं चन्द्रमा के बीच में अवस्थित होती है, जो चन्द्रमा पर सूर्य का प्रकाश प्राप्त नहीं हो पाता है, बल्कि पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ने लगती है। इसे ही चन्द्रग्रहण कहते हैं। चन्द्रग्रहण की घटना सदैव पूर्णिमा तिथि को होती है, परन्तु प्रत्येक पूर्णिमा तिथि को नहीं होती है। इसका मुख्य कारण है कि पृथ्वी एवं चन्द्रमा के कक्षीय तलों में

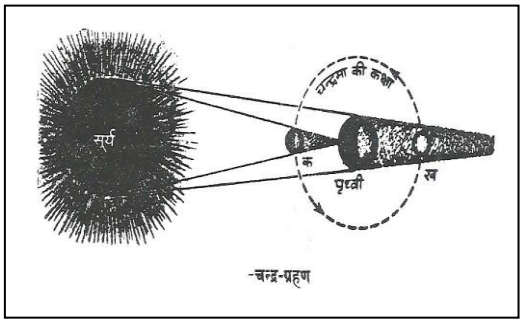

-चन्द्र-ग्रहण

लगभग 5 अंश का झुकाव होता है। चन्द्रमा, पृथ्वी के कक्षीय तल में कभी–कभी होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि चन्द्रग्रहण प्रत्येक पूर्णिमा तिथि को न होकर किसी विशेष पूर्णिमा की तिथि पर ही होता है, जब चन्द्रमा, पृथ्वी के कक्षीय तल में होता है।

सूर्यग्रहण

सूर्य, चन्द्रमा एवं पृथ्वी की सापेक्षिक स्थितियों में परिवर्तन के फलस्वरूप जब पृथ्वी एवं सूर्य के मध्य चन्द्रमा आ जाता है तथा उसकी छाया पृथ्वी पर पड़ने लगती है, तो इसे 'सूर्यग्रहण' की घटना का होना कहा जाता है। दूसरे शब्दों में पृथ्वी एवं सूर्य के मध्य चन्द्रमा की अवस्थिति के परिणाम स्वरूप चन्द्रमा की छाया पृथ्वी पर पड़ने लगती है तथा सूर्य का प्रकाश पृथ्वी को पूर्णतः नहीं मिल पाता है। सूर्यग्रहण की परिघटना सदैव अमावस्या की तिथि को ही घटित होती है। ध्यातव्य है कि सूर्यग्रहण की घटना प्रत्येक अमावस्या तिथि पर नहीं होती है अपितु यह विशेष अमावस्या तिथि पर ही होती है। विशेष अमावस्था तिथि से तात्पर्य, अमावस्या की वैसी तिथि से है जब पृथ्वी, चन्द्रमा के कक्षीय तल में हो।

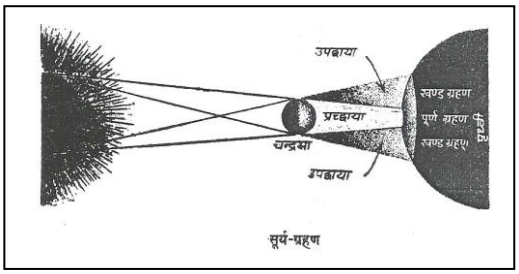

जब चन्द्रमा, सूर्य को पूरी तरह से ढक लेता है तो यह घटना 'पूर्ण सूर्यग्रहण' कहलाती है। वहीं दूसरी ओर यदि चन्द्रमा, सूर्य का कुछ भाग ही ढंग पाता है तो इसे आंशिक सूर्यग्रहण कहा जाता है। सूर्यग्रहण की अवधि में सूर्य के किनारे चमकती हुई अँगूठी के समान दिखलाई देते हैं तो इसे ***''डायमंड रिंग''*** के नाम से संबोधित किया जाता है। डामयंड रिंग के बनने का कारण चन्द्रमा के समीपस्थ भाग की विषमता है।

प्रशिक्षुओं के समक्ष

✯ 20वीं सदी एवं 21 वीं सदी में विभिन्न वर्षों मे सूर्यग्रहण व चन्द्रग्रहण की घटनाओं पर चर्चा–परिचर्चा करें।

वैज्ञानिक अध्ययनों एवं खगोलीय अन्वेषणो से विदित होता है कि एक कैलेण्डर वर्ष में अधिकतम 7 ग्रहण हो सकते हैं। इसमें सूर्यग्रहण की परिघटना वर्ष में कम से कम दो बार एवं अधिकतम 5 बार सम्भव हो सकती है।

महत्व

सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण का हमारे लिए बहुत महत्व है। इस रोचक घटना ने सदा से ही विद्वानों, मनीषियों, एवं वैज्ञानिकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। खगोल विज्ञानियों द्वारा समय–समय पर इस परिघटना के रहस्यो, कारणों एवं उसके प्रभावों पर विचार दिया गया। ज्योतिषशास्त्र का आधार ही इन परिघटनाओं से प्रत्यक्षतः सम्बन्धित हैं। यद्यपि प्राचीन काल में क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित ज्ञान के अभाव में लोग इन घटनाओं से भयभीत हो जाते थे। किन्तु वैज्ञानिक ज्ञान के बढ़ने के साथ–साथ धार्मिक रूप से भी इसका महत्व बढ़ा है। इन तिथियों में जप–तप, दान, पुण्य, तीर्थस्थानों पर स्नान इत्यादि की परंपरायें हैं। ऐसे अवसरों पर मेलों में विभिन्न देशों, प्रदेशों से लोग

एकत्रित होते हैं जिनसे न केवल सामाजिक एवं सास्कृतिक सम्पर्क में अभिवृद्धि होती है अपितु उनसे राष्ट्रीय एकता की भावना भी बढ़ती है।

सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण की तिथियों में सागरीय औसत जलतल में भी पर्याप्त परिवर्तन किसी निश्चित पथ पर देखा जाता है जिसे ज्वार–भाटा कहते हैं। इन तिथियों में दीर्घ ज्वार की उत्पत्ति का अवलोकन किया जाता है।

vH;kl ç'u

1. चन्द्रमा का परिक्रमण पथ है–

(क) वृत्ताकार (ख) दीर्घवृत्ताकार (ग) सरलरेखीय (घ) परवलयाकार

2. चन्द्रमा की पृथ्वी से निकटतम स्थिति कहलाती है–

(क) पेरोजी (ख) एपोजी (ग) पेरिहिलिथन (घ) एपीहिलिथन

3. चन्द्रग्रहण की परिघटना होती है–

(क) अमावस्या (ख) माह की प्रथम तिथि (ग) पूर्णिमा (घ) माह की अंतिम तिथि

4. पृथ्वी का सबसे निकतस्थ उपग्रह है–

(क) फोबोस (ख) डीबोस (ग) टाइटन (घ) चन्द्रमा

5. डायमड रिंग का अवलोकन होता है–

(क) सूर्यग्रहण (ख) चन्द्रग्रहण (ग) चन्द्रवर्ष (घ) चन्द्रमास

6. चन्द्रमा के प्रकाशित क्षेत्र में उत्तरोत्तर वृद्धि का समय क्या कहलता है?

7. चन्द्रमा किससे प्रकाशित होता है ?

8. पृथ्वी से चन्द्रमा का केवल आधा भाग दिखलाई देता है, क्यों?

9. सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

क्रियाकलाप/प्रोजेक्ट कार्य/ जीवन कौशल

- ✯ एक चार्ट पेपर पर प्रशिक्षुओं से चन्द्रमा की कलाओं का रंगीन चित्र बनवाकर अवधारणा को स्पष्ट करायें।
- ✯ सूर्यग्रहण व चन्द्रग्रहण से सम्बन्धित जानकारियों को संचार माध्यमों से एकत्रित करें।

i`Foh ds çeq[k ifje.My

सौरमण्डल में परिभ्रमणशील पृथ्वी ही वर्तमान में एकमात्र ऐसा ग्रह है, जहाँ जैविकीय अस्तित्व है। जीवन के अस्तित्व का इस ग्रह विशेष पर पाया जाना पृथ्वी की अद्वितीय विशेषता है। इसका मुख्य कारण यह है कि पृथ्वी ग्रह पर ही जीवनदायिनी वस्तुएं भूमि, जल एवं गैसों को उपस्थिति है।

- ✯ स्थलमण्डल
- ✯ वायुमण्डल
- ✯ जलमण्डल
- ✯ जीवमण्डल

पृथ्वी का धरातलीय भाग स्थलमण्डल कहलाता है जो कि विभिन्न प्रकार की चट्टानों से मिलकर बना है। इन चट्टानों या शैलों में प्रस्तर एवं मृदा भी सम्मिलित है। समस्त स्थलीय व जलीय भाग को एक आवरण के रूप में घेरे हुआ भाग वायुमण्डल कहलाता है। इसमें विभिन्न प्रकार की जीवनदायिनी गैसें व जलवाष्प की उपस्थिति है। धरातलीय भाग पर उपस्थित जलयुक्त भाग जलमण्डल के नाम से संबोधित किया जाता है। पृथ्वी के धरातल पर उपस्थित ऐसा सीमित क्षेत्र जहाँ तीनों ही मिलते हैं, जैवमण्डल कहलाता है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण मण्डल है जहाँ समस्त जीव–जन्तुओं व वनस्पतियों का अस्तित्व है।

स्थलमण्डल

पृथ्वी की संरचना में ऊपरी सतह को भूपर्पटी को कहा जाता है। इसके अन्तर्गत, पृथ्वी के धरातल पर उपस्थित विभिन्न प्रकार के छोटे–बड़े भूखण्ड सम्मिलित किये जाते हैं। इस भूपर्पटी पर मृदा कई परतों में अवस्थित है, जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के जीवों के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता होती है। स्थलमण्डल के धरातल का लगभग एक तिहाई भाग महाद्वीपों के रूप में विद्यमान है। वहीं दूसरी ओर इसका दो तिहाई भाग महासागर के रूप में विद्यमान है।

प्रशिक्षुओं से चर्चा करें कि

✯ क्या महासागर एक दूसरे से जुड़े हैं ?
✯ क्या महाद्वीप एक दूसरे से जुड़े हैं ?

महासागरों का औसत जल स्तर सागरीय तल कहलाता है। जहाँ एक ओर समुद्रतल से 8850 मीटर की ऊँचाई पर माण्उट एवरेस्ट पर्वत की श्रृंखला है वहीं दूसरी ओर सर्वाधिक गहराई पर स्थित मैरियाना खाई (11022 मीटर) है।

महाद्वीप

समस्त पृथ्वी पर स्थलीय भागों को 7 बड़े– बड़े भूखण्डों में विभाजित किया गया है, जिन्हें महाद्वीप के नाम से सम्बोधित किया जाता है। ये महाद्वीप एशिया, यूरोप, अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा अर्न्ताकटिका प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रशिक्षुओं के समक्ष ग्लोब की सहायता से विश्व के महाद्वीपों की अवस्थिति पर चर्चा करें।

एशिया

यह संसार का सबसे बड़ा महाद्वीप है। संसार के समस्त क्षेत्रफल के एक तिहाई भाग का प्रतिनिधित्व एशिया महाद्वीप द्वारा किया जाता है। समस्त एशिया महाद्वीप की अवस्थिति ग्लोब पर पूर्वी गोलार्द्ध में है। एशिया महाद्वीप यूरोप महाद्वीप से यूराल पर्वत एवं यूराल नदी द्वारा अलग किया जाता है। कर्क रेखा एशिया महाद्वीप से गुजरती है।

यूरोप

इस महाद्वीप की अवस्थिति एशियाई भूखण्ड के पश्चिमी भाग में है। इस महाद्वीप की मुख्य विशेषता है– तीन तरफ से जलीय भाग से घिरा होना। एशिया एवं यूरोप महाद्वीप एक–दूसरे से सम्बद्ध है। यद्यपि एक–दूसरे से ये प्राकृतिक रूप से विभाजित है। जिसमें पर्वतों एवं नदियों की मुख्य भूमिका है।

अफ्रीका

एशिया महाद्वीप के उपरान्त इस महाद्वीप का स्थान क्षेत्रफल में दूसरा है। विषुवत रेखा, कर्क रेखा एवं मकर रेखा इस महाद्वीप से गुजरती है। विषुवत रेखा तो इस महाद्वीप के लगभग बीचोबीच से गुजरती है। अफ्रीका महाद्वीप का काफी बड़ा भू–भाग उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है। अफ्रीका महाद्वीप में ही विश्व का सर्वाधिक क्षेत्रफल वाला मरूस्थल स्थित है। यह महाद्वीप चतुर्दिक सागरों व महासागरों से घिरा हुआ है। इसी महाद्वीप में विश्व की सबसे लम्बी नदी नील नदी स्थित है।

उत्तरी अमेरिका

यह वैश्विक स्तर पर तीसरा सबसे बड़ा महाद्वीप है। यह दक्षिणी अमेरिका से एक सकरे स्थल से जुड़ा हुआ है, जो पनामा स्थलसंधि के नाम से सम्बोधित की जाती है। इस महाद्वीप की अवस्थिति पूर्णतया पश्चिमी एवं उत्तरी गोलार्द्ध में है।

प्रशिक्षुओं से दीवाल मानचित्र या ग्लोब के माध्यम से चर्चा करें कि उत्तरी अमेरिका मानचित्र कितने महासागरों और किसके घिरा है।

दक्षिणी अमेरिका

इस महाद्वीप का अधिकांश भाग दक्षिणी गोलार्द्ध में अवस्थित है। इस महाद्वीप में ही विश्व की सबसे लम्बी पर्वतमाला एण्डीज का विस्तार है। इसी महाद्वीप में विश्व की सबसे बड़ी नदी बेसिन, अमेजन नदी बेसिन की अवस्थिति है, जो कि अटलांटिक महासागर में अपना जल प्रवाहित करती है।

आस्ट्रेलिया

यह एक द्वीपीय महाद्वीप है। आस्ट्रेलिया विश्व का सबसे छोटा महाद्वीप है जो पूर्णतया दक्षिणी गोलार्द्ध में अवस्थित है। यह चारों ओर महासागरों तथा सागरों से स्थायी रूप से आवृत्त है।

अण्टार्कटिका

इस महाद्वीप विशेष की अवस्थिति दक्षिणी ध्रुवीय क्षेत्र में है। यही कारण है कि यह महाद्वीप वर्ष भर हिम से अच्छादित रहता है। परिणामतः यहाँ किसी भी प्रकार का स्थायी मानव निवास नहीं है। इसी महाद्वीप पर भारत सहित विभिन्न देशों के शोध संस्थान बनाये गये हैं, भारत के शोधसंस्थान, मैत्री तथा दक्षिण गंगोत्री यही स्थित हैं।

जलमण्डल

पृथ्वी के समस्त क्षेत्रफल के लगभग 71 प्रतिशत भाग पर जल तथा 29प्रतिशत भाग पर स्थलीय विस्तार है। जलमण्डल में धरातल के सभी जलीय भाग जैसे झील, हिमानी, नदियाँ, सागर, महासागर, भूमिगत जल वायुमण्डल की जलवाष्प सभी सम्मिलित हैं।

पृथ्वी पर पाये जाने वाले जल का 97 प्रतिशत से अधिक भाग महासागरों में पाया जाता है एवं इसमें लवणता की मात्रा इतनी अधिक होती है कि यह पेयजल हेतु अनुपयुक्त होता है। पृथ्वी पर जलीय भाग की प्रतिशतता अधिक होने के कारण इसे ''नीला ग्रह'' कहा जाता है।

महासागरीय जल सदैव गतिशील रहता है। महासागरीय गतियों के रूप में लहरें, ज्वार भाटा, धाराएं प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रशिक्षुओं के समक्ष– विश्व के समस्त महासागरों पर चर्चा परिचर्चा करें–

वायुमण्डल

सम्पूर्ण पृथ्वी को चतुर्दिक घेरे हुए गैसीय आवरण वायुमण्डल कहलाता है। इसकी ऊँचाई लगभग 1600 किमी0 तक होती है। यह गैसीय आवरण पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण शक्ति के कारण टिका रहता है। वास्तव में वायुमण्डल का लगभग 97 प्रतिशत वायु धरातल के निकटस्थ होता है। जैसे–जैसे वायुमण्डल की ऊँचाई बढ़ती जाती है वैसे–वैसे इसकी विरलता बढ़ती जाती है। वायुमण्डल में विभिन्न गैसों का जमाव होता है। इनमें प्रमुख गैसें नाइट्रोजन, आक्सीजन, कार्बन डाईआक्साइड, आर्गन, नियान, हीलियन, ओजोन, आर्गन, हाइड्रोजन, मेथेन, क्रिप्टन, जीनान प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। वायुमण्डल के निचले भाग में जलवाष्प की प्रतिशतता अधिक होती है। इसी से पृथ्वी पर वर्षा तथा हिमपात होता है।

प्रशिक्षुओं से चर्चा करें कि

✯ यदि पृथ्वी पर वायुमण्डल न होता तो यहाँ अर्थात् पृथ्वी पर रात और दिन के तापमान पर क्या प्रभाव पड़ता?

जैवमण्डल

धरातल पर उपस्थित ऐसा निर्धारित क्षेत्र जहाँ स्थल, जल तथा वायुमण्डल एक दूसरे से परस्पर सम्पर्क में आते हैं, जैवमण्डल कहलाता है। इस क्षेत्र विशेष में जीवन के लिए उपयुक्त दशायें विद्यमान रहती हैं। इस भाग में जीव–जन्तुओ तथा वनस्पतियों की उपस्थिति देखी जा सकती है। इस जैवमण्डल का मनुष्य सबसे महत्वपूर्ण अंग या घटक है। इस प्रकार पृथ्वी के उपर्युक्त सभी घटक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से परस्पर एक दूसरे से प्रभावित होते रहते हैं।

vH;kl ç'u

1. धरातल के परिमण्डलों की संख्या कितनी है ?

(क) 6 (ख) 4 (ग) 3 (घ) 8

2. धरातलीय मृदा किस परिमण्डल का अभिन्न अंग है ?

(क) स्थलमण्डल (ख) वायुमण्डल (ग) जलमण्डल (घ) जैवमण्डल

3. विश्व की सबसे लम्बी नदी है–

(क) राइन (ख) मिसीसिपी (ग) नील (घ) हंवागहो

4. पृथ्वी के धरातल पर कितने भाग पर जलमण्डल का विस्तार है–

(क) 1/4 भाग (ख) 3/4 भाग (ग) 1/3 भाग (घ) 2/3 भाग

5. किस महाद्वीप से कर्क रेखा, भूमध्यरेखा तथा मकर रेखा गुजरती है ?

(क) अफ्रीका (ख) एशिया (ग) यूरोप (घ) आस्ट्रेलिया

6. पृथ्वी के विभिन्न परिमण्डलों के नाम लिखिए।

7. एशिया महाद्वीप को घेरे हुए महासागरों के नाम लिखिए।

प्रोजेक्ट कार्य/ क्रियाकलाप

1. स्थानीय परिवेश के परिमण्डलों को चिह्नित कर उनसे सम्बन्धित घटकों का चार्ट पर वर्गीकरण प्रस्तुत करायें।

2. संसार के रिक्त मानचित्र पर विभिन्न महाद्वीपो के प्रमुख नदियों, पर्वतों को अंकित करायें।

LFkye.My

पृथ्वी की आन्तरिक संरचना

पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के सम्बन्ध में मनुष्य का ज्ञान बहुत ही सीमित है। यह अन्दर से इतनी गर्म तथा घनी हैं कि इसके केन्द्र तक कोई नहीं पहुँच सकता। पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के बारे में हमारा ज्ञान अनुमानों पर ही आधारित है।

पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के सम्बन्ध में अभी वैज्ञानिकों के विचारों में मतभेद है। भूगर्भ में पायी जाने वाली परतों की मोटाई, घनत्व, तापमान, भार तथा वहाँ पाये जाने वाले पदार्थों की प्रकृति पर अभी भी पूर्णतः सहमति नहीं बन पायी है। किन्तु वैज्ञानिक इस बात पर अवश्य सहमत हैं कि पृथ्वी की आन्तरिक संरचना लगभग संकेन्द्रीय परतों द्वारा बनी हुई है।

- ✯ पृथ्वी की आन्तरिक संरचना–
  - भूपर्पटी
  - मैंटिल
  - कोर
- ✯ शैल कोड की परिभाषा व प्रकार–
  - आग्नेय
  - अवसादी
  - रूपान्तरित
- ✯ चट्टानों की प्रमुख विशेषताएं

प्रशिक्षुओं से चर्चा करें

✯ एक प्याज की तरह पृथ्वी भी एक के ऊपर एक संकेन्द्रीय परतों से मिलकर निर्मित है।
✯ पृथ्वी की त्रिज्या लगभग 6370 किमी है।

भौतिक व रासायनिक गुणों के आधार पर पृथ्वी की आंतरिक भाग के निर्माण में संलग्न परतों में भेद किया जा सकता है। इन गुणों में मोटाई, घनत्व, तापमान, धात्विक पदार्थों की उपस्थिति, चट्टान प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। इन आधारों पर पृथ्वी के आन्तरिक भाग को तीन मुख्य परतों में विभाजित किया जा सकता है।

1. भू–पर्पटी
2. मैंटिल
3. क्रोड

1. भू–पर्पटी

पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत को भू–पर्पटी कहते हैं। यह परत अन्य परतों की तुलना में पतली मानी जाती है। इसकी औसत मोटाई लगभग 33 किमी0 है। पर्वतों के नीचे यह अधिक मोटी है और

महासागरों के नीचे इसकी मोटाई अपेक्षाकृत कम ही है। महाद्वीपीय भाग में इसकी मोटाई लगभग 35 किमी तथा महासागरीय भाग में यह केवल 5 किमी तक मोटी है।

महाद्वीपीय भूपर्पटी सिलिका तथा एल्यूमिनियम जैसे खनिज, तत्वों से निर्मित है। इसलिए महाद्वीपीय भूपर्पटी सियाल (सि–सिलिका तथा एल–एल्यूमिना) कहा जाता है। वहीं दूसरी ओर महासागरीय भूपर्पटी मुख्यतः सिलिका तथा मैग्नीशियम जैसे खनिज तत्वों से मिलकर बनी है। इसलिए इसे सांइमा (सि–सिलिका तथा मै– मैग्नीशियम) कहा जाता है। भूपर्पटी का औसत घनत्व 2.75– 2.90 तक है।

2. मैंटिल

भूर्पपटी के नीचे अवस्थित परत, जो कि 2900 किमी की गहराई तक विस्तृत है, मैंटिल कहलाती है। मैंटिल ठोस शैलों से निर्मित है। मैंटिल के ऊपरी भाग में एक अर्द्धतरल परत है, जिसे दुर्बलता मण्डल कहा जाता है, जिसमें से ज्वालामुखी उद्‌गार के समय मैग्मा धरातल पर निकलकर लावा के रूप में जमा हो जाता है।

3. कोर

यह पृथ्वी की सबसे भीतरी परत है, जो कि निकिल तथा लोहे जैसे खनिज तत्वों से निर्मित हैं। इस परत के दो भाग हैं– बाह्य कोर एवं आन्तरिक कोर। जहाँ एक ओर बाह्य कोर तरल अवस्था में हैं वही दूसरी ओर आन्तरिक कोर ठोस अवस्था में है। लोहे जैसे भारी तत्वों से निर्मित होने के कारण ही पृथ्वी में चुम्बकत्व का गुण पाया जाता है।

प्रशिक्षुओं से चर्चा करें

- ✯ पृथ्वी के समस्त आयतन का केवल 0.5 प्रतिशत हिस्सा ही भूपर्पटी है। लगभग 16 प्रतिशत मैंटिल तथा 83 प्रतिशत हिस्सा कोर का है।
- ✯ भूपृष्ठ से भूगर्भ की ओर जाने पर सामान्यतया प्रति 32 मीटर पर तापमान एक डिग्री सेल्सियस की दर से बढ़ता जाता है।

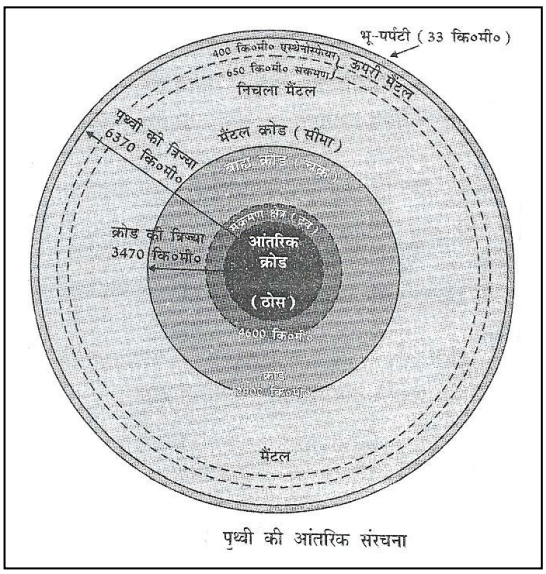

पृथ्वी की आंतरिक संरचना

शैल या चट्‌टान

भूपर्पटी का ऊपरी भाग स्थलमण्डल का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। ऊपरी 100 किमी0 मोटी परत स्थलमण्डल कहलाती है। धरातल से 16 किमी की गहराई तक 95 प्रतिशत भूपर्पटी शैलों की बनी हुई है। चट्‌टान या शैल का निर्माण एक या एक से अधिक खनिजों के मेल से होता है। वे सभी पदार्थ,

जिनसे भूपर्पटी का निर्माण हुआ है, चाहे वो ग्रेनाइट की भाँति कठोर हों, या चीका, रोड़ी, अथवा मिट्टी की भाँति नरम एवं मुलायम हों, शैल कहलाते हैं।

शैलों का वर्गीकरण

भूपृष्ठ पर अनेक प्रकार की चट्टानें पायी जाती हैं, परन्तु उनकी मौलिक रचना के अनुसार चट्टानो के तीन भेद हैं–

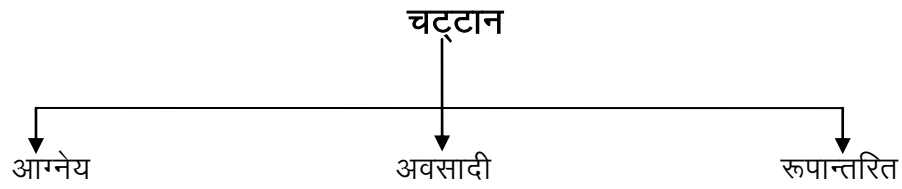

प्रशिक्षुओं से चर्चा करें कि

✯ साधारणतः 'चट्टान' शब्द से कठोरता का बोध होता है। अतः धरातल पर पायी जाने वाली किसी कठोर वस्तुओं को हम 'चट्टान' कहते है, किन्तु भूगोल में इसका भिन्न आशय है। भूगोल में चटटान से आशय खनिज पदार्थों के योगफल से है।

आग्नेय चट्टानें

'आग्नेय' शब्द लैटिन भाषा के शब्द ***'इग्नीस'*** से लिया गया है जिसका अर्थ है– आग। अतः ये ऐसी शैल या चट्टानें हैं जिनके निर्माण में पृथ्वी के आंतरिक भाग में उपस्थित गर्म द्रव्य के ठण्डा होने से हुआ है। सभी चट्टानों का मूल पदार्थ गर्म, तरल तथा चिपचिपा मैग्मा है, जो भूगर्भीय ताप के कारण गहराई से दरारों से होता हुआ धरातल की ओर बढ़ता है तथा यह मैग्मा जब लावा के रूप में धरातल पर फैलकर ठण्डा होकर जम जाता है तो आग्नेय चट्टानों का निर्माण होता है। इन्हें प्राथमिक चट्टाने भी कहा जाता है क्योंकि अन्य चट्टानों का निर्माण भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इन्हीं चट्टानों से हुआ है। ज्वालामुखी क्रिया से आज भी इनका निर्माण क्रम जारी है।

रासायनिक संरचना के आधार पर आग्नेय चट्टानों कई प्रकार की होती है।

क. अम्लीय आग्नेय चट्टान

ख. क्षारीय आग्नेय चट्टान

क. अम्लीय आग्नेय चट्टान

जिन आग्नेय चट्टानों में सिलिका या बालू की मात्रा 65 से 85 प्रतिशत तक होती है, उन्हें अम्ल प्रधान आग्नेय चट्टानें कहते हैं। इनका औसत घनत्व 2.75 से 2.8 होता है। ग्रेनाइट इसका प्रमुख उदाहरण है।

ख. क्षारीय आग्नेय चट्टान

जिन आग्नेय चट्टानों में सिलिका या बालू की मात्रा 45 से 60 प्रतिशत तक होती है, उन्हें क्षारीय आग्नेय चट्टानों की श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है। इनमें फेरों मैग्नीशियम की प्रधानता होती है। लोहे की अधिकता के कारण इनका रंग गहरा व वजन भारी होता है। बेसाल्ट, गैब्रो तथा डोलेराइट इस वर्ग की ही चट्टानें हैं।

विशेषतायें

- ✯ आग्नेय चट्टानों में गोल कण कभी नहीं होते।
- ✯ इन चट्टानों के टूट घर घिसने से गोल कण बन जाता है।
- ✯ इन चट्टानों का सम्बन्ध प्रायः ज्वालामुखी से होता है।
- ✯ इन चट्टानों में यद्यपि रवे होते हैं परन्तु इन रवों का न तो आकार और संख्या आदि ही निश्चित होती है और न ही उनकी रचना में कोई निश्चित क्रम ही देखा जाता है।
- ✯ इन चट्टानों में परते नहीं होती है, बल्कि पूर्णतया सघन होती हैं।
- ✯ ये चट्टानें कठोर तथा रून्ध्ररहित होती हैं। अतः जल का इन पर कोई प्रभाव नहीं होता है।
- ✯ इन चट्टानों में किसी भी प्रकार के प्राणिज अवशेष नहीं पाये जाते।

अवसादी चट्टानें

इन चट्टानों को परतदार चट्टानें भी कहा जाता है। अवसादी चट्टाने वे हैं, जो विखण्डित ठोस पदार्थों के निक्षेपण से बनी हों या जीव– जन्तुओं और पेड़–पौधों के जमाव से निर्मित हों। यद्यपि अवसादी शैल भूपर्पटी के पूरे आयतन का केवल 5 प्रतिशत भाग ही हैं, तो भी पृथ्वी के स्थलमण्डल के 75 प्रतिशत को घेरे हुए है। स्पष्ट है कि ये चट्टानें आग्नेय चट्टानों की तुलना में बहुत कम हैं किन्तु पृथ्वी के धरातल पर ये विस्तृत रूप से फैली हुई हैं। दूसरे शब्दों में अवसादी शैलें उन पदार्थों से बनती हैं, जिन्हें अनाच्छादन के साधन (यथा– प्रवाहित जल, हिमनदी, वायु आदि) निम्न प्रदेशों में एकत्रित करते हैं। इन्हीं अनाच्छादित पदार्थों को तलछट कहते हैं। यह तलछट परत–दर परत एक–दूसरे पर जमा हो जाती हैं। बलुआ पत्थर तथा खड़िया अवसादी शैलों के दो महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। अन्य अवसादी शैलें चूना पत्थर, शेल, स्लेट, कोयला भी उल्लेखनीय है।

विशेषतायें

- ✯ परतदार चट्टाने भिन्न–भिन्न रूपों की होती हैं और छोटे–बड़े भिन्न–भिन्न कणों से निर्मित होती हैं।
- ✯ इनमें बहुत सी परतें अथवा स्तर होते हैं जो एक के ऊपर एक समतल रूप में जमा होते हैं। इन परतों की विशेषता ही इन चट्टानों को आग्नेय चटटानों से अलग करती है।
- ✯ इन चट्टानों में जीव–जन्तुओं एवं वनस्पतियों के अवशेष पाये जाते हैं। ये प्राणिज अवशेष प्रायः दोनों परतों के मध्य दबे रहते हैं।
- ✯ ये चट्टाने अपेक्षाकृत मुलायम होती हैं, इनमें रवे नहीं होते। ये चट्टानें अपरदन से शीघ्र ही प्रभावित हो जाती हैं।
- ✯ इन चट्टाने में जोड़ तथा सन्धियाँ होती हैं।

कायान्तरित चट्टानें

वे चट्टानें जो अन्य चट्टानों के रूप में परिवर्तन द्वारा बनी होती हैं, कायान्तरित चट्टानें कहलाती हैं। कायान्तरित चट्टान, तापमान, दबाव अथवा रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप उनके रूप, बनावट, कठोरता एवं खनिजों का रूपान्तरण हो जाने के परिणाम स्वरूप बनती हैं। कायांतरित का अर्थ है– स्वरूप में परिवर्तन। रूपान्तरण वह प्रक्रिया है जिसमें समेकित शैलों में पदार्थ पुनः संगठित हो जाते हैं।

विशेषताएं

- ✯ इन चट्टानों के निर्माण पर ताप व दबाव का विशेष/गहरा प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि इनमें पाये जाने वाले जीवाश्म नष्ट हो जाते हैं।
- ✯ इन चट्टानों में रवे भी पाये जाते हैं।
- ✯ ये अन्य चट्टानों से अधिक कठोर होती हैं।
- ✯ इनमें रन्ध्रों का सर्वथा अभाव पाया जाता है।

चट्टान का मूल रूप	कायांतरित रूप
• ग्रेनाइट • गैब्रो • बेसाल्ट • बलुआ पत्थर • चूना पत्थर • लिग्नाइट • बिटूमिनस	• नीस • सरपैंटाइन • स्लेट • कवार्ट्जाइट • संगमरमर • एन्थ्रासाइट • ग्रेफाइट व हीरा

vH;kl ç'u

1. पृथ्वी की आन्तरिक संरचना में कितने मुख्य भाग हैं–

(क) 3 (ख) 4 (ग) 5 (घ) 6

2. पृथ्वी में चुम्बकत्व का गुण किसके कारण पाया जाता है–

(क) लौह तत्व (ख) सिलिका (ग) मैग्नीशियम (घ) एल्यूमिनियम

3. चट्टाने कितनी प्रकार की हैं–

(क) पाँच (ख) चार (ग) तीन (घ) छः

4. निम्नलिखित में से रूपांतरित चट्टान है–

(क) ग्रेनाइट (ख) गैब्रो (ग) बेसाल्ट (घ) संगमरमर

5. किन चट्टानों में जीवाश्म पाया जाता है–

(क) आग्नेय (ख) अवसादी (ग) रूपांतरित (घ) इनमें से कोई नहीं

6. आग्नेय चट्टान की मुख्य विशेषतायें लिखिए।

7. अवसादी चट्टानों का निर्माण कैसे होता है ?

8. पृथ्वी की आंतरिक संरचना की परतों के नाम लिखिए।

प्रोजेक्ट / क्रियाकलाप

1. पृथ्वी की आंतरिक संरचना का चित्रण चार्ट पर निर्मित करायें।

2. चट्टान के विभिन्न प्रकारों तथा उनकी विशेषताओं पर सामूहिक चर्चा करायें।

3. स्थानीय परिवेश में उपलब्ध चट्टानों की पहचान कराकर उनकी विशेषतायें लिखवाना।

/kjkry ds :i cnyus okys dkjd

पृथ्वी पर धरातल सर्वत्र एक सा नहीं है। पृथ्वी के धरातल पर जहाँ ओर महाद्वीप और महासागर जैसे विशाल भू–आकार हैं वहीं दूसरी ओर पर्वत, पठार, मैदान, झील, घटियों आदि के सदृश्य स्थल भी गौण रूप में अवस्थित हैं। भूपटल के ये वैविध्य रूप स्थायी नहीं होते हैं। भूगर्भिक इतिहास इस तथ्य को अभिप्रमाणित भी करता है कि हिमालय पर्वत के स्थान पर कभी 'टेथिस सागर' नामक विशाल सागर लहरों से ओत–प्रोत था। गंगा व सिन्धु नदी के वर्तमान मैदानी भू–भाग के स्थान पर कभी विशाल द्रोणी थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि भूपटल के भूद्श्य बनते एवं विगड़ते रहते हैं। भूदृश्यों के विकास एवं विनाश में समेकित रूप से जिन कारकों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से योगदान होता है, उन्हें धरातल पर ***'रूप परिवर्तनकारी कारक'*** कहा जाता है। इन कारकों को उनके उत्पत्ति स्थल के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

- ✯ बल या परिवर्तन कारी कारक
- ✯ बलों का वर्गीकरण
- ✯ अन्तजीत बल
- ✯ पटल विरूपणी बल
  - ♦ उत्पन्न स्थलाकृतियाँ
- ✯ आकस्मिक बल
  - ♦ भूकंप
  - ♦ ज्वालामुखी व प्रकार
  - ♦ वितरण/प्रभावित क्षेत्र

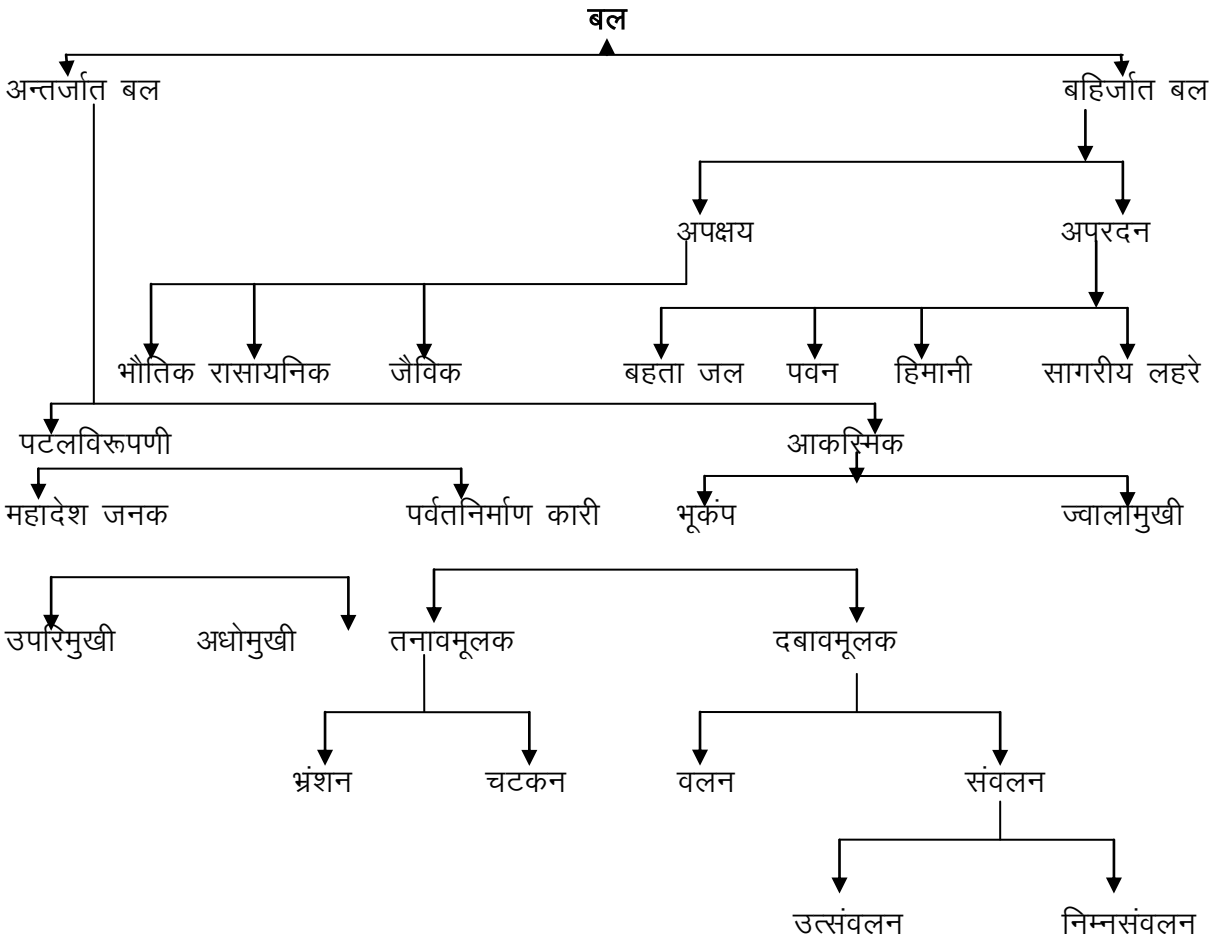

✯ प्रशिक्षुओं से स्थानीय परिवेश में धरातल के विभिन्न प्रकार के भूदृश्यों पर अवलोकन के अधार पर स्थलीय विविधता पर चर्चा करें।

✯ धरातल पर परिवर्तनकारी कारकों पर प्रश्नोत्तर विधि से चर्चा परिचर्चा करें।

(क) अन्तर्जात बल

(ख) बहिर्जात बल

अन्तर्जात बल

पृथ्वी के आन्तरिक भाग में अदृश्य रूप से क्रियाशील शक्तियों को आन्तरिक या भूगर्भिक शक्तियाँ कहा जाता है। इन शक्तियों या बलों की उत्पत्ति भूगर्भ में पर्याप्त गहराई पर आन्तरिक तापमान में परिवर्तन, भीतरी चट्टानों में फैलाव, रेडियोसक्रिय तत्वों के विखण्डन से उत्सर्जित ऊष्मीय ऊर्जा एवं धरातल के आंतरिक भाग में संवहनीय तरंगों के गमनागमन से मैग्मा के उपरिमुखी तथा अधोमुखी संचलन आदि जैसे कारकों से होती है। ये शक्तियाँ पृथ्वी के भीतर से ही अपना कार्य करती हैं। यही कारण है कि इन शक्तियों या बलों को 'अन्तर्जात बल' कहा जाता है। इन्हें 'विवर्तनिक हलचल' भी कहते हैं।

कार्य की तीव्रता, समय के आधार पर भूसंचलन (अन्तर्जात बल) को दो मुख्य भागों में वर्गीकृत कर अध्ययन किया जा सकता है– 1. दीर्घ कालिक/पटलविरूपणी बल 2.आकस्मिक बल

1. पटल विरूपणी बल

भूपटल के वे विक्षोभ तथा स्थान–भ्रंश जिसके प्रभाव में आकर पृथ्वी की पर्पटी झुकती है, मुड़ती है व टूट जाती है या धरातल पर विस्तृत भाग में विषमताएं उत्पन्न हो जाती हैं, पटल विरूपण कहलाता है। भूपटल में इस आमूल– चूल परिवर्तन के लिए उत्तरदायी बल, पटलविरूपणी बल कहलाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पटलविरूपण भू–गतियों का परिणाम है। इनसे दो प्रकार के भूद्श्यों का निर्माण होता है– 1. महाद्वीप निर्माणकारी बल 2. पर्वत निर्माणकारी बल

ऐसे दीर्घकालिक आन्तरिक बल जिनके प्रभाव से महाद्वीप सदृश्य स्थलाकृतियों का निर्माण होता है, महाद्वीप निर्माणकारी बल कहलाते हैं। वस्तुतः ये बल या हलचलें भूगर्भ की आन्तरिक भाग में जनित होती हैं, जो सदैव लम्बवत् दिशा में कार्यरत होती हैं। दिशा के आधार पर इनके दो वर्ग होते हैं–

1. उपरिमुखी संचलन 2. अधोमुखी संचलन

उपरिमुखीय संचलन के कारण महाद्वीपों में दो प्रकार से उत्थान होता है। प्रथमतः जब किसी महाद्वीप का कोई भाग समीपीय सतह से ऊपर उठ जाता है। इसे उत्थान या उभार कहते हैं। वहीं दूसरी ओर जब महाद्वीप का तटीय भाग सागरीय जलतल से ऊपर उठ जाता है तो इसे निर्गमन कहते हैं।

अधोमुखी संचलन में महाद्वीपीय भाग ऊपर न उठकर नीचे की ओर धँस जाता है। दूसरे शब्दों में ऐसा संचलन महाद्वीपीय भाग को दो प्रकार से धँसने के लिए प्रेरित करता है। प्रथमतः जब स्थल का कोई भाग अपने समीपस्थ सतह से नीचे अवतलित हो जाता है। द्वितीयतः जब कोई स्थलीय भाग सागर तल से नीचे जलमग्न हो जाता है तो इसे निमज्जन कहा जाता है।

प्रशिक्षुओं से चर्चा करें कि–

✯ अवतलन की क्रिया धरातल पर कहीं भी हो सकती है किन्तु निमज्ज्न की क्रिया तटीय भागों में ही सम्भव है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि उपरोक्त गतियों के समेकित प्रभाव से पर्वत, पठार तथा मैदानों की उत्पत्ति होती है।

पर्वत निर्माण कारी बल

पृथ्वी के आंतरिक भाग में जनित ऐसी हलचल, जिनसे पर्वतों के निर्माण की प्रत्यक्ष भूमिका होती है, पर्वत निर्माणकारी बल कहलाता है। वस्तुतः ऐसी हलचलें पृथ्वी की क्षैतिज गतियाँ हैं जो इसके आंतरिक भाग में उत्पन्न संवहनीय तंरगों के गमनागमन के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होती हैं। यद्यपि इन बलों/ हलचलों का प्रभाव भूपटल के सीमित क्षेत्र में ही होता है, किन्तु इन बलों से चट्टानों में भारी परिवर्तन आ जाता है। इन गतियों से भूपटल की शैलें मुड़ जाती हैं, टूट जाती है या उलट जाती हैं भूपटल की शैलों के मुड़ने से पर्वतों की रचना होती है। पर्वतों की रचना में संलग्न क्षैतिज गतियाँ दो प्रकार से कार्यशील होती हैं– 1. दबाव मूलक 2. तनाव मूलक

1. दबावमूलक बल

पृथ्वी के अन्तर्जात बल के प्रभाव से भू–पृष्ठ में सिकुड़न होती हैं। सिकुड़न के फलस्वरूप क्षैतिज संचलन से चट्टानों में दबाव या संपीडन की स्थिति उत्पन्न होती है। इस दबाव से चट्टानों की परतें मुड़ जाती हैं। चट्टानों में मोड़ों का पड़ना 'वलन' कहलाता है। शीर्ष या शिखर की तरह ऊपर की ओर उठे मोड़ को अपनति कहते हैं। अपनति में चट्टानों के स्तर शीर्ष से विपरीत दिशाओं में झुके रहते हैं। गर्त या द्रोणी की तरह नीचे की ओर धंसे मोड़ को अभिनति कहा जाता हैं। इसकी भुजाएं एक–दूसरे की ओर झुकी रहती हैं।

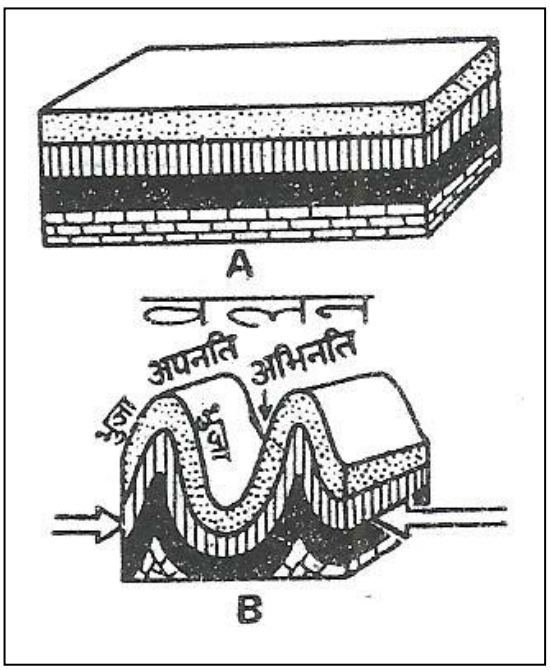

वलन के रूप

सभी चट्टानों के मोड़ो या वलनों में एकसमानता नहीं होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि भूपटल की चट्टाने सर्वत्र एकसमान नहीं होती हैं। इतना ही दबाव बल की तीव्रता में भी अन्तर इसका दूसरा कारण होता है। इस आधार पर वलन के कई रूप हो सकते हैं–

- ✯ सममित वलन
- ✯ असममित वलन
- ✯ एकनति वलन
- ✯ अधिवलन
- ✯ समनत वलन
- ✯ परिवलन
- ✯ अधिक्षिप्त वलन
- ✯ पंखाकार वलन

सममित वलन

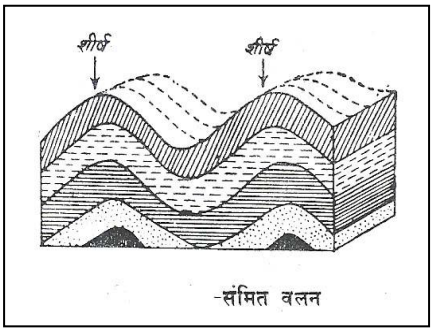

-संमित वलन

ऐसा वलन या मोड़ जिसमें चट्टान की दोनों ही भुजाएं समान रूप से झुकी होती हैं। दूसरे शब्दों में, यह वलन साधारण प्रकार का होता है। इस वलन की मुख्य विशेषता यह होती है कि चट्टान पर दोनों ओर से दबाव बल की तीव्रता में लगभग समानता होती है। यह खुला वलन होता है।

असममित वलन

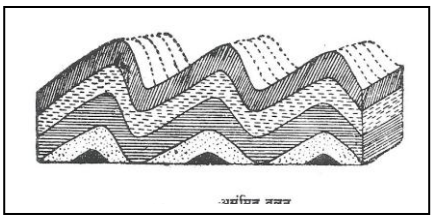

इस वलन में वलन की एक भुजा की तुलना में दूसरी भुजा अधिक झुकी होती है। कम झुकाव वाली भुजा अपेक्षाकृत लम्बी तथा अधिक झुकाव वाली भुजा अपेक्षाकृत छोटी होती है। जाहिर है भुजाओं के झुकाव में अन्तर दबाव बल की तीव्रता में अन्तर के कारण परिलक्षित होता है।

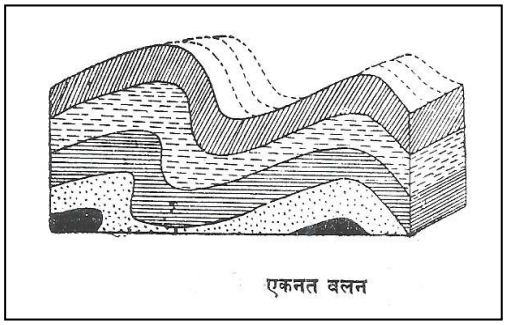
एकनत वलन

एकनति वलन

इस प्रकार के वलन में वलन की एक भुजा बिल्कुल खड़ी या लम्बवत् तथा दूसरी झुकी हुई होती है। इतना ही नहीं अधिक दबाव बल पड़ने पर खड़ी भुजा टूट भी सकती है।

अधिवलन

इस वलन की एक भुजा बिल्कुल खड़ी न रहकर कुछ आगे की ओर निकली रहती है तथा खड़ा ढाल बनाती हैं। वहीं दूसरी ओर दूसरी भुजा जिसकी लम्बाई अपेक्षाकृत अधिक होती है, कम झुकी होने के कारण धीमा ढाल बनाती है।

समनत वलन

इस वलन विशेष की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें वलन की दोनों भुजाएं एक ही ओर झुकी होती हैं तथा वे लगभग समान्तर होती हैं।

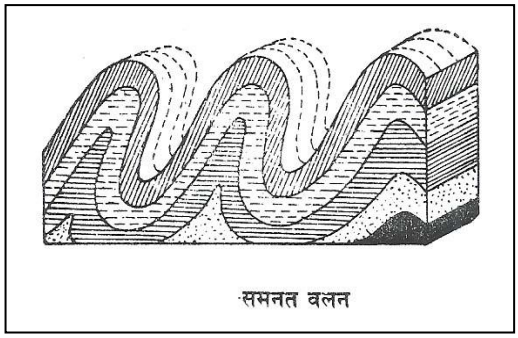
समनत वलन

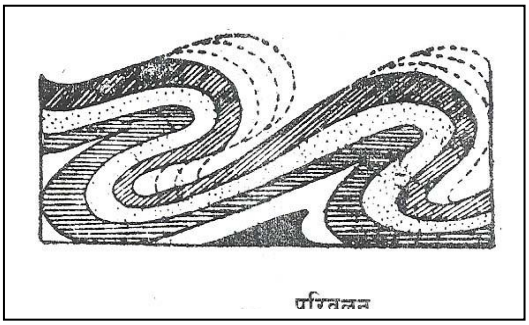
परिवलन

परिवलन

ऐसे वलन में वलन की दोनों भुजाएं इतनी झुक जाती हैं कि एक–दूसरे के ऊपर क्षैतिज अवस्था में आ जाती हैं। दबाव बल की तीव्रता के परिणामस्वरूप पूरा का पूरा वलन धरातल के समान्तर हो जाता हैं।

अधिक्षिप्त वलन

जब कभी क्षैतिज संचलन और दबाव बल की तीव्रता बहुत अधिक हो जाती है कि चट्टानों की परतें वलन अक्ष पर टूट जाती हैं और एक–दूसरे पर चढ़ जाती हैं। इतना ही नहीं एक–दूसरे पर अध्यारोपित हो जाती हैं। परिणाम स्वरूप चट्टानों का क्रम उलट जाता है।

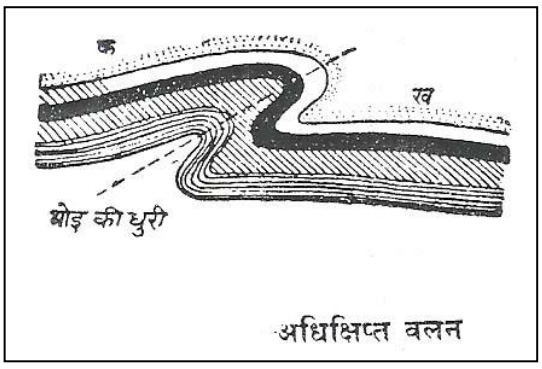

अधिक्षिप्त वलन

भ्रंशण

जब भूपटल पर किसी एक स्थान में सम्पीडन होता है, तो दूसरे स्थान में तनाव उत्पन्न होता है। जहाँ एक ओर सम्पीडन (दबाव बल) के कारण भूपटल पर वलन वहीं दूसरी ओर तनाव बल के कारण भ्रंशण की स्थिति उत्पन्न होती है।

तनाव बल की तीव्रता के कारण जब भूपटल में एक तल के सहारे चट्टानों का स्थानान्तरण हो जाता है तो उसे भ्रंश की संज्ञा दी जाती है। दूसरे शब्दों में कभी–कभी चट्टानों में तनाव इतना अधिक हो जाता है कि चट्टानों फैलने लगती हैं। जब तनाव शक्ति चट्टानों की सहनशक्ति से अधिक हो जाती हैं तो वे मुड़ने के स्थान पर चटक जाती हैं। इतना ही नहीं कभी–कभी तो वे टूट भी जाती हैं और इधर–उधर खिसक जाती हैं।

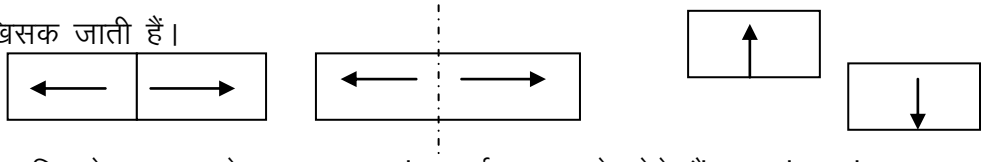

ज्यामितीय दृष्टि से दृश्यता के आधार पर भ्रंश कई प्रकार के होते हैं– समांतर भ्रंश, सामान्य भ्रंश, व्युत्क्रम भ्रंश, अनुदैर्ध्य भ्रंश, सोपान भ्रंश, तिर्यक भ्रंश इत्यादि।

भ्रंश से उत्पन्न होने वाली प्रमुख स्थलाकृतियाँ

भ्रंशन की प्रक्रिया का मुख्य आधार तनाव बल है। इस प्रक्रिया द्वारा स्थलखण्ड का कुछ भाग ऊपर उठ जाता है तथा कुछ भाग नीचे खिसक जाता है। भ्रंशन द्वारा निर्मित स्थलरूपों में होर्स्ट, ग्राबेन, रिफ्ट घाटी महत्वपूर्ण हैं–

दो भ्रंशों के बीच उठे हुए स्थल खण्ड को होर्स्ट या भ्रंशोत्थ पर्वत कहते हैं। यद्यपि ये आकार में छोटे होते हैं। किन्तु इनकी संरचना पठारी होती है। यूरोप का ब्लैक फारेस्ट, वास्जेस, भारत के विन्ध्यन श्रेणी, सतपुड़ा श्रेणी, अजन्ता श्रेणी भ्रंशोत्थ पर्वत के उदाहरण हैं।

भ्रंश घाटी

भ्रंशोत्थ पर्वत का निर्माण दो भ्रंश घाटियों के मध्य होता है। दो भ्रंशों के मध्य धंसी हुई भूमि को भ्रंशघाटी कहा जाता है। ये भ्रंश घाटियाँ लम्बी, सकरी और, गहरी हुआ करती है जिसे ग्रैबेन, कहा जाता हैं। ग्रैबेन जर्मन भाषा का शब्द है। विश्व में ब्लैकफोरस्ट व वास्जेस पर्वतों के मध्य राइन नदी घाटी भ्रंश घाटी में प्रवाहित होने का उदाहरण है। भारत में नर्मदा तथा ताप्ती नदियाँ भ्रंश घाटी में प्रवाहित होती हैं, जो प्रायद्वीपीय पठार के सामान्य ढाल के विपरीत पूरब से पश्चिम दिशा में प्रवाहित होती हैं।

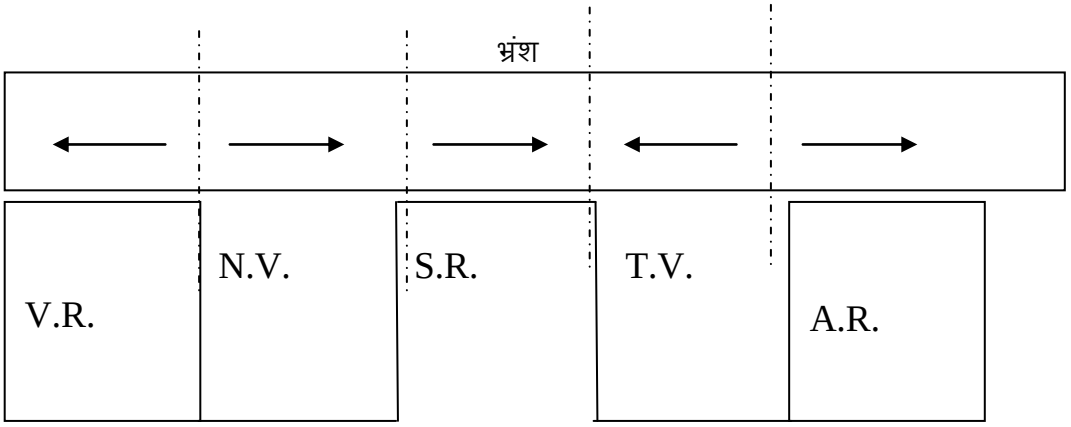

✯ प्रशिक्षुओं के समक्ष एटलस के सहायता से विश्व के अन्य भ्रंशोत्थ पर्वतों एवं भ्रंश घाटियों को संसार के मानचित्र पर चित्रित कराया जाय।

✯ प्रशिक्षुओं से तनाव बल तथा दबाव बल में अन्तर पर चर्चा करें।

आकस्मिक बल

पृथ्वी के आंतरिक भाग में कार्यशील वह बल, जो दीर्घ काल तक कार्यरत नहीं होता है अपितु कम समय के लिए ही निश्चित समयांतराल या कभी–कभी अपनी उपस्थिति सुनिश्चित कराती हैं, आकस्मिक बल कहलाती है। ऐसे बलों की कार्यशीलता के परिणामस्वरूप भूपटल पर आकस्मिक रूप से विचित्र घटनाएं व भूदृश्य देखे व अनुभव किये जाते हैं। इन घटनाओं में ज्वालामुखी एवं भूकंप प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

ज्वालामुखी

ज्वालामुखी एक प्राकृतिक घटना है जिसके कारण पृथ्वी के आन्तरिक तथा बाह्य भागों में हलचल होती है तथा आन्तरिक भाग से तप्त लावा बाहर निकलने लगता है और चारों तरफ फैल जाता है। दूसरे शब्दों में ज्वालामुखी एक ऐसा शंक्वाकार पर्वत है, जिसके द्वारा भूगर्भ से नली या दरार द्वारा आकस्मिक रूप से कीचड़, धुआं, वाष्प, गैंसे, लावा तथा चट्टानी पदार्थों का प्रवाह धरातल पर पाया जाता है।

सामान्य रूप से ज्वालामुखी एक छिद्र के रूप में आरम्भ होता है। इस छिद्र का सम्बन्ध नली द्वारा भूगर्भ में काफी गहराई तक रहता है। पृथ्वी के आंतरिक भाग में हलचल से इस छिद्र की रचना होती है। ज्वालामुखी का यह छिद्र कुछ सौ मीटर से अधिक व्यास तक हो सकता है। इसे प्रायः ज्वालामुखी नली कहते हैं। यहाँ निर्मित शंकु के ऊपरी भाग को 'क्रेटर' कहते हैं। उद्भेदन के समय ज्वालामुखी से निकला हुआ पदार्थ मुख के आस–पास जमा हो जाता है जिसके कारण इसे ज्वालामुखी पर्वत की संज्ञा दी जाती है।

प्रशिक्षुओं से चर्चा करें कि

✯ ज्वालामुखी से गैस, तरल व ठोस तीनों प्रकार के पदार्थ बाहर निकलते हैं।

✯ इन पदार्थों में सर्वाधिक 80–90 प्रतिशत भाग वाष्प का होता है।

✯ तरल पदार्थों में लावा महत्वपूर्ण है।

✯ धरातल के अन्दर अर्द्धतरल पदार्थ ***'मैग्मा'*** कहलाता है तथा धरातल पर निकलकर फैल जाने पर इसे ***'लावा'*** कहा जाता है।

✯ लावा, सिलिका की प्रतिशतता के आधार पर अम्लीय तथा क्षारीय प्रकृति में वर्गीकृत किया जाता है।

✯ सिलिका की प्रतिशतता 75 प्रतिशत से अधिक होने पर लावा अम्लीय प्रकृति का तथा प्रतिशता कम होने पर क्षारीय प्रकृति का होता है।

✯ अम्लीय लावा, अधिक गाढ़ा एवं क्षारीय लावा पतला होता है।

प्रकार

उद्देश्य के आधार पर ज्वालामुखी तीन प्रकार के होते हैं–

1. सक्रिय ज्वालामुखी
2. प्रसुप्त ज्वालामुखी
3. शान्त/सुसुप्त ज्वालामुखी

1. सक्रिय ज्वालामुखी

ऐसे ज्वालामुखी, जिसके मुख से समय–समय पर धूलकण, धुआँ, वाष्प, गैसें, राख, चट्टानखण्ड, लावा आदि पदार्थ बाहर निकलते रहते हैं। विश्व में सक्रिय ज्वालामुखियों की संख्या लगभ 500 से अधिक मानी गई है। इनमें से प्रमुख रूप से सिसली द्वीप का माउण्ट एटना, भूमध्य सागर के लिपारी द्वीप पर अवस्थित माउण्ट स्ट्राम्बोली, हवाईद्वीप पर अवस्थित माउण्ट मोना लोआ प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। निरंतर सक्रियता के कारण ही माण्उट स्ट्राम्बोली ज्वालामुखी को ***"भूमध्य सागर का प्रकाश स्तम्भ"*** भी कहा जाता हैं।

जाग्रत ज्वालामुखी

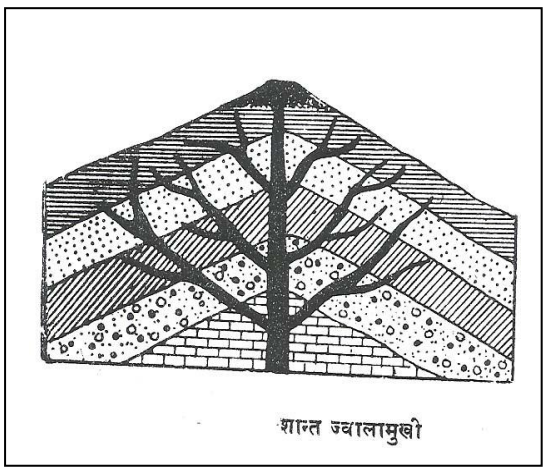

शान्त ज्वालामुखी

2. प्रसुप्त ज्वालामुखी

ऐसे ज्वालामुखी, जो दीर्घकाल तक शान्त रहने के पश्चात् आकस्मिक रूप से पुनः किसी समय सक्रिय हो जाते हें, प्रसुप्त ज्वालामुखी कहलाते हैं। इन ज्वालामुखियों से अपार जन धन की हानि होती है। इटली का विसूवियस इसका प्रमुख उदाहरण है। अन्य सुसुप्त ज्वालामुखी जापान का फ्यूजीयामा उल्लेखनीय है।

3. शान्त ज्वालामुखी

ऐसे ज्वालामुखी, जिनसे अब कोई उद्गार नहीं होता और न ही उद्गार होने की सम्भावना ही रह जाती है, शान्त ज्वालामुखी कहलाते हैं। इनके छिद्र ज्वालामुखी पदार्थों से भर जाने एवं लावा के

जम जाने से बन्द हो जाते हैं। ऐसे ज्वालामुखी का वैश्विक वितरण बहुत कम संख्या में है। यथा– म्यामॉर स्थित माउण्ट पोपा ज्वालामुखी एक शान्त ज्वालामुखी का उत्कृष्ट उदाहरण है।

ज्वालामुखी उद्‌गार से बनने वाली स्थलाकृतियाँ

ज्वालामुखी क्रिया का क्षेत्र धरातल के नीचे तथा ऊपर दोनों ही तरफ होता है। अतः ज्वालामुखी स्थलरूपों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है– 1. बाह्य स्थलरूप 2. अभ्यान्तरिक स्थलरूप

इन्हें भी जानें–

- ✯ **बम–** तीव्र वेग के कारण पत्थर के बड़े–बड़े टुकड़ों का ऊपर पहुँचकर गिरना।
- ✯ **लैपिली–** कुछ सेण्टीमीटर व्यास वाले लघु शिलाखण्डों का बन्दूक की गोली की भाँति धरातल पर गिरना।
- ✯ **स्कोरिया–** लैपिली से भी छोटे आकार के (चने के दाने के समान) शिलाखण्डों का धरातल पर गिरना।
- ✯ **प्यूमिस–** ऐसे शिलाखण्ड जो हल्के व छिद्रदार होते हैं और लावा के झाग से बने होते हैं।
- ✯ **ज्वालामुखीपंक–** ज्वालामुखी विस्फोट के उपरान्त वर्षा हो जाने से निर्मित धूल कण।
- ✯ **टफ–** धूलकण व ज्वालामुखी राख के संगठित टुकड़े।
- ✯ **ब्रेसिया–** स्कोरिया के संगठित कोणीय टुकड़े।
- ✯ **लहर–** भारी मात्रा में सामग्री का उद्‌भेदन।

1. बाध्य स्थल रूप

ज्वालामुखी शंकु – ज्वालामुखी का उद्‌भेदन जब एक छिद्र के सहारे होता है, तो उसमें से निकलने वाला पदार्थ मुख के चारों ओर जमा हो जाता है और शंकु का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार निर्मित शंकु 'ज्वालामुखी शंकु' कहलाता है। धीरे–धीरे यही ज्वालामुखी शंकु–ऊँचा उठकर पर्वत का रूप धारण कर लेता है। यथा–जापान का फ्यूजीयामा एक ज्वालामुखी पर्वत है।

लावा निर्मित पठार

जब ज्वालामुखी उद्‌गार दरार के रूप में विस्तृत भू–क्षेत्र में होता है तो उससे अधिक मात्रा में तप्त व गर्म मैग्मा धरातल पर लावा के रूप में परत दर परत जमा होकर धीरे–धीरे ठंण्डा होकर चादर के रूप में काफी दूर तक फैल जाता है। समस्त प्रदेश लावा के जमाव से ढक जाता है। इस प्रकार निर्मित ऊँचा प्रदेश 'लावा पठार' की संज्ञा से संबोधित किया जाता है। यथा– संयुक्त राज्य अमेरिका का कोलंबिया का पठार ऐसे ही निर्मित लावा पठार का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

पारिभाषिक शब्द

- ✯ **क्रेटर–** ज्वालामुखी शंकु के शिखर पर कीपाकार एक गड्‌ढा, जिसका निचला भाग ज्वालामुखी छिद्र से मिला रहता है।

★ **काल्डेरा–** 'स्पेनिश' भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है, कड़ाहा। विस्तृत क्रेटर का आकार ही काल्डेरा है।

गेसर

यह एक गर्म जल का स्रोत होता है जिससे समय–समय पर गर्म जल तथा वाष्प निकला करती है। गेसर आइसलैण्ड भाषा के ***'गेसिर'*** से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है, तेजी से उछलता हुआ या फुहार छोड़ने वाला। इस प्रकार स्पष्ट है कि गेसर गरम पानी के स्रोतों को कहते हैं, जिनसे समय–समय पर उष्ण जल और वाष्प फुहारों के रूप में बड़ी तीव्रता से ऊपर उठती है। संसार में जितने भी गेसर पाये जाते हैं, वे सब सक्रिय ज्वालामुखी क्षेत्रों में ही पाये जाते हैं। ग्रेसर का प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही मनोहारी होता है। यही कारण है कि ये पर्यटकों के आकर्षण केन्द्र होते हैं।

संसार में गेसरों के वितरण का कोई निश्चित क्रम नहीं है। अफ्रीका एवं दक्षिणी अमेरिका के अलावा अन्य सभी महाद्वीपों में गेसर देखे जा सकते हैं। उत्तरी अमेरिका के संयुक्त राज्य अमेरिका का ***'यलोस्टोन पार्क'*** एशिया व तिब्बत, यूरोप का आइसलैण्ड, एवं न्यूजीलैण्ड देश में ये अधिकता से पाये जाते हैं।

अभ्यांतरिक स्थलाकृतियाँ

जब ज्वालामुखी क्रियाओं के द्वारा भूगर्भ की गहराइयों से गर्म लावा आन्तरिक संवहनीय तंरगों के प्रभाव में आकर ऊपर की ओर भूपटल की तरफ उपरिमुखीय संचलन करता है तथा मार्ग में गहराइयों पर मिलने वाली चट्टानों व उनकी दरारों में लावा धीरे–धीरे जम जाता है, जिससे विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतियाँ कहते हैं। इनमें बैथोलिथ लैकोलिथ, लोपोलिथ, फैकोलिथ, सिल, डाइक प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

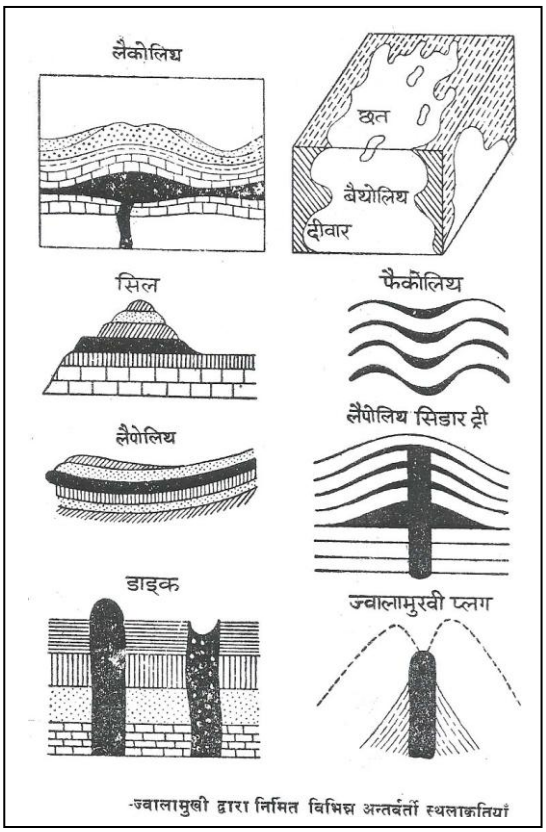

ज्वालामुखी द्वारा निर्मित विभिन्न अन्तर्वर्ती स्थलाकृतियाँ

ज्वालामुखियों का विश्व वितरण

ज्वालामुखी सामान्यतः द्वीपों अथवा महाद्वीपों के सागरीय तटों पर पाये जाते हैं। जहाँ कहीं भी ज्वालामुखी महाद्वीपों के भीतर स्थित हैं, वहाँ वे या तो नवीन वलित पर्वतों के पास में या भूपटल पर पड़ी दरारों के निकट पाये जाते हैं।

वैश्विक स्तर पर ज्वालामुखी की तीन मुख्य मेखलायें हैं– 1. परिप्रशान्त महासागरीय मेखला 2. यूरेशियाई मध्य महाद्वीपीय मेखला, 3. अटलांटिक महासागरीय मेखला

1. परिप्रशान्त महासागरीय मेखला

प्रशान्त महासागर में स्थित द्वीपों व उसके चतुर्दिक तटीय भागों में ज्वालामुखीय श्रृंखलायें विस्तृत हैं। इस मेखला का प्रधान केन्द्र इण्डोनेशिया हैं। अकेले ही जावाद्वीप में ही 43 ज्वालामुखी अवस्थित हैं। यहीं से यह श्रृंखला छोटे–छोटे द्वीपों में होकर फिलीपीन्स द्वीपसमूह तक पहुँचती है। वहां से यह उत्तर की ओर फिलीपीन्स, ताइवान द्वीपों में होती हुई जापान तक जाती है। इस क्षेत्र में अनेक जाग्रत ज्वालामुखी हैं। अलास्का के पश्चिमी तट से यह श्रृंखला कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चिमी तट से होकर मध्य अमेरिका में पहुँचती है। यहां से यह एण्डीज पर्वत के सहारे सुदूर दक्षिणी छोर तक चली जाती है। इस मेखला को ''प्रशान्त महासागर का अग्निवलय'' भी कहा जाता है। विश्व के दो तिहाई ज्वालामुखी इसी मेखला में पाये जाते हैं।

यूरेशियाई मध्य महाद्वीपीय मेखला

यह ज्वालामुखी प्रदेश यूरेशिया महाद्वीप के मध्यवर्ती भागों में नवीन वलित पर्वतों के सहारे पूर्व से पश्चिम दिशा में फैली हुई है। यह आइसलैण्ड से प्रारम्भ होकर स्काटलैण्ड होती हुई अफ्रीका के कैमरून पर्वत कीओर जाती है। कनारी द्वीप पर इसकी दो शाखाएं हो जाती हैं। पूर्व की जाने वाली शाखा स्पेन, इटली, सिसली, टर्की, काकेशिया, आरमेनिया, ईरान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, भारत म्यामार व मलय प्रायद्वीप तक विस्तृत है। इसके अलावा अरब में जार्डन की रिफ्ट घाटी व लाल सागर होती हुई एक श्रृंखला अफ्रीका की महान भ्रंश घाटी तक फैली हुई हैं।

अटलांटिक महासागरीय मेखला

अटलांटिक महासागर में केवल मध्य अमेरिका की ज्वालामुखी श्रृंखला लघु एंण्टीलीज द्वीपों में प्रवेश कर पश्चिमी द्वीप समूह तक जाती है। आइसलैण्ड में भी सक्रिय ज्वालामुखी पाये जाते हैं।

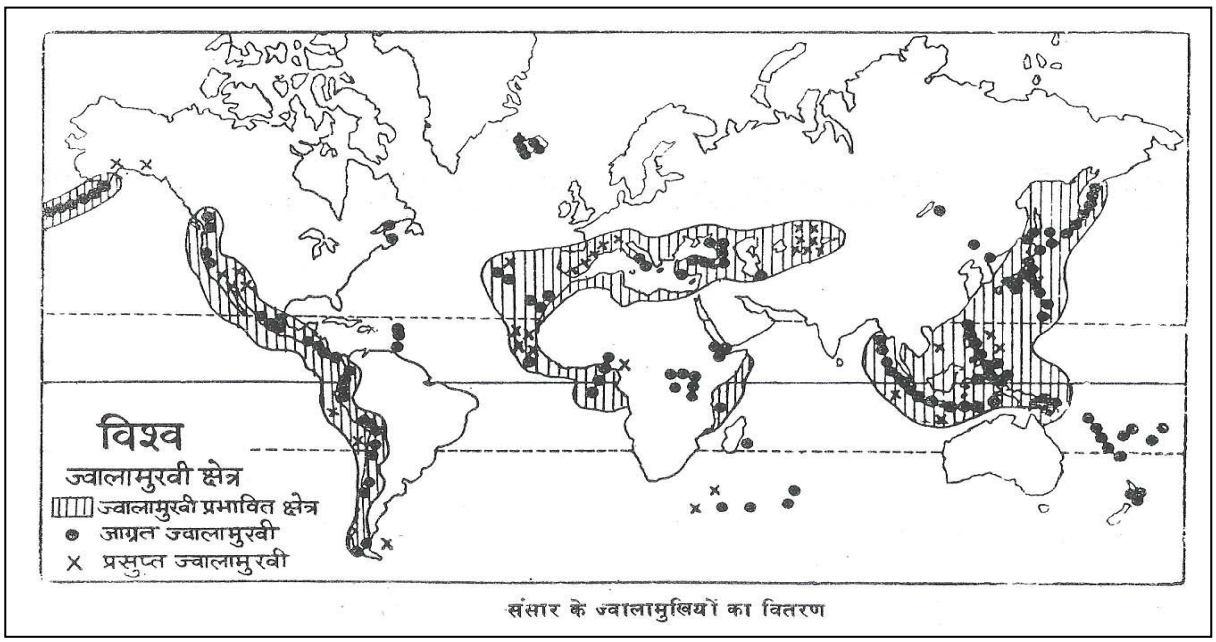

संसार के ज्वालामुखियों का वितरण

भूकम्प

'भूकम्प' शब्द का साधारण अर्थ है पृथ्वी का हिलना। परन्तु केवल इतने अर्थ से ही भूकम्प का ठीक–ठीक अनुमान नहीं किया जा सकता है। पृथ्वी के गर्भ में होने वाली किसी हलचल के कारण जब धरातल का कोई भाग अकस्मात् कॉप उठता है, तो उसे भूकम्प कहते हैं।

प्रशिक्षुओं से चर्चा करें

✯ जब किसी तालाब में कोई पत्थर फेंका जाता है तो सभी दिशाओं की ओर लहरों की एक श्रृंखला आरम्भ हो जाती है। इसी प्रकार से भूंकपीय लहरें भी उठती है।

भूकम्पीय तरंगे

विज्ञान की वह शाखा, जिसमें भूकम्प का अध्ययन किया जाता है, भूकम्प विज्ञान कहलाती है। विज्ञान की इस शाखा के अन्तर्गत भूकम्पवेत्ता भूकम्प के रहस्यों का पता लगाते हैं तथा इनसे बचाव हेतु आपदा प्रबन्धन की योजनाओं का निर्माण करते हैं।

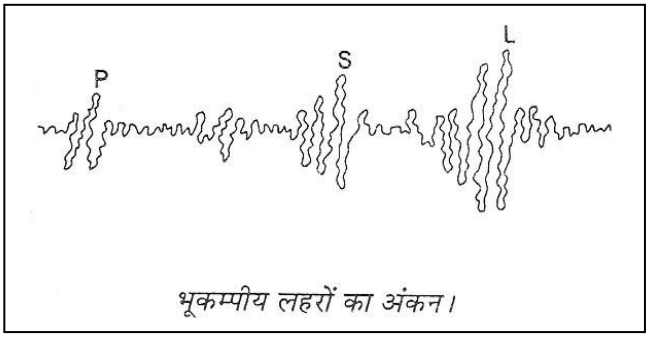

भूकम्पीय लहरों का अंकन।

भूकम्पीय तंरगों का अंकन एक यंत्र द्वारा किया जाता है जिसे ***'सिस्मोग्राफ'*** कहते है। भूकम्प की उत्पत्ति धरातल के नीचे कुछ गहराई में होती है। यह गहराई कुछ किमी से लेकर कुछ सौ किमी तक हो सकती है। भूकम्प के उद्‌गम केन्द्र को फोकस कहते हैं। जिस स्थान पर सर्वप्रथम भूकम्पीय लहरों का अनुभव किया जाता है, उसे भूकंप केन्द्र कहते हैं।

भूकम्पीय तरंगें तीन प्रकार की होती है– 1. प्राथमिक तरंगे (पी) 2. द्वितीयक तरंगे (एस0) 3. धरातलीय तरंगे (एल)

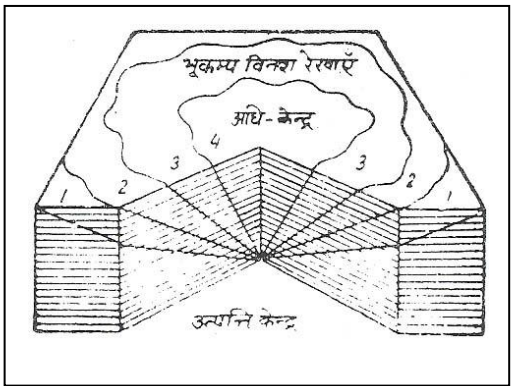

1. प्राथमिक तरंगे

इन्हें अनुदैर्ध्य तरंगें भी कहते हैं। ये तरंगें अन्य तंरगों की तुलना में अधिक गतिशील व तीव्र होती हैं। तरंगों की भांति ये लहरें अपने चलने की दिशा में चट्‌टानों को आगे–पीछे ढकेलती हैं। इनकी गति 8–12 किमी प्रति सेकेण्ड तक होती है। ये तंरगे धरातल पर सर्वप्रथम पहुँचती हैं। ये तरंगे ठोस तथा द्रव को समान रूप से पार कर जाती हैं। यद्यपि इसकी गति ठोस भाग में तीव्र तथा तरल में कम हो जाती है।

2. द्वितीयक तंरगें

ये तरंगें गौण या अनुप्रस्थ तरंगों के नाम से भी जानी जाती हैं। इन तरंगों के कणों की गति लहर की दिशा में समकोण पर होती है। द्वितीयक तरंगे तरल पदार्थों में विलुप्त हो जाती हैं। ये भी अधिक गहराई तक प्रवेश कर जाती हैं।

3. धरातलीय तरंगे

ये तरंगें पृथ्वी के बाह्य धरातल को ही प्रभावित करती हैं। धरातलीय तरंगों का मार्ग अन्य तरंगों की तुलना में सर्वाधिक होता है। यद्यपि इन तरंगों की गति न्यूनतम होती है। किन्तु ये सर्वाधिक विनाशकारी तरंगें होती हैं। साथ ही अधिक गहराई तक ये नहीं जा पाती है।

भूकम्प की माप

भूकम्पीय घटनाओं का मापन भूकम्पीय तीव्रता के आधार पर किया जाता है। भूकम्पीय तीव्रता की मापनी रिक्टर स्केल के नाम से जानी जाती हैं। भूकम्पीय तीव्रता भूकम्प के दौरान ऊर्जा मुक्त होने से सम्बन्धित है। इस मापनी में भूकम्प की तीव्रता का अंकन 0 से 10 तक होता है।

वैश्विक भूकम्प क्षेत्र

यूँ तो भूकम्प एक विश्वव्यापी प्राकृतिक घटना है किन्तु भूकम्पों के सम्बन्ध में खोज से प्रतीत होता है कि इनका सम्बन्ध धरातल के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों से है। वैश्विक मानचित्र पर भूकम्प क्षेत्रों को निम्नलिखित पेटियों में विभाजित कर सकते हैं–

1. प्रशांत महासागर तटीय पेटी 2. मध्यवर्ती पेटी 3. भूकम्प शून्य क्षेत्र

प्रशांत महासागर तटीय पेटी

इसके अन्तर्गत प्रशान्त महासागर के चारों ओर के समुद्रतटीय भाग सम्मिलित हैं। यह ज्वालामुखी क्षेत्रों की मेखला है। ज्वालामुखी विस्फोटों के कारण इसमें बहुधा भूकम्प आते है। इस मेखला में संसार के लगभग 40 प्रतिशत भूकम्प आते हैं इसमें जापान, अलास्का, कैलीफोर्निया, मैक्सिको एवं चिली सम्मिलित हैं।

2. मध्य महाद्वीपीय मेखला

यह यूरेशिया महाद्वीप के बीच नवीन वलित पर्वतों के सहारे पूर्व से पश्चिम की ओर फैली हुई है। यहाँ सामान्य रूप से भ्रंश एवं सन्तुलन की क्रिया के कारण भूकम्प आते हैं। विश्व के लगभग 54 प्रतिशत भूकम्प इन्हीं क्षेत्रों में आते हैं। यह प्रदेश या पट्टी अटलांटिक महासागर तट तक विस्तृत है, व एक शाखा तो जार्डन की घाटी से होती हुई पूर्वी अफ्रीका के भ्रंश घाटी क्षेत्र तक फैली हुई है।

3. भूकम्प शून्य क्षेत्र

कठोर चट्टानों से निर्मित विश्व के प्राचीनतम भू–भाग प्रायः भूकम्प जैसी आपदाओं से बचे हुए हैं। यथा–भारत का दक्षिणी पठार, ब्राजील पठार, कनाडा का कठोर भूभाग। यद्यपि इन क्षेत्रों का संतुलन स्थापन हो चुका है, फिर भी पृथ्वी का कोई भी भाग पूर्णतः भूकम्प जैसी प्राकृतिक घटना से अप्रभावित नहीं कहा जा सकता है।

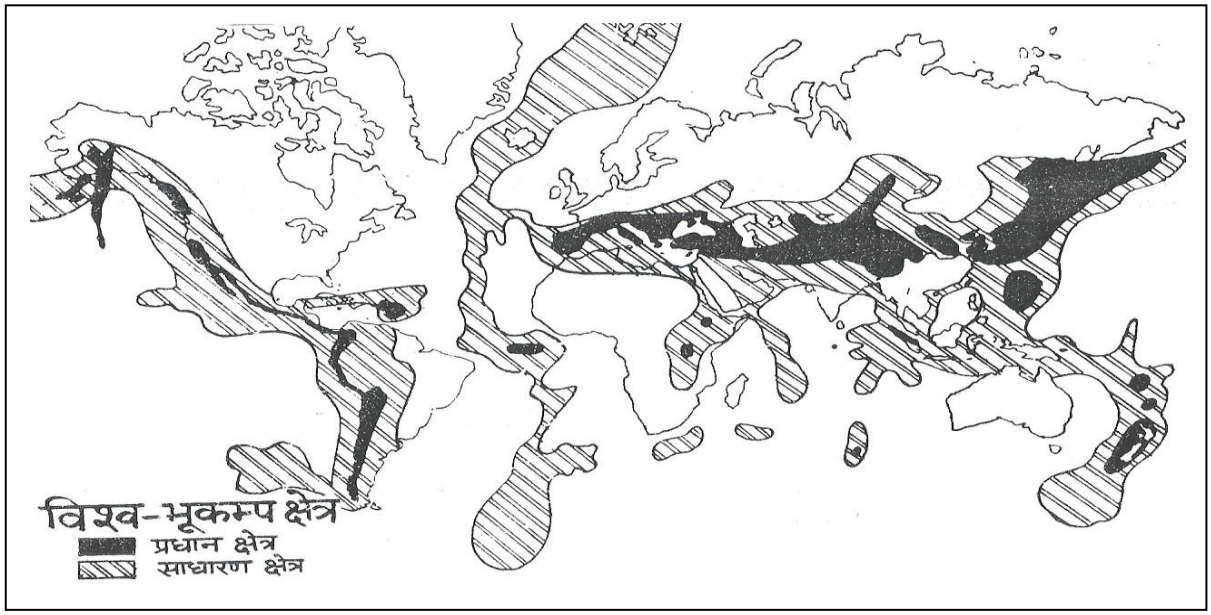

प्रशिक्षुओं से चर्चा करें

★ विगत दो वर्षों से विश्व में भूकम्प प्रभावित क्षेत्रों का पता लगाया जाय।
★ वैश्विक मानचित्र पर भूकम्प के संभावित क्षेत्रों को चिह्नित किया जाय।

भूकम्प के प्रभाव (नकारात्मक प्रभाव)

★ विनाशकारी प्रभाव
★ जन–धन की हानि
★ भूस्खलन का होना
★ धरातल में परिवर्तन होना
★ जल तरंगों की उत्पत्ति

सकरात्मक प्रभाव

★ नवीन भू–आकारों का बनना
★ खनिज पदार्थों की सुलभ प्राप्ति
★ उपजाऊ मृदा की प्राति
★ उपजाऊ मैदानों की रचना
★ बन्दरगाहों का विकास

इन्हें भी जाने–

आपदा प्रबन्धन

आपदा से अभिप्राय प्राकृतिक अथवा मानव जन्य कारणों से आने वाली किसी ऐसी विपत्ति, दुर्घटना, अनिष्ट और गंभीर घटना से है जो प्रभावित समुदाय की सहज क्षमता से परे हो। ज्वालामुखी, बाढ़, सूखा, चक्रवात, भूकम्प, सुनमी आदि विनाशाकारी घटनाओं से जन–धन की व्यापक क्षति होती है।

आपदा प्रबन्धन का अर्थ है– आपदा के प्रभाव को कम करना एवं आपदाग्रस्त क्षेत्रों में आपदा की स्थिति के अनुसार राहत एवं पुनर्वास का कार्य करना जिससे धन एवं जन की क्षति को कम/न्यूनतम किया जा सके। पर्यावरण एवं धरातल पर घटित होने वाली घटनाओं एवं परिवर्तनों को रोक पाना सम्भव नहीं है, परन्तु आपदा के प्रभाव को कम करना संभव है। सफल आपदा प्रबंधन के लिए आवश्यक है आपदा न्यूनीकरण, आपदा स्थितिक का पूर्वानुमान, आपदाग्रस्त क्षेत्र में लोगों को बचाने का प्रयास। त्वरित राहत एवं बचाव से बिनाशकारी घटनाओं के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

आपदा प्रबन्धन एक चरणबद्ध प्रक्रिया है। इसके तीन प्रमुख चरण है–

1. आपदा पूर्वानुमान
2. आपदा की स्थिति में राहत एवं बचाव कार्य
3. भविष्य में आपदाओं के घटित होने से रोकने के प्रयास

आपदाओं के प्रबंधन के क्षेत्र में सुदूर संवेदन एवं भौगोलिक सूचना तंत्र बहुपयोगी होते हैं। सुदूर संवेदन तकनीक के प्रयोग से घटनाओं के विषय में त्वरित सूचना प्राप्त किया जा सकता है। यह समुद्री तूफान, सुनामी, चक्रवात, बाढ़, सूखा भूस्खलन के प्रभावों को कम करने के लिए बहुपयोगी सूचनायें प्रदान करता है इसके उपयोग से आपदा स्थिति का पूर्वानुमान, राहत एवं बचाव कार्य किया जा सकता है, साथ ही आपदा के प्रभाव को भी कम किया जा सकता है।

vH;kl ç'u

1. महाद्वीपों के निर्माण में संलग्न बल है–

(क) पटलविरूपणी (ख) आकस्मिक (ग) वहिर्जात (घ) सभी

2. भ्रंशोत्थ पर्वत का निर्माण होता है–

(क) वलन (ख) संवलन (ग) तनाव बल (घ) इनमें से कोई नहीं

3. वलन के किस प्रकार में चट्टानों का क्रम की उलट जाता है–

(क) परिवलन (ख) अधिक्षिप्त वलन (ग) समनत वलन (घ) एकनीत वलन

4. होर्स्ट तथा ग्राबेनका निर्माण किससे होता है–

(क) भ्रंश (ख) वलन (ग) संपीडन (घ) भूकम्प

5. सक्रिय ज्वालामुखी का उदाहरण है–

(क) पोपा (ख) विसूवियस (ग) फ्यूजीयाना (घ) स्टाम्बोली

6. ज्वालामुखी उदगार से बनने वाली स्थलाकृतियों के नाम लिखिए।

7. भूकम्पीय तरंगों के नाम लिखिए।

8. भूकम्प की तीव्रता का अंकन किस यंत्र से किया जाता है ?

प्रोजेक्ट / क्रियाकलाप

1. भूकम्प के नकारात्मक तथा सकरात्मक प्रभावों को चार्ट पर बिन्दुवार लिखवाकर चर्चा करायें।

2. भूकम्प व ज्वालामुखी से सम्बन्धित समाचारों को एकत्रित करवायें।

ckg~; cy% vukPNknu&vi{k;] vijnu ,oa blls cuus okyh Hkw&vkd`fr;k¡

अनाच्छादन (Denudation) एक संयुक्त प्रक्रम हैं जिसके अन्तर्गत विभिन्न क्रियाओं के द्वारा पृथ्वी की सतह का घिसाव (कटना) एवं निम्नीकरण (Degradation) होता है। दूसरे शब्दों में पृथ्वी पर कार्यरत बाह्य शक्तियों द्वारा भूपटल के ऊपर तोड़–फोड़ तथा काँट–छाँट की जाती है जिससे टूटे हुए टुकड़ों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर इकट्ठा करने की क्रिया को अनाच्छादन कहते हैं। अनाच्छादन के अन्तर्गत अपक्षय (Weathering) और अपरदन (Erosion) दोनों क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।

किसी स्थान पर अनाच्छादन की प्रथम अवस्था अपक्षय होती है, इसके उपरान्त ही अपरदन की क्रिया होती है। जहाँ अपक्षय एक स्थैतिक क्रिया है वहीं अपरदन एक गत्यात्मक क्रिया है। अपक्षय और अपरदन क्या है? आइए इसे जानें–

- बाह्य बल– अनाच्छान
- अपक्षय भौतिक, रासायनिक व जैविक अपक्षय
- अपरदन– प्रमुख कारक व उससे बनने वाली भू आकृतियाँ–
  - प्रवाहित जल द्वारा
  - भूमिगत जल द्वारा
  - हिमानी द्वारा
  - पवन द्वारा
  - समुद्री लहरों द्वारा

अपक्षय (Weathering)

ऋतु और मौसम के प्रभाव द्वारा चट्टानें धीरे–धीरे अपने ही स्थानों पर छोटे–छोटे टुकड़ों में टूटती रहती हैं। चट्टानों के अपने ही स्थान पर टूटने–फूटने की क्रिया को अपक्षय कहते हैं। इसमें पहले चट्टाने विघटन व वियोजन द्वारा ढीली पड़ जाती हैं फिर क्रमशः विदीर्ण होकर अपने स्थान पर ही बिखर कर रह जाती हैं।

भौतिक क्रियाओं (ताप, वर्षा का जल, पाला आदि) द्वारा चट्टानों के ढीले पड़ने को 'विघटन' तथा रासायनिक क्रियाओं द्वारा (जल के घोलीकरण, कार्बोनीकरण, ऑक्सीकरण) द्वारा चट्टानों के कमजोर होने और ढीले पड़ने को 'वियोजन' कहते हैं।

इसके अतिरिक्त जीव–जन्तुओं द्वारा भी चट्टानों का विघटन होता है। इस प्रकार अपक्षय मुख्यतः तीन प्रकार का होता है– भौतिक, रासायनिक एवं जैविक।

1. भौतिक अपक्षय

चट्टानें दिन में सूर्य के ताप से गर्म होकर फैल जाती हैं और रात्रि में तापमान कम होने के कारण सिकुड़ जाती हैं। इस प्रकार चट्टाने के बार–बार फैलने और सिकुड़ने से वे धीरे–धीरे कमजोर पड़ने लगती हैं और टूट जाती है इससे चट्टाने छोटे–छोटे कणों में टूटकर बिखरने लगती हैं। हवा भी अपने प्रभाव से चट्टानों को तोड़–फोड़ देती है। चट्टानों के इस प्रकार टूटने को 'भौतिक अपक्षय' कहते हैं।

2. रासायनिक अपक्षय

चट्टानों में अनेक प्रकार के खनिजों का सम्मिश्रण पाया जाता है। पानी के सम्पर्क से इन तत्वों में परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन से चट्टान के बन्धन ढीले पड़ जाते हैं और रासायनिक प्रक्रिया से चट्टानें टूटने लगती हैं। इस परिवर्तन की क्रिया को 'रासायनिक अपक्षय' कहते हैं। जैसे चूना पत्थर युक्त चट्टानों के, सिलिकायुक्त चट्टानों के जल के सम्पर्क में आने पर उनमें होने वाला परिवर्तन।

3. जैविक अपक्षय

पृथ्वी पर रहने वाले जीव–जन्तु तथा मानव की विभिन्न क्रियाओं द्वारा भी चट्टानों कमजोर होती हैं, जैसे जन्तुओं द्वारा बिल बनाना तथा मानव द्वारा खानें खोदना, सड़कें बनाना, सुरंग बनाना आदि। वनस्पतियाँ एक तरफ चट्टान को अपनी जड़ों द्वारा कमजोर, ढीली कर देती हैं वहीं दूसरी तरफ वनस्पति की जड़ों द्वारा चट्टानें आपस में बंध जाती हैं और सघन तथा संगठित हो जाती है। इस प्रकार होने वाले अपक्षय को 'जैविक अपक्षय' कहते हैं।

अपरदन (Erosion)

यह अनाच्छादन प्रक्रम की वह क्रिया है, जिसमें अपरदन के कारकों (पवन, नदी, हिमानी, समुद्री लहरें, धारायें) द्वारा अपक्षयित पदार्थ या मलवा का स्थानान्तरण होता है। दूसरे शब्दों में अपक्षय द्वारा बिखण्डित, वियोजित चट्टानें बहते हुए जल, नदी, सागर की लहरें, गतिशील बर्फ (हिमानी), पवन आदि द्वारा एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर एकत्रित की जाती है, इस क्रिया को 'अपरदन' कहते हैं।

अपरदन प्राकृतिक कारकों के अतिरिक्त मानवीय क्रिया–कलापों द्वारा भी होता है, जैसे– गाँवों, कस्बों, नगरों का जैसे–जैसे विकास होता है, तो भवनों या सड़कों के निर्माण के लिए जमीन से वनस्पति साफ कर दी जाती है, जिससे भूमि की ऊपरी सतह की मिट्टी बह जाती है। यह क्रिया अपरदन कहलाती है।

आइए अपरदन के कारकों द्वारा अपरदन और उससे बनने वाली भू–आकृतियों के विषय में जानें–

1. प्रवाहित जल

नदियों के रूप बहता हुआ जल पृथ्वी के धरातल पर नाना प्रकार के स्थल रूपों को बनाने वाली प्रक्रियाओं में सबसे महत्वपूर्ण कारक है। नदी का अपरदन कार्य नदी के ढाल, जल की मात्रा तथा वेग पर निर्भर करता है। जब नदी पर्वतीय क्षेत्र में उर्ध्वाधर अपरदन द्वारा निरन्तर अपनी घाटी तली को काटकर उसे गहरा करती है तो इससे अंग्रेजी के अक्षर 'V' के आकार की घाटी का निर्माण होता है। इसका ढाल अत्यधिक तीव्र, उत्तल होता है और घाटी संकरी होती है। गॉर्ज, 'V' आकार की गहरी व संकरी घाटी के रूप में होते हैं। भारत में हिमालय पर्वत में सिन्धु, सतलुज तथा ब्रहमपुत्र नदियों के गॉर्ज दर्शनीय हैं। गॉर्ज के वृहद रूप को 'कैनियन' कहते हैं जो गॉर्ज से अपेक्षाकृत बड़ा एवं अत्यधिक सँकरा होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में कोलोरैडो नदी द्वारा बना 'ग्राण्ड कैनियन' विश्व प्रसिद्ध है।

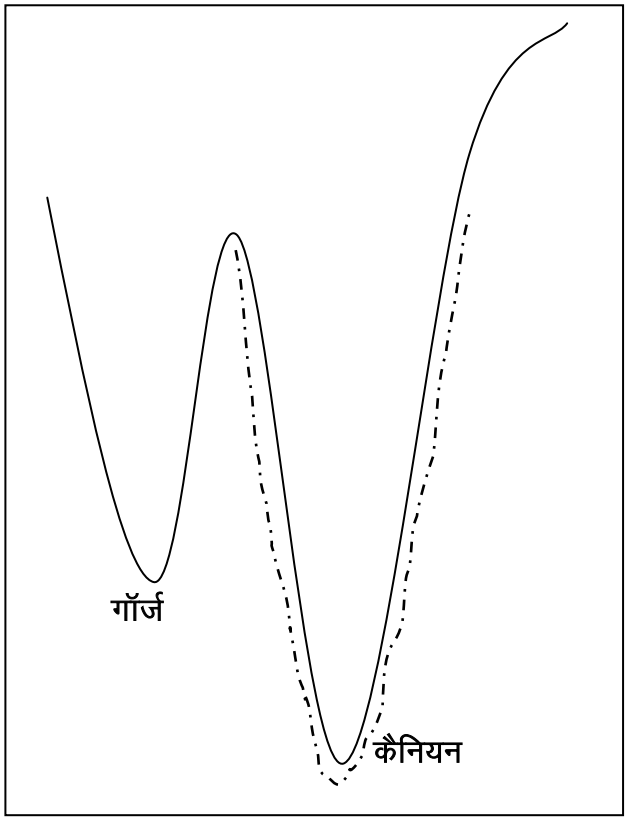

जब नदी के प्रवाह मार्ग में कोमल एवं कठोर चट्टानें पायी जाती हैं तो नदी का जल मुलायम चट्टानों को शीघ्रता से काट डालता है और जब नदी कठोर चट्टानी भाग में पहुंचती है तो उसे काट नहीं पाती और उसका जल एकाएक नीचे गिरने लगता है। लगातार पानी के बहाव से मुलायम चट्टाने कटती हैं, जिससे प्रपात धीरे–धीरे ऊँचा होता जाता है। जब नदी का जल ऊँचाई से खड़े ढाल के सहारे अधिक वेग से नीचे गिरता है, तो इसे जल–प्रपात कहते हैं। उत्तरी अमेरिका का नियाग्रा जलप्रपात, अफ्रीका की जाम्बेजी नदी पर स्थित विक्टोरिया जलप्रपात और भारत में शरावती नदी पर स्थित जोग अथवा गरसोप्पा जलप्रपात विश्व प्रसिद्ध हैं।

पर्वतीय भाग से जब नदी नीचे मैदान में उतरती है तो उसकी गति मैदानों में ढाल कम होने के कारण मंद पड़ जाती है जिससे नदी का मार्ग घुमावदार हो जाता है। इन टेढ़–मेढे मोड़ों को ही 'नदी विसर्प' (मियाण्डर) कहा जाता है। एशिया माइनर की मियाण्डर नदी के नाम पर इस भू–आकृति को मियाण्डर भी कहा जाता है, क्योंकि यह नदी इसी प्रकार के मोड़दार रूप में बहती है। नदी के सागर में गिरने से पहले उसके बहने की गति अधिक धीमी पड़ जाती है, इस कारण उसके साथ बहाकर लाया गया मलवा या अवसाद थोड़ी सी रूकावट मिलने पर जमा होने लगता है, इस कारण 'डेल्टा' का निर्माण होता है। इस प्रकार निर्मित त्रिभुजाकार भू–आकृति यूनानी भाषा के डेल्टा (△) अक्षर के समान

दिखती है, अतः उसे 'डेल्टा' कहा जाता है। गंगा, ब्रह्मपुत्र का डेल्टा संसार के प्रमुख डेल्टाओं में से एक है।

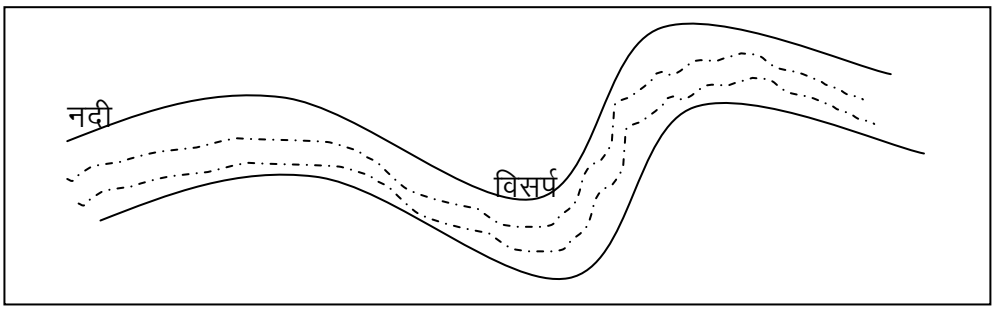

2. भूमिगत जल

चट्टानों के छिड़ों और दरारों से होकर वर्षा का जल या प्रवाहित जल भू–पृष्ठ के नीचे चला जाता है। इसे भूमिगत जल कहते हैं। भूमिगत जल का सर्वाधिक प्रभाव चूना क्षेत्रों (कार्स्ट्र प्रदेशों) में होता है। पहाड़ों में कहीं–कहीं चूने की चट्टाने मिलती हैं जिसमें जल रिस कर चट्टाने के भीतर पहुँच जाता है तथा रासायनिक अपक्षय द्वारा चूने को घुला कर दूर बहा ले जाता है, जिससे पहाड़ी में गुफा या सुरंग बन जाती है।

नीचे बनने वाली इस सुरंग की छत पर जहाँ पानी टपकने से चूना जमा हो जाता है, उसे 'स्टेलैक्टाइट' कहते हैं स्टेलैक्टाइट के ठीक नीचे गुफा की सतह पर भी एक खम्भे जैसा आकार, जिसका नीचे का आधार चौड़ा और ऊपर का भाग पतला होता है, बन जाता है। इसे 'स्टेलेग्माइट' कहते हैं। कभी–कभी यह दोनों आपस में मिले हुए दिखते हैं, जिसे 'हेलेक्टाइट' कहते हैं।

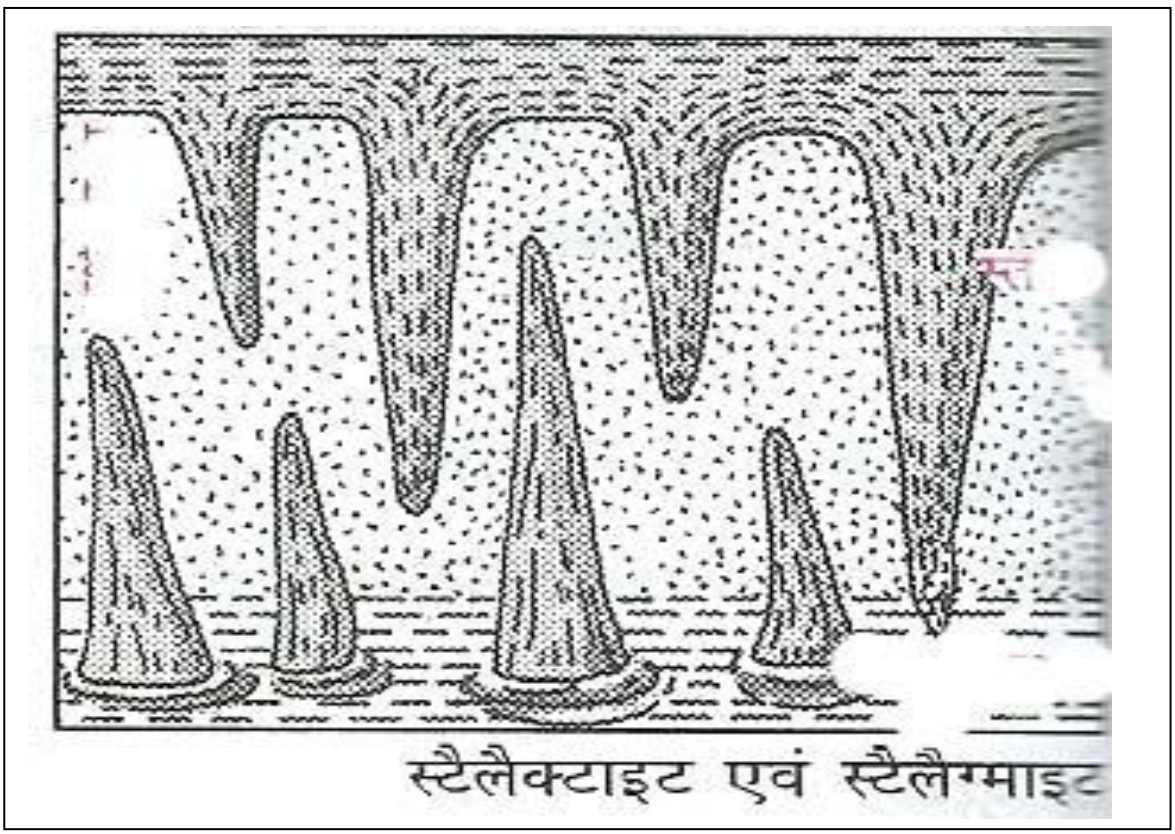
स्टैलैक्टाइट एवं स्टैलैग्माइट

3. हिमानी

बर्फ के गतिशील ढेर को 'हिमानी' कहते हैं। यह ऊँची पर्वत श्रेणियों व ध्रुवों पर पायी जाती है। लगातार बर्फ जमने से पड़ने वाले दबाव, और गुरूत्वबल के कारण, हिम के पिघलने से फिर पुनः जमने से बर्फ गतिशील हो जाती है। लेकिन प्रवाहित जल के विपरीत हिमनद का प्रवाह बहुत धीमा होता है। इसके द्वारा कर्षित चट्टानी पदार्थ इसके तल में इसके साथ घसीटे जाते हैं जो घाटी के किनारों पर घर्षण द्वारा अत्याधिक अपरदन करते हैं।

पहाड़ी भाग में हिमानी सपाट चौड़ी खड़े ढाल वाली घाटियों का निर्माण करती है, तो इनका आकार अंग्रेजी के 'U' अक्षर की तरह होता है। हिमानी अपरदन द्वारा पहले से बनी 'V' आकार की घाटी को 'U' आकार की घाटी में बदल देती है। इसका ढाल खड़ा तथा तल सपाट एवं चौड़ा होता है। जब हिमानी चट्टानों को घर्षित कर उसका चूर्ण पर्वत के निचले भागों में जमा कर देता है तो इन्हें हिमोढ़ कहा जाता है।

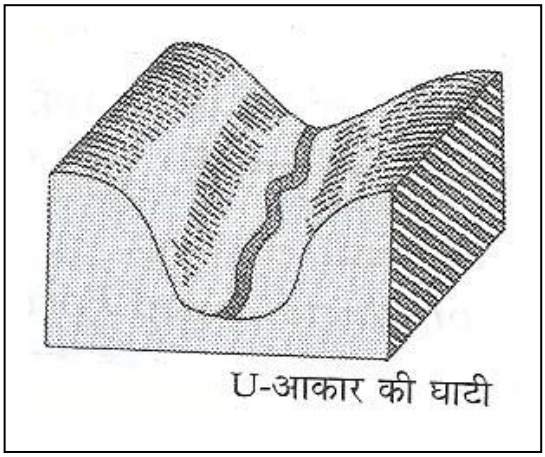
U-आकार की घाटी

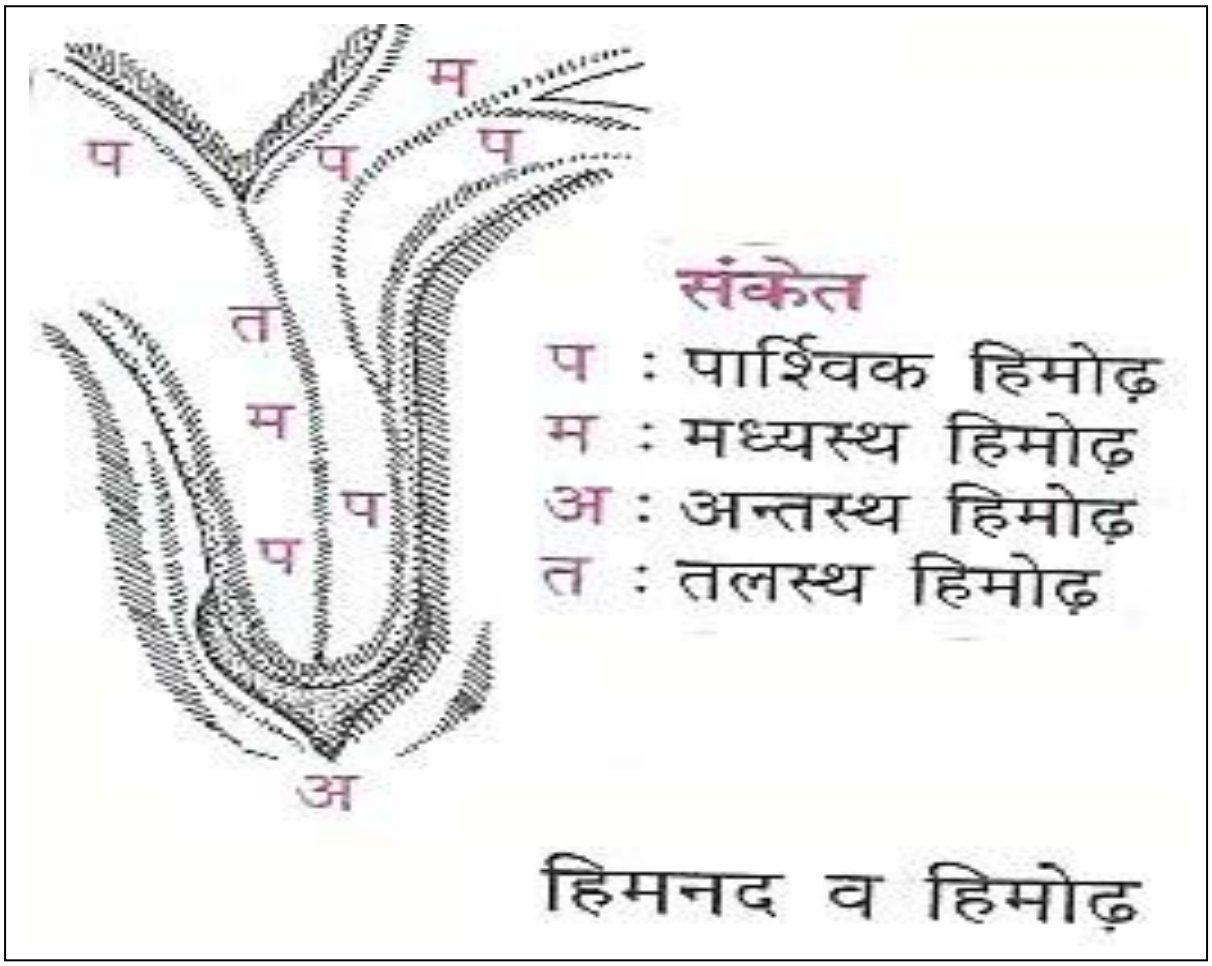

हिमनद व हिमोढ़

4. पवन

गतिशील वायु को पवन कहा जाता है। पवन बालू एवं धूलकणों को उड़ाकर अपने साथ ले जाती है। जब यह चट्टानों से टकराती है तो धूल के कण चट्टानों पर टकराकर उन्हें कुरेदते या खुरचते हैं, जिससे अपरदन की क्रिया होती है। मरूस्थलीय क्षेत्रों में इस प्रकार का अपरदन अधिक होता है।

छत्रक शिला

पवन द्वारा उड़ाये गये बालू के कणों द्वारा अपरदन का कार्य धरातल से कुछ मीटर ऊँचाई तक अधिक होता है। इस प्रक्रिया में पवन चट्टान के निचले भाग को घिस देती है। परन्तु उसका ऊपरी भाग अप्रभावित रहता है और छतरी के आकार की भाँति खड़ा रहता है जिसे **'छत्रक शिला'** कहते हैं।

मरूस्थलीय प्रदेशों में जब पवन के मार्ग में कोई बाधा होती है, तब पवन का वेग कम हो जाता है जिससे पवन के साथ उड़ने वाले पदार्थ धरातल पर गिरकर बालू के टीलों का निर्माण करते हैं। इन्हें 'बालुका स्तूप' कहते हैं। ये मरूस्थलीय और अर्द्ध मरूस्थलीय क्षेत्रों में अधिक बनते हैं। इनका आकार गोल, नवचन्द्राकार और अनुवृत्ताकार होता है। नवचन्द्राकार या चापाकार बालूका स्तूप को 'बरखान' भी कहते हैं।

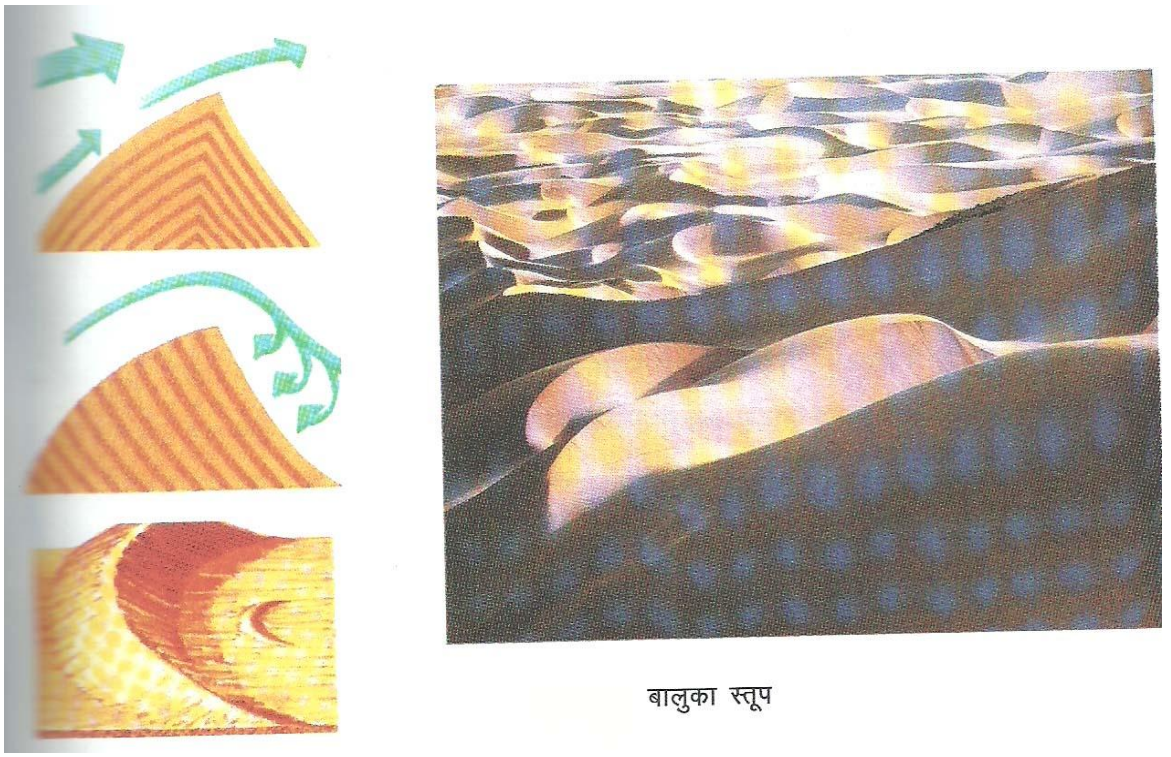

बालुका स्तूप

5. समुद्री लहरें

समुद्र की लहरें भी जब समुद्र तटों से टकराती हैं तो तटों पर जमा मलवा भी अपने साथ बहाकर समुद्र में ले जाती हैं और कभी–कभी वह इस पदार्थ को थोड़ी दूर पर जमा कर देती हैं। लहरों द्वारा कटाव से खड़े कगार और जमाव से समुद्र तटों–'पुलिन' या बीच का निर्माण होता है।

लहरों के बार–बार टकराने से तट का निचला भाग शीघ्र अपरदित हो जाता है लेकिन ऊपरी भाग खड़ा रह जाता है, जिसे भृगु (Cliff) कहते हैं।

तट के सहारे–सहारे लहरों द्वारा बालू तथा कंकड़ पत्थर बिछा दिए जाते हैं, जिसे पुलिन या बीच (Beach) कहा जाता है।

vH;kl ç'u

प्रश्न–1 चट्टानों का अपने ही स्थान पर छोटे–छोटे टुकड़ों में टूटना कहलाता है–

(क) अपरदन (ख) निक्षेपण (ग) अपक्षय (घ) घर्षण

प्रश्न–2 'ग्राण्ड कैनियन' किस नदी द्वारा बना है ?

(क) मिसीसिपी (ख) मिसौरी (ग) वोल्गा (घ) कोलोरैडो

प्रश्न–3 निम्न से कार्स्ट्र प्रदेश में बनने वाली भू–आकृति है–

(क) डेल्टा (ख) 'U' आकार की घाटी (ग) छत्रक शिला (घ) हेलेक्टाइट

प्रश्न–4 सुमेल कीजिए

जलप्रपात	**अवस्थिति**
नियाग्रा	जिम्बाब्बे–जाम्बेजी नदी
विक्टोरिया	उत्तरी अमेरिका– सेंटलारेंस नदी
जोग	भारत– शरावती नदी
एंजेल	वेनेजुएला–कैरो नदी (ओरेनिको की सहायक नदी)

प्रश्न–5 नदी विसर्प से आप क्या समझते हैं ?

प्रश्न–6 गॉर्ज व कैनियन में क्या अन्तर हैं ?

प्रश्न–7 बालुका स्तूप का निर्माण कैसे होता है, बताइए।

प्रश्न–8 विघटन तथा वियोजन में क्या अन्तर हैं ?

प्रश्न–9 अपक्षय की परिभाषा देते हुए उसके प्रकारों को समझाइए।

प्रश्न–10 अपरदन के प्रमुख कारकों द्वारा बनने वाली प्रमुख भू–आकृतियों का वर्णन कीजिए।

प्रॉजेकट कार्य

- अपरदन के कारकों द्वारा बनने वाली भू–आकृतियों का चित्र चार्ट पेपर पर बनवाकर उसके बनने की प्रक्रिया पर चर्चा करें।
- स्थानीय परिवेश में होने वाले मृदा–अपरदन व अन्य अपरदनात्मक भू–आकृतियों का भ्रमण के दौरान अवलोकरन करें फिर कक्षा में इसके कारण, प्रभाव व निराकरण पर विचार –विमर्श करें।

ok;qe.My&la?kVu ,oa lajpuk] rkieku] ok;qnkc] ok;qnkc isfV;ka] ok;qe.My dh vknzZrk

पृथ्वी के चारों ओर हजारो किमी ऊँचाई तक विस्तृत रंगहीन, गंधहीन, स्वादहीन प्रकृति वाले गैसों के यांत्रिक या भौतिक मिश्रण को वायुमण्डल कहते है। पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण यह वायुमण्डल उसके साथ टिका हुआ है।

वायुमण्डल के कारण ही पृथ्वी पर जीवन संभव है। इसमें उपस्थित जीवनदायिनी कार्बन डाई ऑक्साइड और ऑक्सीजन गैसें वनस्पति एवं जीवों के लिए आवश्यक होती हैं। अगर पृथ्वी पर जल की उपलब्धता, सूर्य से उचित मात्रा में ताप का मिलना और जीवनदायिनी गैसों से युक्त यह वायुमण्डल न होता तो पृथ्वी भी चन्द्रमा की तरह वीरान होती।

वायुमण्डल का संघटन

वायुमण्डल अनेक गैसों का मिश्रण है जिसमें ठोस और तरल पदार्थों के कण असमान मात्राओं में तैरते रहते हैं। शुद्ध, शुष्क हवा में गैसों का संघटन निम्न होता है–

गैस	**प्रतिशत मात्रा**
नाइट्रोजन	78.08
ऑक्सीजन	20.95
ऑर्गन	0.93
कार्बनडाइ ऑक्साइड	0.03
निर्यान	0.0018
हीलियम	0.0005
क्रिप्टॉन, जेनोन, हाइड्रोजन, ओजोन व अन्य गैसें	अति अल्प मात्रा में उपस्थित

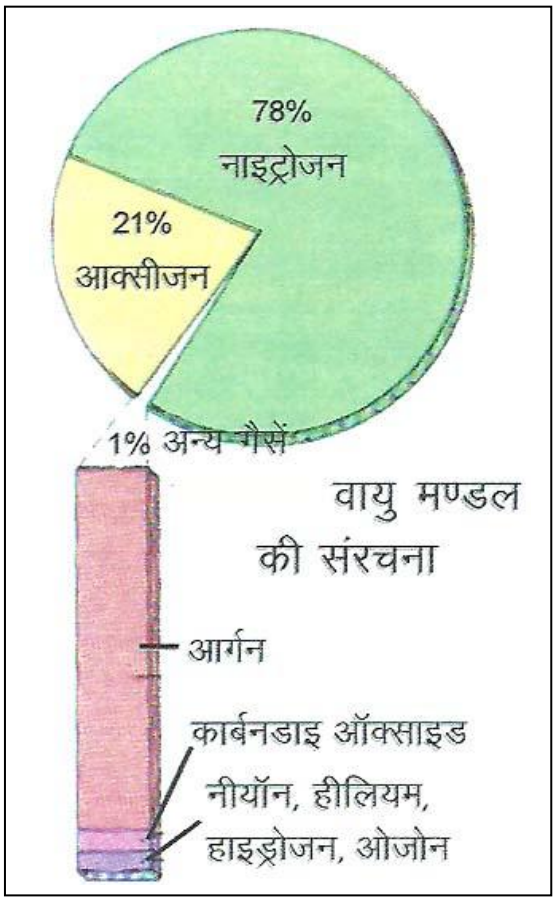

वायुमण्डल का संघटन

उपर्युक्त तालिका व आरेख से स्पष्ट है कि वायु अनेक प्रकार की गैसों से मिलकर बनी है, परन्तु इसमें 99 प्रतिशत भाग दो प्रमुख गैसों का है। इनमें से एक है नाइट्रोजन (78.08%) तथा दूसरी है ऑक्सीजन (20.95%)। शेष 1% में ऑर्गन, कार्बन डाइऑक्साइड, हाइड्रोजन, हीलियम, ओजोन आदि सम्मिलित हैं।

ऑक्सीजन गैस के बिना हम साँस नहीं ले सकते अतः यह जीवनदायिनी मानी गई है। अन्य पदार्थों के साथ मिलकर यह जलने का कार्य भी करती है। इसके अभाव में हम ईंधन नहीं जला सकते, अतः यह ऊर्जा का मुख्य स्रोत व हमारी औद्योगिक प्रगति का आधार है।

नाइट्रोजन गैस वायुमण्डल में सबसे अधिक मात्रा में पायी जाती है। इसकी अधिक मात्रा आग लगने की संभावना को कम करती है। वहीं दूसरी ओर नाइट्रोजन पौधों के लिए आवश्यक होती है जिसे पौधे वातावरण से सीधे ग्रहण नहीं करते बल्कि मिट्टी व पौधों में पाये जाने वाले बैक्टीरिया के माध्यम से ग्रहण करते हैं।

पेड़–पौधों के विकास के लिए कार्बन डाई ऑक्साइड की भी आवश्यकता होती है। हरे पौधे इसका उपयोग प्रकाश संश्लेषण हेतु करते हैं और जैविक पदार्थों (कार्बोहाइड्रेट्स) का निर्माण करते हैं। जिससे पौधों की जड़, तना तथा पत्ती आदि बनते हैं।

इसके अतिरिक्त वायुमण्डल में उपस्थित ग्रीनहाउस गैसें जैसे कार्बन डाइ ऑक्साइड व जलवाष्प सूर्य की लघु तरंगों (प्रवेशी सौर्यिक विकिरण तंरगों) को अन्दर आने देती है, परन्तु इससे उत्पन्न पृथ्वी से होने वाले पार्थिव विकिरण की दीर्घ तरंगों को बाहर नहीं जाने देती और इस प्रकार यह पृथ्वी पर एक निश्चित तापमान बनाये रखने में मदद् करती हैं। वर्तमान में मनुष्य द्वारा जीवाश्म ईंधनों के दहन, लकड़ी व उपलों के जलाने, औद्योगीकरण आदि आर्थिक क्रियाकलापों से कॉर्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा में निरन्तर वृद्धि हो रही है जिससे भूमण्डलीय ऊष्मन (ग्लोबल वार्मिंग), जलवायु परिवर्तन जैसी समस्यायें भी सामने आ रही हैं।

वायुमण्डल में गैसों के अलावा जो जलवाष्प और धूल के कण पाए जाते हैं, उनकी भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है। नमक तथा धूल के कण जलवाष्प को अपनी ओर आकर्षित करते हैं जिससे जल बूँदों का निर्माण होता है। बादल, वर्षा, कोहरा इन्हीं के कारण होता है।

वायुमण्डल की संरचना

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण ही यह वायुमण्डल उसके साथ टिका हुआ है– पृथ्वी वायु के कणों को अपनी ओर आकर्षित करती है, अतः पृथ्वी के पास वायुमण्डल में भारी गैसें पायी जाती हैं और अधिक ऊँचाई पर हल्की गैसें मिलती हैं। इस प्रकार वायुमण्डल में अनेक संकेन्द्रित परतें (Concentric layers or zones) होती है, जिन्हें तापमान और तापमान में परिवर्तन, गैसीय संघटन और घनत्व या वायुमण्डल के घनेपन के आधार पर निम्न 5 मुख्य संस्तरों में बाँटते हैं–

1. क्षोभमण्डल (Troposphere)
2. समतापमण्डल (Stratosphere)
3. मध्य मण्डल (Mesosphere)
4. आयन मण्डल (Ionosphere)
5. बहिर्मण्डल (Exosphere)

1. क्षोभमण्डल या परिवर्तन मण्डल

यह वायुमण्डल की सबसे निचली और सघन परत है जिसमें वायुमण्डल के समस्त गैसीय द्रव्यमान का 75% पाया जाता है। इसकी ऊँचाई भूमध्य रेखा पर 18 किमी तथा ध्रुवों पर 8 किमी है। भूमध्य रेखा पर अधिक ऊँचाई होने का कारण यहाँ चलने वाली संवहन धाराएँ हैं जो ऊष्मा को पर्याप्त ऊँचाई तक ले जाती हैं। इस परत में धरातल से ऊपर जाने पर प्रति एक किमी की ऊँचाई पर 6.5 डिग्री से0ग्रे0 की दर से तापमान में कमी आती है, इसलिए इसे परिवर्तन मण्डल भी कहते हैं। इस परत में धूल कण तथा जलवाष्प सबसे अधिक मात्रा में मिलते हैं जो अस्थिरता, विविधता उत्पन्न करते हैं जिससे मौसम सम्बन्धी अनेक घटनाएँ जैसे– कोहरा, बादल, ओला, तुषार, आँधी, तूफान, बादलों का गरजना, बिजली चमकना आदि घटित होती है।

क्षोभमण्डल के ऊपर क्षोभ सीमा (Tropopause) होती है। यह एक संक्रमण क्षेत्र है, जो क्षोभमण्डल व समतापमण्डल को अलग करती है। इसकी मोटाई 1.5 किलोमीटर है। इस परत में तापमान का गिरना बन्द हो जाता है। इस सीमा पर ध्रुवों के ऊपर तापमान–45^0 सेल्सियस तथा विषुवत रेखा के ऊपर लगभग– 80^0 सेल्सियस होता है।

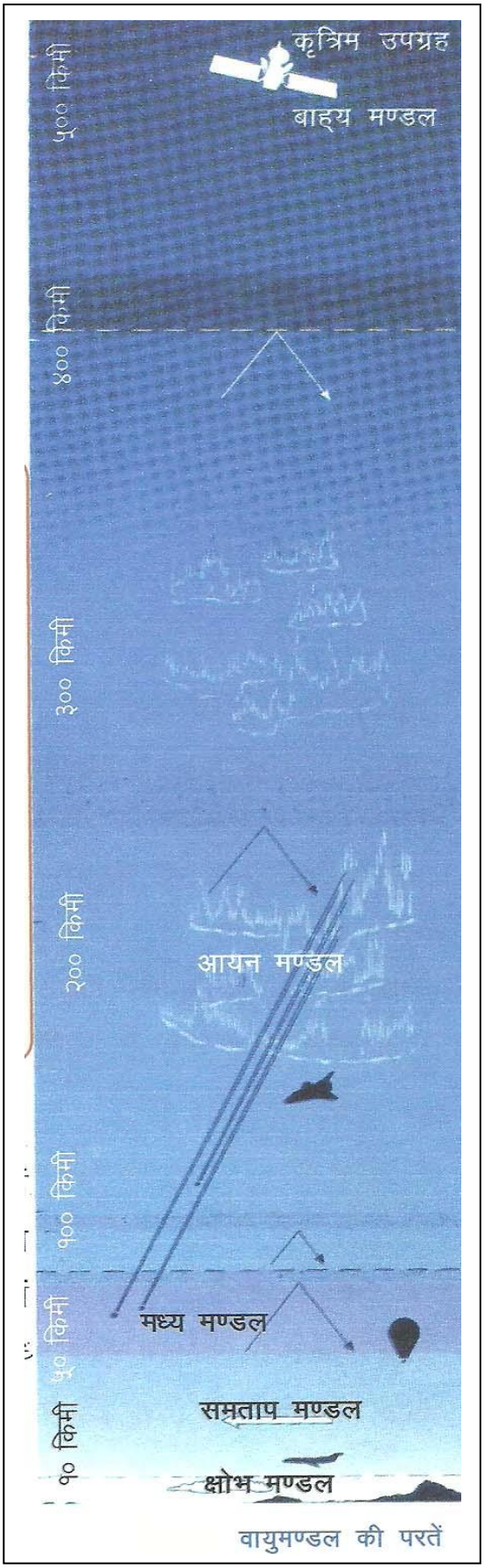

वायुमण्डल की परतें

2. समतामण्डल

क्षोभ सीमा के औसत रूप से 50 किमी की ऊँचाई तक समतापमण्डल स्थित है। इसके निचले भाग में लगभग 20 किमी की ऊँचाई तक तापमान में कोई परिवर्तन नहीं होता, इसीलिए इसे समतापमण्डल कहा जाता है। इसके ऊपर 50 किमी की ऊँचाई तक तापमान ऊँचाई के साथ बढ़ता जाता है क्योंकि यहाँ ओजोन गैस की उपस्थिति पायी जाती है, जो सूर्य की घातक पराबैंगनी किरणों को अवशोषित करती है। यहाँ की स्थिर दशा, शुष्क पवन, मन्दपवन संचार व बादलों का प्रायः अभाव के कारण मौसम की घटनायें कम ही घटित होती हैं। समतापमण्डल की ऊपरी सीमा समताप सीमा कहलाती है।

3. मध्यमण्डल

समतापसीमा के ऊपर मध्यमण्डल स्थित है। इसका विस्तार 80 किमी की ऊँचाई तक पाया जाता है। इस मण्डल में ऊँचाई के साथ तापमान फिर से गिरने लगता है और 80 किमी की ऊँचाई पर -100^0 सेल्सियस हो जाता है। मध्यमण्डल की ऊपरी सीमा को मध्यसीमा (Mesopause) कहते है।

4. आयनमण्डल

मध्यसीमा के ऊपर 80 किमी0 से 400 किमी की ऊँचाई तक आयनमण्डल स्थित है। इस परत में तापमान फिर ऊँचाई के साथ बढ़ने लगता है। यहाँ पराबैंगनी व ब्रह्माण्ड किरणों द्वारा अणुओं का आयनीकरण होता रहता है और पदार्थ प्लाज्मा अवस्था में पाया जाता है अर्थात यहाँ पर उपस्थित गैस के कण विद्युत आवेशित होते हैं, जिन्हें आयन कहते हैं। इसीलिए इसे आयनमण्डल के नाम से जाना जाता है। यह मण्डल पृथ्वी से प्रेषित रेडियों तरंगों को परावर्तित करके पृथ्वी पर वापस भेज देता है जिससे रेडियों प्रसारण में सहायता मिलती है। यहाँ सूर्य से आने वाले विकिरण से आयन उत्तेजित होकर चमकने लगते हैं जिसे ध्रुवीय क्षेत्र में 'अरोरा बोरियालिस' (Aurora Borealis) तथा दक्षिणी ध्रुवीय क्षेत्र में 'अरोरा ऑस्ट्रालिस' (Aurora australis) कहते हैं।

5. वाह्यमण्डल

आयनमण्डल के ऊपर स्थित वायुमण्डल का सबसे ऊपरी संस्तर बाह्यमण्डल कहलाता है यहाँ वायु विरल होती जाती है और धीरे–धीरे यह बाह्य अंतरिक्ष में विलीन हो जाता है। इस मण्डल के विषय में अभी विशेष जानकारी प्राप्त नहीं है।

यद्यपि वायुमण्डल के उपर्युक्त सभी मण्डल हमें प्रभावित करते हैं फिर भी भूगोल के अध्ययन की दृष्टि से क्षोमण्डल व समतापमण्डल सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं।

वायुमण्डल के तत्व

वायुमण्डल के प्रमुख तत्व तापमान, वायुदाब, वायुदाबपेटियाँ, पवन, वायुमण्डल की आर्द्रता तथा वर्षा हैं।

तापमान

वायुमण्डल तथा पृथ्वी की ऊष्मा का प्रधान स्रोत सूर्य है। सूर्य सभी दिशाओं में प्रकाश और ऊष्मा का विकिरण (किरण फैलाना) करता है। इसे सौर विकिरण कहते हैं। पृथ्वी को प्राप्त होने वाले सौर विकिरण को सूर्यातप (insolation) कहते हैं।

धरातल मुख्यतः इसी सूर्यातप से गर्म होता है। इस प्रकार तापमान, सूर्यातप का प्रभाव है। सूर्यातप एक प्रकार की ऊर्जा है और तापमान उसी ऊष्मा ऊर्जा का माप है जिससे हमें यह पता चलता है कि कोई स्थान या वस्तु कितनी गर्म है। तापमान मापने की मानक इकाई अंश सेल्सियस (°C) है, इसे थर्मामीटर द्वारा नापते हैं। किसी भी स्थान पर वायुमण्डल के तापमान के वितरण को उस स्थान की अक्षांश रेखा, समुद्रतल से उस स्थान की ऊँचाई, समुद्र से उस स्थान की दूरी, गर्म तथा ठण्डी जल धाराओं की उपस्थिति, प्रचलित पवन तथा अन्य स्थानीय कारक महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं।

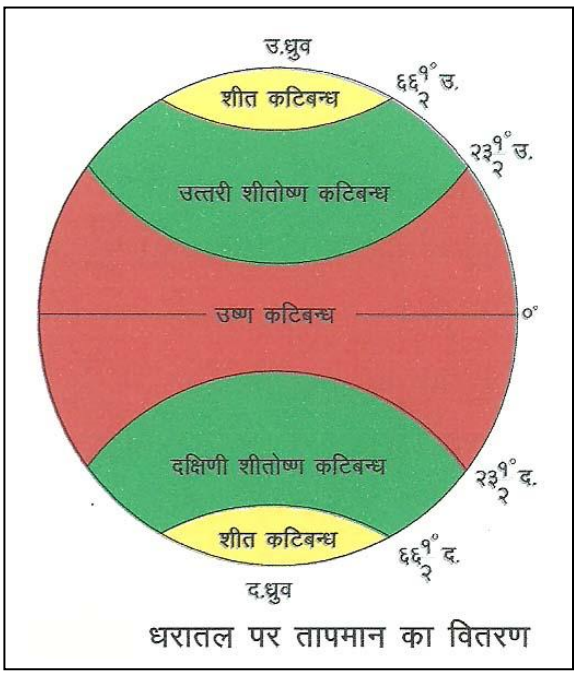

धरातल पर तापमान का वितरण

चूँकि सूर्यातप की मात्रा अलग–अलग अक्षांश पर अलग–अलग पायी जाती है अतः इसी अनुसार तापमान में भी भिन्नता पायी जाती है। इसकी मात्रा भूमध्यरेखा से ध्रुवों की ओर घटती जाती है क्योंकि सूर्य की किरणों ध्रुवों की ओर अत्यधिक तिरछी हो जाती हैं। इस आधार पर ग्लोब को तापमान की दृष्टि से उष्ण कटिबन्ध, शीतोष्ण कटिबन्ध तथा शीत कटिबन्ध में बाँटा जा सकता है।

वायुमण्डल मुख्यतः नीचे से गर्म होता है जिसके अन्तर्गत सूर्य की किरणें पहले धरातल को गर्म कर देती है। फिर गर्म हुआ धरातल अपने सम्पर्क में आने वाली वायु को गर्म कर देता है। वायु गर्म होकर ऊपर उठती है और वायुमण्डल को गर्म करती है। अतः वायुमण्डल के निचले भागों में सामान्यतः तापमान अधिक होता है और जैसे–जैसे ऊँचाई बढ़ती जाती है, तापमान घटता जाता है। इसीलिए हिमालय पर्वत की ऊँची चोटियों पर सदैव बर्फ जमी रहती है।

वायुदाब

वायु विभिन्न गैसों का यांत्रिक मिश्रण है और पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण प्रभाव के कारण उसका अपना स्वयं का भार होता है इस कारण धरातल पर वायु अपने भार द्वारा दबाव डालती है। धरातल पर वायुमण्डल की समस्त परतों के पड़ने वाले भार को ही 'वायुभार' या 'वायुदाब' कहते हैं। वायुदाब एक यंत्र के द्वारा मापा जाता है जिसे बैरोमीटर कहते हैं। जलवायु वैज्ञानिक इसे मिलीबार में मापते हैं। सामान्य दशाओं में समुद्रतल, पर वायुदाब पारे के 76 सेंमी ऊँचे स्तम्भ द्वारा पड़ने वाले दाब या 1013.25 मिलीबार के बराबर होता है। पृथ्वी के धरातल पर वायुमण्डलीय दाब का वितरण एक समान नहीं है। इसके वितरण में लम्बवत तथा क्षैतिज दोनों प्रकार की भिन्नताएँ पायी जाती हैं।

उर्ध्वाधर या लम्बवत् वितरण

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि वायु का घनत्व निचली पर्त्तों में सर्वाधिक होता है क्योंकि वायु की निचली परतों में भारी गैसें पाई जाती हैं। इसके विपरीत ऊपरी परतों की वायु विरल होकर फैल जाती है अतः धरातल से ऊपर जाने पर वायु का दाब कम होता जाता है। दूसरे शब्दों में ऊँचाई के साथ दाब व घनत्व दोनों में कमी आती है। लेकिन इसके घटने की दर हमेशा एक समान नहीं होती है। यह हवा के घनत्व, तापमान, जलवाष्प की मात्रा तथा गुरूत्वाकर्षण शक्ति पर निर्भर है। फिर भी सामान्यतः क्षोभमण्डल में वायुदाब के घटने की औसत दर प्रति 300 मीटर की ऊचाई पर लगभग 34 मिलीबार है।

धरातलीय या क्षैतिज वितरण

वायुमण्डलीय दाब के अक्षांशीय वितरण को वायुदाब का क्षैतिज वितरण कहते हैं। विभिन्न स्थानों पर तापमान में अंतर तथा पृथ्वी के घूर्णन (Rotation) के कारण पृथ्वी पर वायुदाब की सात पेटियां बनती है। लेकिन पृथ्वी की सतह पर वायुदाब पेटियों का यह वितरण एक आदर्श संकल्पना है क्योंकि धरातल पर जल एवं स्थल के असमान वितरण के कारण तापमान एवं वायुदाब के वितरण में जटिलता उत्पन्न हो जाती है। उत्तरी गोलार्द्ध में स्थलखण्ड की अधिकता के कारण वायुदाब का विकास पेटियों में न होकर कोशिकाओं में होता है। जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध में उच्च अक्षांशों में स्थलखण्डों के अभाव के कारण वायुदाब पेटियों के विकास में कम व्यवधान होता है। पृथ्वी पर वायुदाब की निम्न पेटियां पायी जाती हैं–

1. विषुवतीय या भूमध्यरेखीय निम्न वायुदाब

इसका विस्तार भूमध्यरेखा से 5^0 उत्तरी तथा 5^0 दक्षिणी अक्षांश रेखाओं के मध्य पाया जाता है। यहाँ पर वर्ष भर सूर्य की किरणें लम्बवत पड़ती है जिससे तापमान की अधिकतम मात्रा उपलब्ध होती है। फलस्वरूप यहाँ की हवा गरम और हल्की होकर ऊपर उठने लगती है। जिससे यहाँ पर वायु की

कमी के कारण वायु का दबाव कम हो जाता है। इस कम दबाव वाली पेटी को 'शान्त पेटी' या 'डोलड्रम' भी कहा जाता है।

2. उपोष्ण उच्च दाब पेटी

यह पेटी उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्द्धों में भूमध्य रेखा के दोनों ओर 30^0 से 35^0 अक्षांक्षों के मध्य पायी जाती है। यहाँ तापमान भी अधिक रहता है तथा पृथ्वी के घूर्णन के कारण भूमध्यरेखीय निम्न वायुदाब तथा उपध्रुवीय निम्न वायुदाब वाले क्षेत्र के ऊपर से आने वाली हवाओं के नीचे उतरने से वायुदाब भी उच्च पाया जाता है।

3. उपध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी

दोनों गोलार्द्धों में 60^0 और 65^0 अक्षांशों के मध्य निम्न वायुभार की ये पेटियां पायी जाती हैं। पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने के कारण इस क्षेत्र की वायु ऊपर उठकर ध्रुव तथा उपोष्ण उच्च दाब क्षेत्र की ओर चली जाती है जिससे इस क्षेत्र में वायु विरल हो जाती है। अतः यहाँ निम्न वायुदाब पाया जाता है, जबकि तापमान भी यहाँ कम रहता है।

4. ध्रुवीय उच्च दाब पेटी

यह पेटी उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों पर 90^0 अक्षांश तक पायी जाती है। चूँकि यहाँ पर वर्ष भर सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती है। अतः तापमान स्थाई रूप से बहुत ही कम रहता है। अतः ध्रुवों के ऊपर उच्च वायुदाब पाया जाता है।

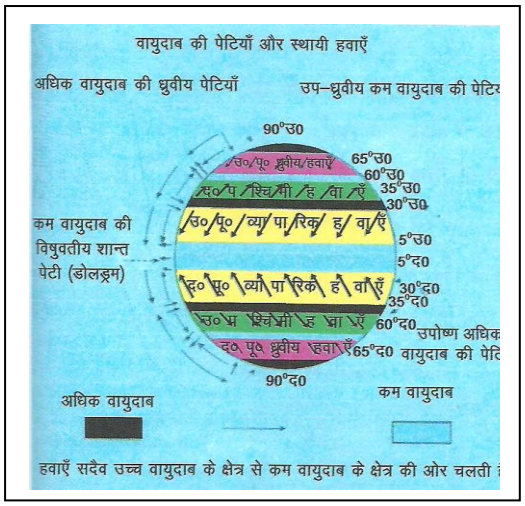

वायुमण्डल की आर्द्रता

वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प को आर्द्रता कहते हैं। जलवाष्प वायुमण्डल में बहुत कम अनुपात (0 से 4 प्रतिशत) में ही उपलब्ध है परन्तु मौसम और जलवायु के निर्णायक के रूप में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। यह जलवाष्प महासागरों, झीलों, नदियों, हिम क्षेत्रों, नम धरातल से वाष्पीकरण तथा पौधों से वाष्पोत्सर्जन तथा जीवों के श्वसन द्वारा वायुमण्डल में पहुँचती है। ताप घटने पर यह जलवाष्प जल में परिवर्तित हो जाती है तो उसे संघनन कहते है। संघनन द्वारा ही ओस, पाला, कोहरा, बादल तथा वर्षा होती है। खुली स्वच्छ हवा में वायुमण्डलीय जलवाष्प का लगातार संघनन होने से जब इन संघनित कणों के आकार में वृद्धि होती है और ये कण बड़े तथा भारी हो जाते है तब गुरूत्वाकर्षण बल के कारण पृथ्वी के धरातल पर गिरने लगते हैं। जब ये बूँदों के रूप में धरती पर गिरते हैं तो इन्हें वर्षा कहते है। लेकिन जब हिमकणों के रूप में गिरते हैं, तो इसे हिमपात कहते हैं। वायुमण्डल की आर्द्रता आर्द्रतामापी यंत्र द्वारा मापी जाती है।

vH;kl ç'u

प्रश्न–1 वायुमण्डल में सर्वाधिक मात्रा में पायी जाने वाली गैस है–

(क) ऑक्सीजन (ख) हीलियम (ग) नाइट्रोजन (घ) हाइड्रोजन

प्रश्न–2 मौसम सम्बन्धी घटनाएं वायुमण्डल की किस परत में घटित होती है।

(क) समतापमण्डल (ख) क्षोभमण्डल (ग) आयनमण्डल (घ) बहिर्मण्डल

प्रश्न–3 वायुदाब को मापने की इकाई है–

(क) मिलीबार (ख) सेल्सियस (ग) केल्विन (घ) एम्पीयर

प्रश्न–4 'डोलड्रम' कहा जाता है–

(क) उपोष्ण उच्च दाब पेटी को (ख) ध्रुवीय उच्च दाब पेटी को

(ग) विषुवतीय या भूमधरेखीय निम्न वायुदाब को (घ) उपध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी को?

प्रश्न–5 क्षोभमण्डल का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

प्रश्न–6 संघनन से आप क्या समझते हैं ?

प्रश्न–7 तापमान व सूर्यातप में क्या अंतर है ?

प्रश्न–8 ओजोन गैस का हमारे लिए क्या महत्व है ?

प्रश्न–9 वायुदाब से आप क्या समझते है, प्रमुख वायुदाब पेटियों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न–10 वायुमण्डल के संघटन व इसकी संरचना को समझाइए।

प्रॉजेक्ट कार्य

- चार्ट पेपर वर वायुदाब पेटियां व व्यापारिक, पछुवा एवं ध्रुवीय पवनों का प्रदर्शन करायें व प्रशिक्षुओं से इसे स्पष्ट करने को कहें।
- स्थानीय समाचार पत्र से प्रतिदिन के तापमान व वायुदाब को नोट करवायें व माहवार इसका प्रदर्शन ग्राफ पेपर पर करायें।

iou ds çdkj&LFkk;h ,oa vLFkk;h ¼O;kikfjd] iNqok] /kzqoh; vkSj ekulwuh½ pØokr ,oa izfr pØokr

एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर गतिशील वायु (Air) को पवन (Wind) कहा जाता है। इनके चलने का मूल कारण धरातल पर वायुदाब में क्षैतिज विषमता का होना है। पवन वायुदाब की इसी क्षैतिज विषमता को संतुलित करने का प्रकृति का प्रयास है, जो सदैव उच्च वायु दाब से निम्न वायु दाब क्षेत्र की ओर को चलती है। दूसरे शब्दों में पृथ्वी के धरातल के निकट वायु की इस क्षैतिज गति को 'पवन' या 'हवा' कहते हैं।

पवन की दिशा और गति वायुदाब में अंतर, कोरियालिस बल तथा भूतल से घर्षण और उसके द्वारा उत्पन्न अवरोध से प्रभावित होती है। क्षैतिज वायुदाब में अंतर के कारण वायु गतिशील हो जाती है और दो स्थानों के बीच वायुदाब मे असमानता या अन्तर जितना अधिक होता है, पवन उतनी ही तीव्र गति से चलती है।

दूसरे पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने के कारण ही हवाओं की दिशा में विक्षेप (मुड़ना) हो जाता है। इस परिवर्तनकारी बल को विक्षेप बल या 'कोरियालिस बल' कहा जाता है। इस विक्षेपण बल के कारण उत्तरी गोलाई में सभी हवाएँ अपनी दिशा से दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बाँयी ओर मुड़ जाती है। इसी आधार पर फेरल नामक विद्वान ने हवा चलने की दिशा सम्बन्धी अपने मत का प्रतिपादन किया था।

तीसरे धरातल की विषमताएँ और ऊबड़–खाबड़ होना पवन के लिए अवरोध तथा घर्षण उत्पन्न करता है। चूँकि समतल महासागरीय सतह पर कोई अवरोध नहीं होता, अतः वहाँ घर्षण की मात्रा कम होती है और हवा तीव्र गति से बह सकती है। जबकि ऊबड़–खाबड़, ऊँचे–नीचे धरातल पर घर्षण की मात्रा अधिक होती है और वायु की गति धीमी हो जाती है। कभी–कभी भू– आकृतियाँ पवन की दिशा को भी बदल देती हैं।

पवन के प्रकार

अपनी विशेषताओं के आधार पर पवनों को तीन प्रकारों में बाँटा जा सकता है–

1. स्थायी अथवा प्रचलित अथवा भूमंडलीय पवनें (Permanent or prevailing or planetary winds)
2. सामयिक या मौसमी अथवा अस्थायी पवनें (Periodic or seasonal or temporary winds)
3. स्थानीय पवनें (Local winds)

1. स्थायी अथवा प्रचलित अथवा भूमंडलीय पवनें

ये पवनें महाद्वीपों तथा महासागरों के वृहद क्षेत्र पर वर्ष भर एक निश्चित दिशा में प्रवाहित होने वाली पवनें हैं। इन्हें प्रचलित, स्थायी, सनातनी, नियतवाही, ग्रहीय या भूमंडलीय पवनों के रूप में जाना जाता है। इनकी उत्पत्ति सम्पूर्ण ग्लोब के तापक्रम तथा पृथ्वी के घूर्णन से उत्पन्न उच्च तथा निम्नदाब से सम्बन्धित है। इनमें प्रमुख हैं– व्यापारिक पवन, पछुवा पवन तथा ध्रुवीय पवन।

(1.) व्यापारिक पवन

अयनवर्ती या उपोष्ण उच्च वायु दाब की पेटी से भूमध्य रेखीय निम्नवायुदाब की पेटी की ओर दोनों गोलार्द्धों में निरन्तर बहने वाली पवन को व्यापारिक पवन या सन्मार्गी पवन कहते हैं। इसे अंग्रेजी में **'ट्रेड विंडस'** (Trade winds) कहते हैं। यहाँ ट्रेड शब्द का अर्थ व्यापार न होंकर जर्मन भाषा के ट्रेड से है जिसका अर्थ 'निर्दिष्ट पथ' होता है। अतः ये एक निर्दिष्ट पथ पर, एक ही दिशा में, निरन्तर बहने वाली पवन है। कोरियालिस बल और फेरल के नियमानुसार ये पवन उत्तरी गोलार्द्ध में अपनी दाई ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में अपनी बाई ओर विक्षेपित हो जाती है। अतः उत्तरी गोलार्द्ध में इनकी दिशा उत्तर पूर्व से दक्षिण पश्चिम तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण पूर्व से उत्तर –पश्चिम होती है।

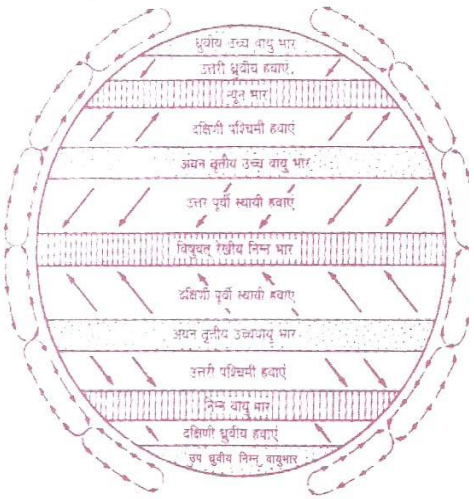

पृथ्वी पर वायुदाब की पेटियाँ एवं ग्रहीय हवाएं

(2.) पछुवा पवन

ये उपोष्ण उच्च वायुदाब की पेटी से उपध्रुवीय निम्न वायु दाब पेटी की ओर दोनो गोलार्द्धों में चलने वाली स्थायी हवा है। पश्चिम दिशा में बहने के कारण इन्हें पछुवा पवन कहते हैं। इनकी दिशा उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिण–पश्चिम से उत्तर पूर्व की ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तर–पश्चिम से दक्षिण–पूर्व की ओर होती है। दक्षिणी गोलार्द्ध में महासागरों के अधिक विस्तार व इनके मार्ग में अवरोध के अभाव के कारण ये अधिक नियमित तथा तीव्र होती हैं। तीव्र गति से चलने और उससे उत्पन्न होने वाली ध्वनि के कारण 40^0 दक्षिणी अक्षांश पर इन्हें 'गरजता चालीसा' (Roaring forties) 50^0 दक्षिणी अक्षांश पर 'प्रचण्ड पचासा' (Furious fifties) तथा 60^0 दक्षिणी अक्षांश पर 'चीखता साठा' (Shrieking sixties) कहा जाता है।

(3.) ध्रुवीय पवन

ध्रुवों पर अत्याधिक शीत के कारण उच्च वायुदाब वर्ष भर बना रहता है। इसी ध्रुवीय उच्च वायुदाब पेटी से उपध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी की ओर ये पवनें चलती हैं, जिन्हें ध्रुवीय पवन कहते हैं।

इन पवनों की वायु अत्यन्त ठंडी तथा भारी होती है, तापमान कम होने से इनकी जलवाष्प धारण करने की क्षमता भी कम होती है। उत्तरी गोलार्द्ध में ये पवने उत्तरी–पूर्वी दिशा से दक्षिण पश्चिम की ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणी पूर्वी दिशा से उत्तर पश्चिम की ओर चलती हैं। उपध्रुवीय निम्न वायुदाब की पेटी वाले क्षेत्र में जब पछुवा पवनें इन ध्रुवीय पवनों से टकराती है तो शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की उत्पत्ति होती है।

2.सामयिक या मौसमी अथवा अस्थायी पवनें

मौसम या समय के परिवर्तन के साथ जिन पवनों की दिशा बिलकुल उलट जाती है उन्हें सामयिक या मौसमी या अस्थायी पवनें कहते हैं। पवनों के इस वर्ग में मानसूनी पवन, स्थल समीर व सागर समीर को सम्मिलित किया जाता है–

मानसून हवाएँ

'मानसून' शब्द अरबी भाषा के 'मौसिम' शब्द या मलायन भाषा के 'मानसिन' शब्द से बना है। जिसका अर्थ 'मौसम' होता है। अतः वे पवनें जिनकी दिशा में मौसम के अनुसार पूर्ण परिवर्तन आ जाता है, मानसूनी पवनें कहलाती हैं। ये पवनें ग्रीष्म ऋतु के छः माह सागर से स्थल की ओर तथा शीत ऋतु के छः माह स्थल से सागर की ओर चलती हैं। सागरों से आने वाली हवायें आर्द्रता से भरी होती हैं। इसीलिए ग्रीष्म ऋतु में भारी वर्षा होती है। इस ऋतु की हवाओं को ग्रीष्म मानसून कहते हैं। हमारे देश में ग्रीष्मकालीन मानसून से अधिक वर्षा होती है। शीतऋतु में ये हवाएँ स्थल से जल की ओर चलती हैं, अतः वर्षा कम होती है।

स्थलीय तथा सागरीय समीर

स्थलीय तथा सागरीय समीर एक प्रकार से मानसून हवाओं का ही लघु रूप है, जो कि मुख्यतः छोटे पैमाने पर होती हैं। इनकी दिशा में 24 घण्टे के अन्दर दो बाद परिवर्तन होता है। सागरीय समीर दिन में सागर से स्थल की ओर तथा स्थलीय समीर रात्रि में स्थल से सागर की ओर चलती हैं।

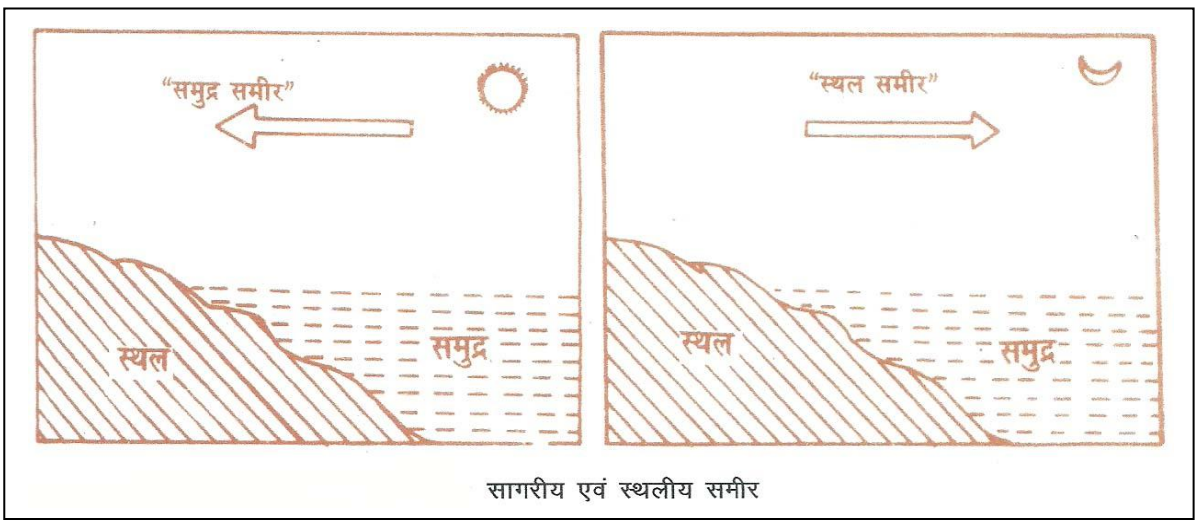

सागरीय एवं स्थलीय समीर

दिन के समय जब सूर्य चमकता है तो निकटवर्ती समुद्र की तुलना में स्थलीय भाग शीघ्रता से गर्म हो जाता है जिससे स्थल पर निम्न वायु दाब की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जबकि समुद्री भाग के अपेक्षाकृत ठंडा रहने के कारण वहाँ उच्च वायुदाब पाया जाता है। इस कारण सागर से स्थल की ओर हवायें चलती है जबकि रात्रि में ठीक इसके विपरीत स्थिति होती है और हवायें स्थल से सागर की ओर चलती हैं।

स्थानीय पवन

ये पवनें स्थानीय तापमान और वायुदाब में अंतर के कारण स्थानीय स्तर पर विकसित होती हैं। ये छोटे क्षेत्रों को ही प्रभावित करती हैं और क्षोभमण्डल की निचली परतों तक ही सीमित रहती हैं। ये हवायें गर्म, ठण्डी, बर्फ से भरी, धूल, रेत युक्त आदि कई प्रकार की होती हैं। जैसे– प्रायः भारत में मई और जून के महीने में दोपहर के बाद पश्चिम दिशा से बहने वाली अति गर्म और शुष्क हवा 'लू' स्थानीय हवा का उदाहरण है। विश्व की कुछ मुख्य स्थानीय हवा हैं– चिनूक, फॉन, सिरोक्को, हरमट्टन, बोरा, मिस्ट्रल, ब्लिजर्ड आदि।

चक्रवात एवं प्रतिचक्रवात

पवनों का ऐसा चक्र जिसमें अन्दर की ओर वायुदाब कम और बाहर की ओर अधिक होता है, चक्रवात कहलाता है। इनमें पवन की दिशा परिधि से केन्द्र की ओर होती है। इसमें हवाओं की गति उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुईयों के विपरीत तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सुईयों के अनुकूल होती है।

उत्पत्ति क्षेत्र के आधार पर चक्रवात शीतोष्ण कटिबंधीय तथा उष्ण कटिबंधीय प्रकार के होते हैं। शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की उत्पत्ति तथा प्रभाव क्षेत्र शीतोष्ण कटिबन्ध में ही है। ये गोलाकार, अण्डाकार या V आकार के होते हैं। ये चक्रवात उत्तरी गोलार्द्ध में केवल शीत ऋतु में आते हैं, परन्तु दक्षिणी गोलार्द्ध में जल भाग के अधिक होने के कारण प्रायः वर्षभर आते रहते हैं।

कर्क तथा मकर रेखाओं के मध्य उष्ण कटिबंध में उत्पन्न तथा विकसित होने वाले चक्रवातों को उष्ण कटिबंधीय चक्रवात कहते हैं। ये बड़े बिनाशकारी होते हैं। इन्हें चीन सागर में टाइफून, मैक्सिकों की खाड़ी में टॉरनेडो, पश्चिमी द्वीप में हरीकेन तथा बंगाल की खाड़ी में चक्रवात और आस्ट्रेलिया में विली–विली कहते हैं। इन चक्रवातों की उत्पत्ति महासागर के उन क्षेत्रों में होती है, जिनके सतह पर तापमान 27^0C से अधिक होता है। साथ ही कोरियालिस बल का होना इन चक्रवातों की उत्पत्ति के लिए आवश्यक है। भारत में बंगाल की खाड़ी से उत्पन्न चक्रवात पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश व तमिलनाडु तथा अरब सागर से उत्पन्न चक्रवात गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों के समुद्रतटीय भागों को अधिक प्रभावित करते हैं।

चक्रवात के ठीक विपरीत प्रतिचक्रवात के केन्द्र में वायुदाब अधिकतम होता है और केन्द्र से बाहर की ओर यह क्रमशः घटता जाता है, फलस्वरूप हवाएं केन्द्र से परिधि की ओर चलती हैं। इसमें हवाओं की गति उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुईयों के अनुकूल तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सुईयों के विपरीत होती है। प्रतिचक्रवात किसी क्षेत्र में उच्च वायु दाब क्षेत्र का निर्माण करता है एवं साफ मौसमी दशाओं को संकेतित करता है। इनके मार्ग व दिशा में निश्चितता का अभाव होता है। प्रतिचक्रवात का आकार काफी बड़ा (कभी–कभी 9000 किमी तक) होता है। शीतल प्रतिचक्रवात प्रभावित क्षेत्र में तापमान की न्यूनता का कारण बनते हैं। जबकि गर्म प्रतिचक्रवात तापमान में वृद्धि करते हैं।

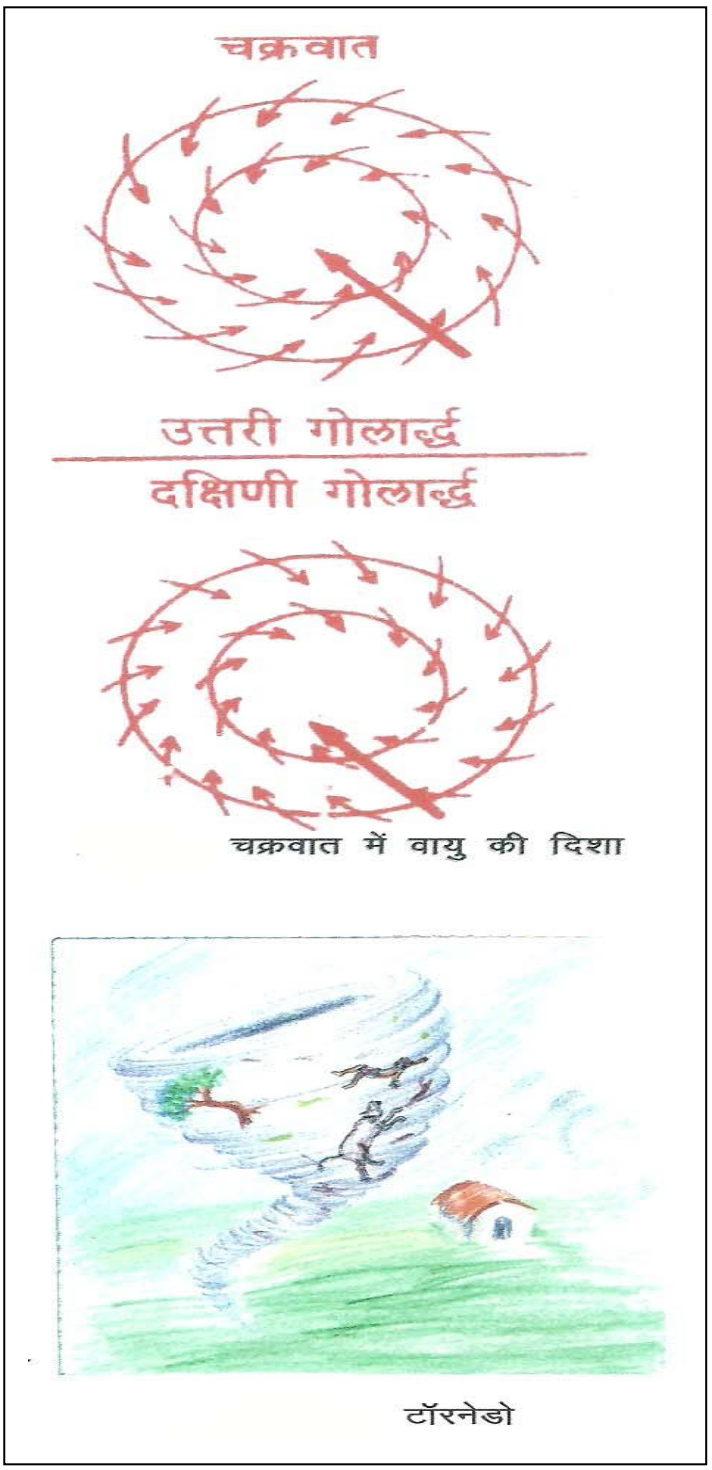

चक्रवात में वायु की दिशा

टॉरनेडो

यह भी जानें

चक्रवातों के नामकरण की शुरूआत अटलांटिक क्षेत्र में 1953 में एक संधि के माध्यम से हुई थी, जो मियामी स्थित 'नेशलन हरिकेन सेंटर' की पहल पर शुरू हुईथी। इसकी देखरेख जिनेवा स्थिति 'विश्व मौसम संगठन' करता है। हिंद महासागर क्षेत्र में यह व्यवस्था वर्ष 2004 में शुरू हुई जब भारत की पहल पर आठ तटीय देशों– भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान, म्यांमार, मालदीव, श्रीलंका, ओमान और थाइलैण्ड ने इस बारे में समझौता किया। इन आठों देशों की ओर से अपनी–अपनी पसंद के अनुरूप नाम सुझाए गए हैं। अंग्रेजी वर्णमाल के अनुसार सदस्य देशों के नाम के पहले अक्षर के अनुसार उनका क्रम तय किया जाता है और उसी क्रम में इनकी ओर से सुझाए गए नामों के अनुरूप चक्रवातों के नाम रखे जाते हैं। जैसे पिछले चक्रवात 'नानौक' का नामकरण म्यांमार द्वारा किया गया था क्योंकि तब म्यांमार की बारी थी। अब 'हुदहुद' नाम ओमान की ओर से सुझाए गए नामों की सूची में से आयी है। इसके बाद आये चक्रवात को पाकिस्तान द्वारा सुझाया गया नाम 'नीलोफर' दिया गया है। **स्रोत–** ***दृष्टिकोण मंथन –1631 अक्टूबर 2014***

vH;kl ç'u

प्रश्न–1 निम्न में से कौन–सा कारक पवन को प्रभावित नहीं करता है–

(क) कोरियालिसबल (ख) प्लेट विवर्त्तनिकी (ग) वायु दाब में अंतर (घ) धरातलीय विषमताएँ

प्रश्न–2 'गरजता चालीसा' किस पवन को कहा जाता है–

(क) पछुवा पवन (ख) ध्रुवीय पवन (ग) व्यापारिक पवन (घ) जेट स्ट्रीम

प्रश्न–3 शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की उत्पत्ति होती है–

(क) भूमध्यरेखीय निम्न वायुदाब क्षेत्र में (ख) उपध्रुवीय निम्न वायु दाब क्षेत्र में

(ग) उत्तरी ध्रुवीय क्षेत्र में (घ) दक्षिणी ध्रुवीय क्षेत्र में

प्रश्न–4 मानसूनी हवाओं की दिशा में परिवर्तन होता है–

(क) 24 घण्टे में (ख) 6 माह में (ग) 3 माह में (घ) 12 घण्टे में

प्रश्न–5 स्थलीय तथा सागरीय समीर में क्या अंतर हैं?

प्रश्न–6 कोरियालिस बल से आप क्या समझते हैं?

प्रश्न–7 चक्रवात तथा प्रतिचक्रवात में क्या अंतर हैं ?

प्रश्न–8 स्थानीय पवन को उदाहरण देते हुए बताइए।

प्रश्न–9 पवन को कितने प्रकारों में बाँटा जा सकता है, इसे बताते हुए मानसून हवाओं पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न–10 पवन की दिशा और गति को कौन–कौन से कारक प्रभावित करते है, बताइए।

प्रॉजेक्ट कार्य

- मानसून के बारे में कक्षा में चर्चा करायें और भारत के संदर्भ में इसके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आयापों पर भी चर्चा करें
- अखबारों से चक्रवात आपदा और उसके प्रभाव से सम्बन्धित खबरों को इकट्ठा करायें तथा उसके प्रभाव व निराकरण/प्रबन्धन पर चर्चा करें और प्रमुख निष्कर्षों को नोट करें।

tye.My& leqnz ,oa mldh xfr;k¡ leqnzh /kkjk;sa rFkk mudk rVorhZ {ks=ksa ij izHkko] Tokj&HkkVk

जल के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। पृथ्वी के धरातल पर प्रचुर मात्रा में जल की उपलब्धता पायी जाती है इसलिए इसे 'नीला ग्रह' भी कहा जाता है। सम्पूर्ण पृथ्वी के तीन–चौथाई भाग (70.8%) पर जल का तथा एक चौथाई भाग (29.2%) पर स्थल का विस्तार पाया जाता है। पृथ्वी के कुल क्षेत्रफल (50.995 या 51 करोड़ वर्ग किमी) के 36.106 करोड़ वर्ग किमी पर जलमण्डल तथा 14.889 करोड़ वर्ग किमी0 पर स्थलमण्डल का विस्तार पाया जाता है। पृथ्वी पर उत्तरी गोलार्द्ध में (40%) भाग पर जल तथा 60% भाग पर स्थल का विस्तार है जबकि इसके विपरीत दक्षिणी गोलार्द्ध में 81% भाग पर जल तथा 19% भाग पर स्थल का विस्तार है। इसी कारण उत्तरी गोलार्द्ध को 'स्थल गोलार्द्ध' और दक्षिणी गोलार्द्ध को 'जल गोलार्द्ध' भी कहा जाता है।

समुद्र का जल कभी स्थिर नहीं रहता। यह अनेक कारणों से सदैव गतिमान रहता है। लहरें, ज्वार–भाटा तथा धाराएँ समुद्री जल की मुख्य गतियाँ है। आइए इसको जानें और समझें–

लहरें– सागर में लहरों की उत्पत्ति के अनेक कारण हैं, परन्तु इनमें पवन सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। लहरें समुद्र की सतह पर पवनों द्वारा जल को ढकेले जाने की प्रक्रिया के कारण बनती हैं। जल की सतह से टकराकर हवाएँ उसे विभिन्न स्थान से उठा देती हैं जिससे मोड़ों के रूप में जल ऊपर–नीचे होता है। इसे 'लहरें' कहा जाता है। मौसम की दशा और पवन की गति के अनुसार ये लहरें मृदु या उग्र भी हो सकती हैं। जैसे भारत के पूवी तट पर चक्रवातों के साथ उठने वाली लहरों से जन–धन की भारी क्षति होती है, और इससे बचाव हेतु रेडियो, दूरदर्शन, समाचार पत्र के माध्यम से लोगों को समय रहते सचेत किया जाता है।

ज्वार–भाटा

ज्वार'–भाटा समुद्र का नियमित उत्थान और पतन है जिसके अन्तर्गत समुद्र का जल नियमित रूप से दिन में दो बार ऊपर उठता है तथा दो बार नीचे उतरता है। सूर्य तथा चन्द्रमा की आकर्षण शक्तियों के कारण सागरीय जल के ऊपर उठकर आगे बढ़ने को 'ज्वार' तथा सागरीय जल के नीचे गिरकर सागर की ओर पीछे लौटने को 'भाटा' कहते हैं। पूर्णिमा तथा अमावस्या के दिन जब सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा तीनों एक सीध में आ जाते हैं तो सूर्य और चन्द्रमा की सम्मिलित आकर्षण शक्ति का प्रभाव पृथ्वी पर पड़ता है। अतः उस समय सबसे अधिक ऊँचे ज्वार आते है, जिन्हें दीर्घ ज्वार या वृहद ज्वार कहते हैं।

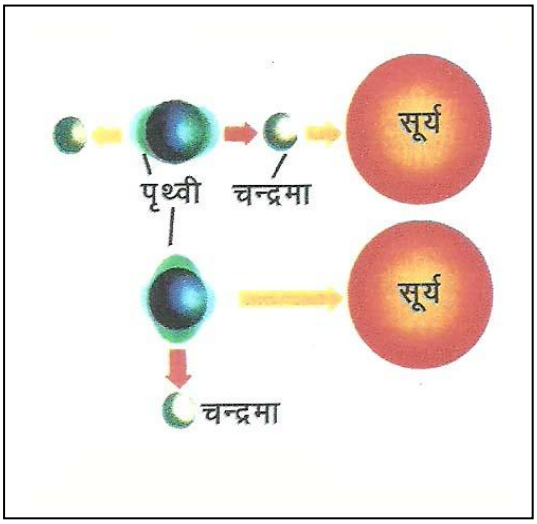

इसके विपरीत शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष की सप्तमी या अष्टमी के दिन जब सूर्य तथा चन्द्रमा पृथ्वी के केन्द्र पर समकोण बनाने वाली दिशाओं में स्थित होते हैं तो सूर्य और चन्द्रमा के आकर्षण बल एक–दूसरे के

विपरीत कार्य करते हैं। जिसके कारण निम्न या लघु ज्वार आता है।

ज्वार भाटा का मानव के लिए विशेष महत्व है क्योंकि इससे मनुष्यों को व्यापार, मछली पकड़ने तथा नौ संचालन में सहायता मिलती है। ज्वार के समय तट के निकट जल की गहराई बढ़ जाती है, जिससे बड़े–बड़े जहाज पत्तनों तक सुरक्षित और सुगमता से पहुँच जाते हैं। वहीं भाटे के साथ जहाज वापस गहरे सागर में लौट आते हैं। नदियाँ अपने मुहाने पर जो अवसाद जमा करती रहती है, ज्वार–भाटा इसे हटाकर दूर बहा ले जाता है। ज्वार–भाटा का इस्तेमाल विद्युत शक्ति उत्पन्न करने में भी किया जा रहा है; कनाडा, फ्रांस, रूस एवं चीन में ज्वारीय विद्युत का प्रयोग किया जाता है।

समुद्री धाराएँ

महासागरों की सतह पर एक निश्चित दिशा में नदी की तरह बहते जल को महासागरीय धारा कहते हैं। ये धाराएँ कम चौड़ी और तेज गति वाली होती हैं। इनकी गति दो से दस किलोमीटर प्रति घण्टे तक हो सकती है, लेकिन कभी–कभी महासागरों का जल एक चौड़े और धीमी गति से बहने वाले 'प्रवाह' का रूप ले लेता है। इनकी गति एक से तीन किलोमीटर प्रति घण्टे होती है।

महासागरीय धारायें दो प्रकार की होती है– गर्मधाराएँ और ठण्डी धाराएँ। विषुवतीय प्रदेशों से ध्रुवों की ओर बहने वाली धाराएँ गर्म तथा ध्रुवीय क्षेत्रों से विषुवतीय प्रदेशों की ओर बढ़ने वाली धाराओं को ठंडी धाराएँ कहा जाता है।

धाराओं की उत्पत्ति तथा उनकी गति को प्रभावित करने के लिए निम्न कारक उत्तरदायी माने जाते हैं–

1. पृथ्वी का घूर्णन, गुरूत्वाकर्षण बल तथा विक्षेपक बल से संबंधित कारक।
2. महासागरीय कारक– तापक्रम, लवणता, घनत्व तथा बर्फ का विघलना।
3. महासागरों से हटकर उत्पन्न होने वाले कारक–वायुमण्डलीय दाब, पवन, वृष्टि, वाष्पीकरण तथा सूर्यातप।
4. महासागरीय धाराओं में परिवर्तन या सुधार लाने वाले कारक– तट की दिशा व आकार, मौसम में परिवर्तन तथा महासागरीय तली की स्थलाकृति ।

प्रमुख महासागरीय धाराएँ

1. गल्फ स्ट्रीम या खाड़ी का धारा

गल्फ स्ट्रीम अटलांटिक महासागर की एक प्रमुख गर्म जलधारा है। यह उत्तरी अमेरिका महाद्वीप के मेक्सिको की खाड़ी से उत्पन्न होकर उत्तर की ओर प्रवाहित होती है। यही धारा आगे चलकर पछुवा हवाओं के प्रभाव के कारण पूर्व की ओर मुड़ जाती है, जिसे उत्तरी अटलांटिक धारा कहा जाता है। यह धारा यूरोप के पश्चिमी तट को सर्दियों में जमने नहीं देती जबकि इसी समय उत्तरी अमेरिका का उत्तरी पूर्वी तट बर्फ से जम जाता है। यही कारण है कि यूरोप के सभी बड़े बन्दरगाह वर्ष–भर आयात–निर्यात हेतु खुले रहते हैं।

2. लेब्राडोर धारा

लेब्राडोर धारा एक ठण्डी जल धारा है जो कि बैफिन की खाड़ी तथा डेविस जलडमरूमध्य (उत्तरी ध्रुव सागर) से प्रारम्भ होकर न्यूफाउण्डलैण्ड तट से होती हुई ग्राण्ड बैंक के पूर्व से गुजरने के बाद 50^0 पश्चिमी देशान्तर के पूर्व में गल्फस्ट्रीम से मिल जाती है।

लेब्राडोर तथा गल्फस्ट्रीम के मिलने के कारण घना कुहरा पड़ता है। साथ ही लेब्राडोर की ठण्डी धारा के साथ बर्फ के बड़े–बड़े खण्ड न्यूफाउण्डलैण्ड तक आते हैं जो कि सागरीय यातायात में बाधक होते हैं।

3. क्यूरोशियो धारा

प्रशान्त महासागर में जब उत्तरी विषुवतीय धारा फिलीपाइन्स के पास दाहिने मुड़कर उत्तर की ओर बढ़ती है तो क्यूरोशियों धारा की उत्पत्ति होती है, जो कि एक गर्म जलधारा है। यह धारा जापान

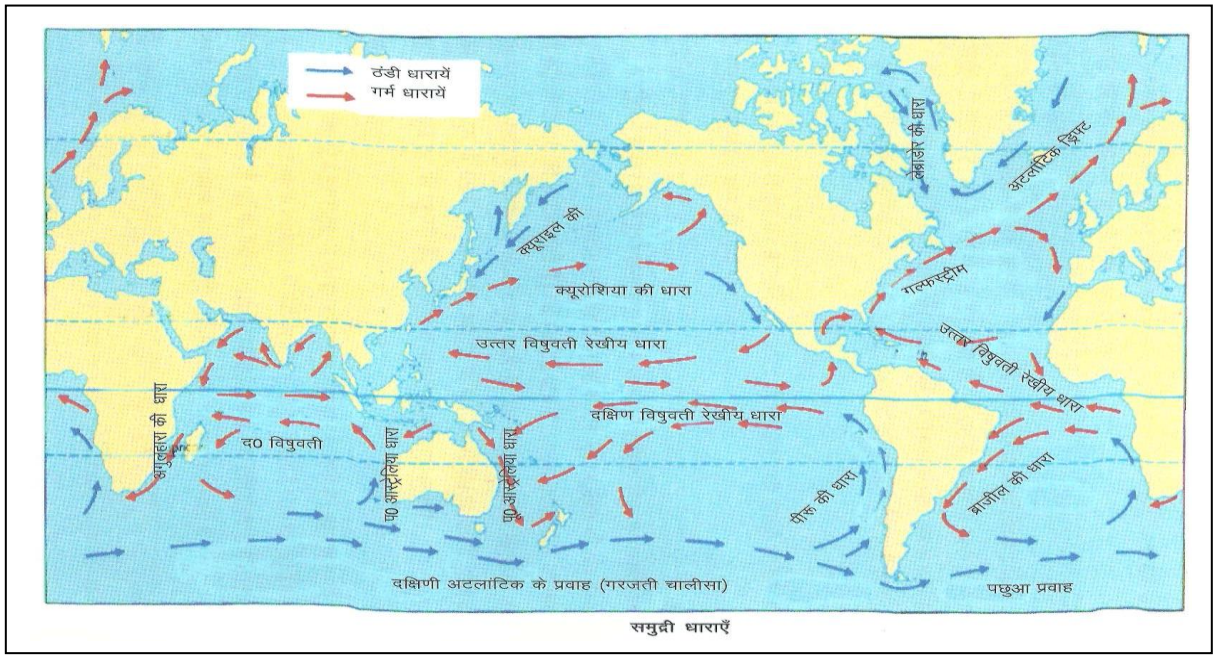

तट के पास पछुवा पवन के प्रभाव के कारण पूर्व की ओर मुड़ जाती है। यह धारा अटलांटिक महासागर की गल्फस्ट्रीम धारा के समान ही है।

4. क्यूराइल की धारा

यह एक ठण्डी जल धारा है जिसके द्वारा आर्कटिक महासागर का ठण्डा जल प्रशान्त महासागर में लाया जाता है। इसकी तुलना अटलांटिक महासागर की लेब्राडोर धारा से की जा सकती है। जब यह क्यूरोशियो की गर्म धारा से मिलती है तो वहाँ पर कोहरा पड़ता है जो कि सागरीय यातायात के लिए क्षतिकारक होता है।

5. धाराओं का तटीय क्षेत्र पर प्रभाव

महासागरीय जलधाराओं के माध्यम से पृथ्वी के क्षैतिज ऊष्मा संतुलन को स्थापित करने का प्रकृति द्वारा प्रयास किया जाता है। इनका सर्वाधिक प्रभाव तटीय भागों पर होता है। गर्म धाराएँ जहाँ तट के तापमान को बढ़ा देती हैं वहीं ठंडी धाराएँ तापमान में गिरावट लाती हैं। इस प्रकार धारायें अपने स्वभाव (ठण्डी या गर्म) के अनुसार तटीय क्षेत्र के मौसम और जलवायु को प्रभावित करती हैं। गर्म धाराएँ अपने साथ लाने वाली आर्द्र पवनों से वर्षा कराती हैं। गर्म धाराओं के प्रभाव के कारण ठण्डे स्थानों के बन्दरगाह साल भर खुले रहते हैं। गर्म व ठण्डी जल धाराओं के मिलन स्थल पर कोहरा पड़ता है जिससे जलयानों को क्षति पहुँचती है। लेकिन प्लवकों (प्लैंक्टन) के उत्पन्न होने की अनुकूल दशाएँ उत्पन्न होती हैं, जो कि मछलियों का भोजन है। ऐसे भागों में संसार के प्रसिद्ध मत्स्य केन्द्र पाये जाते है। ठण्डी जलधाराएँ अपने साथ बड़ी–बडी हिमशिलाएँ (आइस–बर्ग) बहाकर लाती हैं। जिनके टकराने के कारण जलयान क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिए लेब्राडोर धारा द्वारा लाये गये आइसबर्ग से टकराकर 'टाइटेनिक' जहाज ध्वस्त होकर डूब गया था। भारत में मानसून को निर्धारित करने में समुद्री धाराओं की महत्वपूर्ण भूमिका है।

vH;kl ç'u

प्रश्न–1 जल की अधिकता के कारण पृथ्वी को कहा जाता है–

(क) ब्लू प्लैनेट (ख) ग्रीन प्लैनेट (ग) रेड प्लैनेट (घ) व्हाइट प्लैनेट

प्रश्न–2 वृहद ज्वार की स्थिति में सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा तीनों एक सीध में आ जाते हैं –

(क) केवल पूर्णिमा के दिन (ख) केवल अमावस्या के दिन

(ग) पूर्णिमा तथा अमावस्या के दिन (घ) कृष्ण पक्ष की सप्तमी–अष्टमी के दिन

प्रश्न–3 लेब्राडोर की ठण्डी धारा, गलफस्ट्रीम की गर्म धारा से मिलती है–

(क) मेक्सिको की खाड़ी के पास (ख) ग्राण्ड बैंक के पूर्व से गुजरने के बाद

(ग) उत्तरी हिन्द महासागर के पास (घ) दक्षिणी प्रशांत महासागर के पास

प्रश्न–4 गर्म तथा ठण्डी धाराओं के मिलने के स्थान पर उत्पन्न होती हैं–

(क) प्लैंकटन घास (ख) सारगैसम घास (ग) जलकुंभी (घ) गाजर घास

प्रश्न–5 ज्वार–भाटा से आप क्या समझते हैं ?

प्रश्न–6 मानव जीवन में ज्वार–भाटे का क्या महत्व हैं ?

प्रश्न–7 लहरें तथा ज्वार–भाटा में क्या अंतर हैं ?

प्रश्न–8 गर्म तथा ठण्डी जलधारा से आप क्या समझते हैं ?

प्रश्न–9 महासागरीय धाराओं को बताते हुए उसके महत्व पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न–10 समुद्र की प्रमुख गतियां कौन सी है, परिचय दीजिए।

प्रॉजेक्ट कार्य

- ज्वार–भाटा के अन्तर्गत इसका प्रदर्शन चार्ट पर सूर्य, चन्द्रमा व पृथ्वी की स्थिति द्वारा करायें।
- विश्व के मानचित्र को दिखाकर उस पर प्रमुख महासागरीय धाराओं को इंगित करने को कहें तथा उन धाराओं के तटवर्ती क्षेत्रों पर प्रभाव को बताने को कहें।

gekjk lafo/kku

क्या आप जानते हैं कि स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय नागरिकों के लिए कानून कहाँ बनाए जाते थे? 15 अगस्त सन् 1947 ई0 से पूर्व भारत में अंग्रेजों का शासन था। इंग्लैण्ड में बैठे कुछ अंग्रेज यह तय करते थे कि भारत के लोगों के लिए कानून कैसे बनेंगे और उन्हें लागू कौन करेंगा? अंग्रेज मनचाहा कानून भारतीयों पर थोप देते थे। इस व्यवस्था से व्यथित लोगों ने इस बात के लिए स्वतंत्रता संघर्ष शुरू किया कि भारत के लोगों को स्वयं अपने कानून बनाने और अपना शासन चलाने का हक मिल सके। लम्बे संघर्ष के बाद हमें सफलता मिली, भारत अजाद हुआ और हमने अपना संविधान बनाया। अपने संविधान के गठन और उसकी विशेषताओं को जानने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि संविधान होता क्या है?

हमारा संविधान

- संविधान किसे कहते हैं ?
- संविधान के गठन की भूमिका।
- संविधान का गठन।
- संविधान की प्रस्तावना।
- संविधान की विशेषताएँ।

संविधान किसे कहते हैं

संविधान उन आधारभूत नियमों व कानूनों का संग्रह है, जिनके आधार पर किसी देश का शासन चलाया जाता है। संविधान सरकार की शक्ति तथा स्रोत है।

ब्राइस के अनुसार– ''संविधान ऐसे निश्चित नियमों का संग्रह होता है, जिनसे सरकार की कार्यविधि प्रतिपादित होती है और जिनके द्वारा उनका संचालन होता है।''

फाइनर के अनुसार– ''संविधान आधारभूत राजनीतिक संस्थाओं की व्यवस्था होती है।''

डायसी के अनुसार– ''संविधान का अभिप्राय उन समस्त नियमों से है, जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से राज्य की सार्वभौमिक शक्तियों के विवतण अथवा प्रयोग को निर्धारित करते हैं।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि, ''संविधान उन मौलिक कानूनों का संग्रह है, जिनके अनुसार राज्य की शासन–व्यवस्था को संचालित करने के लिए नियमों तथा कानूनों का सृजन किया जाता है। संविधान में संगृहीत ये नियम व सिद्धान्त सरकार के संगठन, शक्ति एवं कार्यों का निर्धारण करते हैं।''

संविधान के गठन की भूमिका

किसी लोकतांत्रिक राष्ट्र के संविधान निर्माण का कार्य सामान्यतया उसकी जनता के प्रतिनिधि निकाय द्वारा किया जाता है, जिसे संविधान सभा कहा जाता है।

भारत में संविधान सभा की माँग वर्षों पुरानी हैं। भारत में सर्वप्रथम सन् 1922 ई0 में गाँधी जी ने कहा था कि भारतीय अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करेगे। सन् 1924 ई0 में पं0 मोतीलाल नेहरू ने स्पष्ट शब्दों में कहा था, ''भारत का संविधान बनाने के लिए भारतीय संविधान सभा का निर्माण किया

जाना चाहिए।'' 1938 ई0 में पं0 जवाहर लाल नेहरू का विचार था, ''स्वतन्त्र भारत का संविधान बिना किसी बाह्य हस्तक्षेप के वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित सभा द्वारा बनाया जाय।'' प्रारम्भ में अंग्रेजों ने भारतीयों के इस माँग को स्वीकार नहीं किया परन्तु कालान्तर में 1946 ई0 की मन्त्रिमण्डल मिशन योजना में अंग्रेजों ने भारतीय संविधान सभा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

मंत्रिमण्डल (कैबिनेट) मिशन योजना के आधार पर जुलाई 1946 ई0 में संविधान सभा के चुनाव हुए। संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव प्रान्तीय विधान सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल संक्रमणीय मत द्वारा होना था। संविधान सभा के कुल 389 स्थानों में से प्रान्तों के लिए 296 स्थानों के लिए चुनाव हुए। इनमें से 208 स्थान कांग्रेस को, 73 स्थान मुस्लिम लीग को, 4 स्थान अन्य को तथा 8 स्थान स्वतन्त्र उम्मीदवारों को प्राप्त हुए। संविधान सभा के सदस्यों में पं0 जवाहर लाल लेहरू, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल, श्रीमती सरोजनी नायडू, श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख, श्रीमती हंसा मेहता और श्रीमती रेणुका राय प्रमुख थे।

क्रियाकलाप– कक्षा में दस–दस प्रशिक्षुओं का समूह बनाकर संविधान निर्माण में डॉ0 भीमराव अम्बेडकर की भूमिका पर चर्चा करें।

संविधान का गठन

कैबिनेट मिशन के प्रावधानों के अनुसार भारत में संविधान सभा का गठन जुलाई 1946 ई0 में हुआ। 09 दिसम्बर 1946 ई0 को दिल्ली के सेन्ट्रल हाल में संविधान सभा की पहली बैठक हुई। इसी दिन डॉ0 सच्चिदानन्द सिंहा को सभा का अस्थायी अध्यक्ष चुना गया। संविधान सभा की दूसरी बैठक 11 दिसम्बर, 1946 ई0 को बुलाई गयी और डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद को संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष चुना गया। 13 दिसम्बर 1946 ई0 को पं0 जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा में एक उद्देश्य प्रस्ताव पेश किया जो 22 जनवरी 1947 ई0 को पारित हुआ।

संविधान निर्माण को सरल बनाने के लिए कुछ समितियों का गठन किया गया, जैसे– संघीय अधिकार समिति, संघीय संविधान समिति, प्रान्तीय संविधान समिति, अल्पसंख्यक समिति, मौलिक अधिकार समिति, प्रारूप समिति आदि। इन समितियों में सबसे महत्वपूर्ण समिति प्रारूप समिति थी।

संविधान को अंतिम रूप देने के लिए संविधान सभा ने डॉ0 भीमराव अम्बेडकर की अध्यक्षता में सात सदस्यों की एक प्रारूप समिति नियुक्त की। संविधान सभा में कुल 11 अधिवेशन हुए, 165 दिन बैठेक चली। संविधान निर्माण में 2 वर्ष, 11 महिना तथा 18 दिन लगा। संविधान निर्माण का कार्य 26 नम्बर, 1949 ई0 को पूरा हो गया और इसके कुछ भाग लागू भी कर दिए गए। लेकिन संविधान पूर्ण रूप से 26 जनवरी सन् 1950 ई0 को लागू हुआ। इसीलिए हर साल 26 जनवरी को गणतंत्र दिवस मनाया जाता है। मूल संविधान में 395 अनुच्छेद, 22 भाग और 8 अनुसूचियाँ थी।

बोध प्रश्न

1. संविधान सभा की पहली बैठक कब हुई ?
2. भारतीय संविधान कब लागू हुआ ?
3. प्रारूप समिति के अध्यक्ष कौन थे ?

संविधान की प्रस्तावना

प्रस्तावना संविधान का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। प्रस्तावना संविधान का संक्षिप्त सार एवं आत्मा है। इसके द्वारा संविधान के मूल उद्देश्यों व लक्ष्यों को स्पष्ट किया जाता है। भारतीय संविधान की मूल प्रस्तावना में 42 वें संवैधानिक संशोधन 1976 द्वारा कुछ शब्दों को जोड़ा गया और अब संविधान की प्रस्तावना इस प्रकार हैं–

''हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न, समाजवादी, पन्थनिरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक, गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई0 **(मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी–संवत् दो हजार छह विक्रमी)** को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।''

चर्चा करें

- क्या वर्तमान समय में हमने प्रस्तावना में निर्धारित लक्ष्यों स्वतंत्रता, समानता और न्याय को प्राप्त कर लिया है।

संविधान की विशेषताएँ

भारतीय संविधान में अनेक उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं, जिनमें से प्रमुख इस प्रकार है–

1. अत्यन्त विस्तृत तथा व्यापक– भारतीय संविधान विश्व के विशालतम संविधानों में से एक है। प्रारम्भ में इसमें 395 अनुच्छेद, 22 भाग और 8 अनुसूचियों थी जबकि वर्तमान संविधान में 445 अनुच्छेद, 25 भाग और 12 अनुसूचियाँ है। आइवर जेनिंग्स ने इसे 'विश्व का सबसे बड़ा और विस्तृत संविधान' कहा है।

2. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य– संविधान की प्रस्तावना के अनुसार भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्मपन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है। सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न का अर्थ है कि भारत आन्तरिक और बाह्या रूप से स्वतंत्र है और अपनी नीतियों का निर्माण स्वयं करेंगा। लोकतंत्र का अर्थ है कि राज्य की सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित है। गणराज्य से तात्पर्य है कि हमारे देश का प्रधान वंशानुगत न होकर जनता द्वारा निर्वाचित होगा।

3. समाजवादी– समाजवादी राज्य से अभिप्राय यह है कि सभी को अपने विकास तथा उन्नति के समान अवसर प्राप्त होगें।

4. संघात्मक शासन– भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था लागू किया गया है। यहाँ दो सत्ताएँ केन्द्र और राज्य है। इनके बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन है।

5. संसदीय शासन प्रणाली–ब्रिटेन की भाँति भारत में भी संसदीय शासन–प्रणाली की स्थापना की गयी है। इस प्रणाली में कार्यपालिका (मन्त्रिपरिषद्) विधायिका के निम्नसद्न (लोकसभा) के प्रति उत्तरदायी होती है।

6. धर्म निरपेक्ष राज्य– संविधान द्वारा भारत को धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है अर्थात् भारत राज्य का अपना को धर्म नहीं है लेकिन भारतवासी किसी भी धर्म को अपना सकते हैं।

7. मूल अधिकारों की व्यवस्था– संविधान द्वारा भारतीय नागरिकों को निम्न मूल अधिकारों की व्यवस्था की गयी है–

- ✯ समता का अधिकार
- ✯ स्वतन्त्रता का अधिकार
- ✯ शोषण के विरूद्ध अधिकार
- ✯ धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार
- ✯ संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार
- ✯ संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

मूल संविधान में सात मौलिक अधिकारों का उल्लेख था किन्तु 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा सम्पत्ति के मूल अधिकार को समाप्त कर दिया गया। मूल अधिकार व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक होते हैं।

8. नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख– संविधान में नागरिकों की आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक उन्नति के लिए नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख है। नीति निर्देशक तत्वों को न्यायपालिका द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता फिर भी ये हमारे देश के शासन के मूल आधार है।

9. मूल कर्त्तव्यों का उल्लेख– भारतीय संविधान के भाग 4 क में नागरिकों के लिए मूल कर्त्तव्यों का उल्लेख है। इनमें से 10 मूल कर्त्तव्य 42 वें संविधान संशोधन 1976 द्वारा और 11 वाँ मूल कर्त्तव्य 86 वें संविधान संशोधन अधिनियम 2002 द्वारा जोड़ा गया है।

10. शक्तिशाली केन्द्र– यद्यपि भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया है अर्थात् केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्तियों का बँटवारा किया गया फिर भी आवश्यकता पड़ने पर केन्द्रीय सरकार राज्यों में आपातकाल की घोषणा करके वहाँ की कार्यपालिका शक्ति अपने हाथ में ले सकती है। इस प्रकार भारत में एक शक्तिशाली केन्द्र स्थापित है।

11. स्वतन्त्र न्यायापालिका– भारतीय संविधान द्वारा भारत के लिए एक स्वतंत्र न्यायापालिका की स्थापना की गयी है। सर्वोच्च न्यायालय भारत की सबसे बड़ी न्यायालय है। सर्वोच्च न्यायालय संविधान का रक्षक है। यह नागरिकों के मौलिक अधिकारों की भी रक्षा करता है।

12. एकल नागरिकता– भारत की एकता और अखण्डता को बनाए रखने के लिए संविधान द्वारा एकल नागरिकता की व्यवस्था की गई है। यहाँ सभी नागरिक केवल भारत में नागरिक है, राज्यों के नहीं।

13. आपातकालीन व्यवस्था– भारतीय संविधान में आपातकालीन उपबन्धों की व्यवस्था की है। राष्ट्रपति युद्ध, बाह्य, आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह होने पर अनुच्छेद 352 के तहत राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा कर सकता है। अनुच्छेद 356 द्वारा राज्यों में संवैधानिक तन्त्र की विफलता पर राष्ट्रपति शासन तथा अनुच्छेद 360 के द्वारा वित्तीय आपातकाल की घोषणा की जाती है। आपातकाल में संघात्मक शासन एकात्मक शासन में परिवर्तित हो जाता है।

14. लोक–कल्याणकारी राज्य की स्थापना– संविधान द्वारा भारत में लोक–कल्याणकारी राज्य की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है। जिसमें सभी नागरिकों को आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक न्याय प्राप्त होगा।

15. एक राष्ट्रभाषा की व्यवस्था– संविधान द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्रदान किया गया है।

16. अस्पृश्यता का अन्त– राष्ट्रीय एकता में बाधक अस्पृश्यता को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 द्वारा अन्त कर दिया गया है। यह एक दण्डनीय अपराध होगा।

17. ग्राम पंचायतों की स्थापना– सत्ता का विकेन्द्रीयकरण लोकतंत्र के लिए हितकारी माना जाता है। इसीलिए स्थानीय स्वशासन के अन्तर्गत ग्राम पंचायतों की स्थापना की गयी है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- संविधान सभा का गठन कैबिनेट मिशन के प्रावधानों के अनुसार हुआ।
- संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर 1946 को हुई।
- डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष थे।
- डॉ0 भीमराव अम्बेडकर प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे।
- 26 जनवरी 1950 ई0 को संविधान लागू हुआ।

vH;kl ç'u

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान में कितनी सूचियाँ है?

(क) एक (ख) दो

(ग) तीन (घ) चार

2. भारत का गणतंत्र दिवस है–

(क) 26 जनवरी (ख) 26 नवम्बर

(ग) 15 अगस्त (घ) 02 अक्टूबर

3. संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष थे–

(क) डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद (ख) सच्चिदानन्द सिन्हा

(ग) डॉ0 भीमराव अम्बेडकर (घ) इनमें से कोई नहीं।

अतिलुद्य उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष कौन थे ?

2. भारतीय संविधान के निर्माण में कुल कितना समय लगा?

3. भारतीय संविधान की दो विशेषताएँ लिखिए।

4. भारत की राष्ट्रभाषा क्या है ?

5. भारतीय नागरिकों को कितने प्रकार के मूल अधिकार प्राप्त है ?

लद्यु उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान की प्रस्तावना लिखिए।

2. भारतीय संविधान के चार स्रोत लिखिए।

3. लोकतन्त्रात्मक गणराज्य से आप क्या समझते है।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान के निर्माण की पृष्ठभूमि तथा इसकी प्रस्तावना की विवेचना कीजिए।

2. भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

ukxfjdrk

नागरिकता– अर्थ एवं महत्व

भारत में दो तरह के लोग हैं, नागरिक और विदेशी। नागरिक भारतीय राज्य के पूर्ण सदस्य होते हैं और उनकी इस पर पूर्ण निष्ठा होती है। इन्हें सभी नागरिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त होते हैं। दूसरी ओर, विदेशी किसी अन्य राज्य के नागरिक होते हैं। इसलिए उन्हें सभी नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार नहीं प्राप्त होते हैं। ये दो तरह के होते है– विदेशी मित्र एवं विदेशी शत्रु। विदेशी मित्र वे होते हैं, जिनके भारत के साथ सकारात्मक संबंध होते हैं। विदेशी शत्रु वे हैं, जिनके साथ भारत का युद्ध चल रहा हो। उन्हें कम अधिकार प्राप्त होते हैं तथा वे गिरफ्तारी और नजबंदी के विरूद्ध सुरक्षित नहीं होते। (अनुच्छेद 22) संविधान भारतीय नागरिकों को निम्नलिखित अधिकार एवं विशेषाधिकार प्रदान करता है। विदेशियों को नहीं।

शिक्षण बिन्दु

- नागरिकता – अर्थ एवं महत्व
- संवैधानिक उपबंध
- नागरिकता अधिनियम 1955
- नागरिकता की समाप्ति
- एकल नागरिकता

1. धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद–15)
2. लोक नियोजन के विषय में समता का अधिकार (अनुच्छेद–16)
3. वाक् स्वतंत्रता एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सम्मेलन, संघ, संचरण, निवास व व्यवसाय की स्वतंत्रता (अनुच्छेद–19)
4. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद–29)
5. लोकसभा और विधान सभा चुनाव में मतदान का अधिकार।
6. संसद एवं राज्य विधानमंण्डल की सदस्यता के लिए चुनाव लड़ने का अधिकार।
7. सार्वजनिक पदों जैसे– राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, उच्चतम एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, राज्यों के राज्यपाल, महान्यायवादी एवं महाधिवक्ता की योग्यता रखने का अधिकार।

उपरोक्त अधिकारों के साथ नागरिकों को भारत के प्रति कुछ कर्त्तव्यों का भी निर्वहन करना होता है। उदाहरण के लिए कर भुगतान, राष्ट्रीय ध्वज एवं राष्ट्रगान का सम्मान एवं देश की रक्षा आदि।

नागरिक सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधान इस प्रकार है–

- ✯ वह व्यक्ति भारत का नागरिक नहीं होगा या भारत का नागरिक नहीं माना जाएगा, जो स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिक ग्रहण कर लेगा। (अनुच्छेद–9)
- ✯ प्रत्येक व्यक्ति, जो भारत का नागरिकता है या समझा जाता है यदि संसद इस प्रकार के किसी विधान का निर्माण करें (अनुच्छेद–10)
- ✯ संसद को यह अधिकार है कि वह नागरिकता के अर्जन और समाप्ति के तथा नागरिकता से सम्बन्धित अन्य सभी विषयों के संबंध में विधि बना सकती है। (अनुच्छेद–11)

नागरिकता अधिनियम, 1955

नागरिकता अधिनियम (1955) संविधान लागू होने के बाद अर्जन एवं समाप्ति के बारे में उपबंध करता है। इस अधिनियम को अब तक चार बार संशोधित किया गया है। ये संशोधन इस प्रकार है–

1. नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 1986
2. नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 1992
3. नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2003
4. नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2005

नागरिकता का अर्जन

नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 1955 नागरिकता प्राप्त करने की पाँच शर्तें बताता है, जैसे जन्म, वंशानुगत, पंजीकरण, प्राकृतिक एवं क्षेत्र समावष्टि करने के आधार पर।

1.जन्म

भारत में 26 जनवरी, 1950 को या उसके बाद परन्तु 1 जुलाई, 1947 से पूर्व जन्मा व्यक्ति अपने माता–पिता के जन्म की राष्ट्रीयता के बावजूद भारत का नागरिक होगा। भारत में 1 जुलाई को या उसके बाद जन्मा व्यक्ति केवल तभी भारत का नागरिक माना जाएगा, यदि उसके जन्म के समय उसके माता–पिता में से कोई एक भारत का नागरिक हो। इसके अतिरिक्त यदि किसी व्यक्ति का जन्म 3 दिसम्बर, 2004 के बाद भारत में हुआ हो तो वह उसी दशा में भारत का नागरिक माना जाएगा, यदि उसके माता–पिता दोनों उसके जन्म के समय भारत के नागरिक हो या माता–पिता में से एक उस समय भारत का नागरिक हो तथा दूसरा अवैध प्रवासी न हो।

भारत में पदस्थ विदेशी राजनयिक एवं शत्रु देश के बच्चों को भारत की नागरिकता अर्जन करने का अधिकार नहीं हैं।

2. वंश के आधार पर

कोई व्यक्ति जिसका जन्म 26 जनवरी, 1950 को या उसके बाद परन्तु 10 दिसम्बर, 1992 से पूर्व भारत के बाहर हुआ हो वह वंश के आधार पर भारत का नागरिक बन सकता है, यदि उसके जन्म के समय उसका पिता भारत का नागरिक हो। यदि 10 दिसम्बर, 1992 को या उसके बाद यदि किसी व्यक्ति का जन्म देश से बाहर हुआ हो तो वह सभी भारत का नागरिक बन सकता ळै, यदि उसके जन्म के समय उसके माता–पिता में ये कोई एक भारत का नागरिक हो।

3 दिसम्बर, 2004 के बाद भारत से बाहर जन्मा कोई व्यक्ति वंश के आधार पर भारत का नागरिक नहीं हो सकता, यदि उसके जन्म के एक वर्ष के भीतर कांसुलेट में उसके जन्म का पंजीकरण न करा दिया गया हो या केन्द सरकार की सहमति से उक्त अवधि के बाद पंजीकरण न हुआ हो। इस

प्रकार के बच्चे का भारतीय कांसुलेट में पंजीकरण कराते समय आवेदन पत्र में माता–पिता को इस आशय का शपथ–पत्र देना होगा कि उनके बच्चे के पास किसी अन्य देश का पासपोर्ट नहीं है।

3. पंजीकरण द्वारा

केन्द्र सरकार आवेदन प्राप्त होने पर किसी व्यक्ति (अवैध प्रवासी न हो) को भारत के नागरिक के रूप में पंजीकृत कर सकती है, यदि वह निम्नांकित श्रेणियों में से किसी संबंद्ध हो, नामतः

(क) भारतीय मूल का व्यक्ति, जो नागरिकता प्राप्ति का आवेदन देने से ठीक पूर्व सात वर्ष भारत में रह चुका हो।

(ख) भारतीय मूल का वह व्यक्ति जो अविभाजित भारत के बाहर या किसी अन्य देश में अन्यत्र रह रहा हो।

(ग) वह व्यक्ति जिसने भारतीय नागरिक से विवाह किया हो और वह पंजीकरण के लिए प्रार्थनापत्र देने से पूर्व सात वर्ष से भारत में रह रहा हो।

(घ) भारत के नागरिक के नाबालिग बच्चे।

(ङ) कोई व्यक्ति, जो पूरी आयु तथा क्षमता का हो तथा उसके माता–पिता भारत के नागरिक के रूप में पंजीकृत हों।

(च) कोई व्यक्ति, जो पूरी आयु तथा क्षमता का हो तथा वह यह उसके माता–पिता स्वतंत्र भारत के नागरिक के रूप में पंजीकृत हों या वह पंजीकरण का इस प्रकार का आवेदन देने से एक वर्ष पूर्व से भारत में रह रहा हो।

इस प्रकार के व्यक्ति को मूलतः भारत का निवासी माना जा सकता है, यदि

1. वह पंजीकरण का इस प्रकार आवेदन देने से बारह माह पूर्व भारत में रह रहा हो।

2. भारत में आठ वर्ष पूर्व से रह रहा हो तथा इस प्रकार का आवेदन देने की ठीक पहले से कम से कम 12 माह पूर्व से वह भारत में रह रहा हो।

एक व्यक्ति जन्म से भारतीय मूल का माना जाएगा, यदि वह या उसके माता–पिता में कोई अभिवाजित भारत पैदा हुए हो, 15 अगस्त, 1947 के बाद भारत का अंग बनने वाले किसी भू–क्षेत्र के निवासी हो।

प्राकृतिक रूप से– केन्द्र सरकार आवेदन प्राप्त होने पर किसी व्यक्ति (अवैध प्रवासी न हो) प्राकृतिक रूप से नागरिकता प्रमाण–पत्र प्रदान कर सकती है। यदि वह व्यक्ति निम्नलिखित योग्यताएँ रखता है–

- ✯ ऐसे देश से संबंधित नहीं है, जहाँ भारतीय नागरिक प्राकृतिक रूप से नागरिक नहीं बन सकते।
- ✯ कि यदि वह किसी अन्य देश का नागरिक हो तो वह भारतीय नागरिकता के लिए अपने आवेदन की स्वीकृति पर उस देश की नागरिकता को त्याग देगा।
- ✯ यदि वह भारत में रह रहा हो या भारत सरकार की सेवा में हो या इनमें से थोड़ा कोई एक और थोड़ा कोई अन्य हो तो उसे नागरिकता संबंधी आवेदन देने के कम से कम 12 माह पूर्व से भारत में रह रहा होना चाहिए।
- ✯ यदि 12 माह की इस अवधि से 14 वर्ष पूर्व से वह भारत में रह रहा हो या भारत सरकार की सेवा में हो या इनमें से थोड़ा एक में और थोड़ा अन्य में हो, इनकी कुछ अवधि ग्यारह वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए।

✯ उसका चरित्र अच्छा होना चाहिए।

✯ कि वह संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं का अच्छा ज्ञाता हो।

✯ कि उसे प्राकृतिक रूप से नागरिकता का प्रमाण पत्र प्रदान किए जाने की स्थिति में, वह भारत में रहने का इच्छुक हो या भारत सरकार सेवा या किसी अन्तरराष्ट्रीय संगठन में जिसका भारत सदस्य हो या भारत में स्थापित किसी सोसायटी, कंपनी या व्यक्तियों का निकाय हो में प्रवेश या उसे जारी रखे। इस प्रकार से नागरिक बने हर व्यक्ति को भारत के संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ लेनी चाहिए।

5. क्षेत्र समाविष्टि द्वारा

किसी विदेशी क्षेत्र द्वारा भारत का हिस्सा बनने पर भारत सरकार उस क्षेत्र से सम्बन्धित विशेष व्यक्तियों को भारत का नागरिक घोषित करती है।

नागरिकता की समाप्ति

नागरिकता अधिनियम, 1955 में अधिनियम या संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार प्राप्त नागरिकता खोने के तीन कारण बनाए गए है– त्यागना, बर्खास्तगी या वंचित करना होगा।

1. स्वैच्छिक त्याग– एक भारतीय नागरिक जो पूर्ण आयु, और क्षमता हो। ऐसी घोषणा के उपरन्त वह भारत का नागरिक नहीं रहता। अपनी नागरिकता को त्याग सकता है।

2. बर्खास्तगी के द्वारा– यदि कोई भारतीय नागरिक स्वच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता ग्रहण कर ले तो उसकी भारतीय नागरिकता स्वयं बर्खास्त हो जाएगी। हलांकि यह व्यवस्था तब लागू नहीं होगी जब भारत युद्ध में व्यस्त हो।

3. वंचित करने द्वारा– केन्द्र सरकार द्वारा भारतीय नागरिक को आवश्यक रूप से बर्खास्त करना होगा यदि–

✯ यदि नागरिकता फर्जी तरीके से प्राप्त की गई है।

✯ यदि नागरिक ने संविधान के प्रति अनादर जताया है।

✯ यदि नागरिक ने युद्ध के दौरान शत्रु के साथ गैर–कानूनी रूप से संबंध स्थापित किया हो या उसे कोई राष्ट्रविरोधी सूचना दी हो।

✯ पंजीकरण या प्राकृतिक नागरिकता के पाँच वर्ष के दौरान नागरिक को किसी देश में दो वर्ष की कैद हुई हो।

✯ नागरिक सामान्य रूप से भारत के बाहर सात वर्षों से रह रहा हो।

यद्यपि भारतीय संविधान संघीय है और इसने दोहरी राज पद्धति को (केन्द्र एवं राज्य) को अपनाया है, लेकिन इसमें केवल एकल नागरिकता की व्यवस्था की गई है अर्थात भारतीय नागरिकता। यहाँ राज्यों के लिए कोई पृथक नागरिकता की व्यवस्था नहीं हैं।

vH;kl ç'u

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न–1 नागरिकता का अर्थ एवं महत्व बताइए।

प्रश्न–2 नागरिकता प्राप्ति के संवैधानिक उपबन्ध क्या है?

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न–1 नागरिक समाप्ति के कारण बताइए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न–एकल नागरिकता से क्या तात्पर्य है ?

ewy vf/kdkj

संविधान के भाग 3 में अनुच्छेद 12 से 35 तक मूल अधिकारों का विवरण है। इस संबंध में संविधान निर्माता अमेरिकी संविधान से प्रभावित रहे। संविधान के भाग 3 को ***'भारत का मैग्नाकर्य'*** की संज्ञा दी गई है, जो सर्वथा उचित है। इसमें एक लम्बी एवं विस्तृत सूची में ***'न्यायोचित'*** मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया है। वास्तव में मूल अधिकारों के संबंध में जितना विस्तृत विवरण हमारे संविधान में प्राप्त होता है, उतना विश्व के किसी देश में नहीं मिलता चाहे वह अमेरिका ही क्यों न हो। संविधान द्वारा बिना किसी भेदभाव के हर व्यक्ति के मूल अधिकारों के संबंध में गारंटी दी गई है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए समानता, सम्मान, राष्ट्रहित और राष्ट्रीय एकता को समाहित किया गया है।

मूल अधिकारों का तात्पर्य राजनीतिक लोकतंत्र के आदर्शों की उन्नति से है। ये अधिकार देश में व्यवस्था बनाए रखने एवं राज्य के कठोर नियमों के खिलाफ नागरिकों की आजादी की सूरक्षा करते है। मूल अधिकारों को यह नाम इसलिए दिया गया है, क्योंकि इन्हें संविधान द्वारा गारंटी एवं सुरक्षा प्रदान की गई है, जो राष्ट्र कानून का मूल सिद्धान्त है। ये 'मूल' इसलिए भी हैं क्योंकि ये व्यक्ति के चहुँमुखी विकास (भौतिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक) के लिए आवश्यक है।

भारतीय संविधान में भाग–3 द्वारा नागरिकों को 7 मूल अधिकार प्रदान किए गए थे, किन्तु 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में समाप्त कर दिया गया है।

अब भारतीय नागरिकों को 6 मूल अधिकार प्राप्त है। ये अधिकार निम्नलिखित है–

1. समानता का अधिकार, 2. स्वतन्त्रता का अधिकार, 3. शोषण के विरूद्ध अधिकार, 4. धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार, 5. संस्कृति तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार, 6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

1. समानता का अधिकार

समानता के अधिकार का अर्थ है संविधान की दृष्टि में सभी नागरिक समान है। राज्य किसी के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करता। समानता के अधिकार का वर्णन अनुच्छेद 14 से 18 में किया गया है। समानता के मूल अधिकार में निम्नलिखित अधिकार होते हैं–

(i) विधि के समक्ष समानता– अनुच्छेद 14 के अनुसार कानून के सम्मुख सब समान है।

(ii) भेदभाव की समाप्ति– अनुच्छेद 15 के अनुसार भेदभाव की समाप्ति कर दी गई है। अब धर्म, वर्ण, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर राज्य किसी के साथ भेदभाव का व्यवहार नहीं कर सकता।

(iii) सरकारी नौकरियों में समान अवसर– अनुच्छेद 16 में सरकारी नौकरियों में समस्त नागरिकों को समान अवसर प्राप्त है। धर्म तथा जाति आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता।

(iv) अस्पृश्यता (छुआछूत) का अन्तर– भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 के अनुसार छूआछूत का अन्त कर दिया गया है। यदि कोई व्यक्ति किसी के साथ कोई भेदभाव करता है अथवा उसके किसी कार्य में बाधा डालता है तो उसे सरकार द्वारा दण्ड दिया जाएगा।

उपाधियों का अन्त

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 18 के अनुसार शिक्षण तथा सेना सम्बन्धी उपाधियों को छोड़कर अन्य सामाजिक भेदभाव पैदा करने वाली सभी उपाधियों का अन्त कर दिया गया है। यह व्यवस्था की गई है कि भारत का कोई भी नागरिक राष्ट्रपति की आज्ञा के बिना विदेशी राज्य से कोई भी उपाधि स्वीकार नहीं करेगा। नवीन संविधान में अन्तर्गत भारत राज्य के प्रति की गई सेवाओं के उपलक्ष्य में भारत रत्न, पदम् विभूषण, पद्म भूषण और पद्मश्री उपाधियों की व्यवस्था की गई है।

2. स्वतन्त्रता का अधिकार

भारतीय संविधान में स्वतन्त्रता के अधिकार का बहुत अधिक महत्व है, भारतीय संविधान अनुच्छेद 19 से 22 तक स्वतन्त्रता के अधिकार का वर्णन किया गया है। अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत इस अधिकार में नागरिकों को 6 प्रकार की निम्नलिखित स्वतन्त्रताएँ प्राप्त है–

(i) भाषण तथा विचार अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता

भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक नागरिक को भाषण देने तथा अपने विचार अभिव्यक्त करने स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। प्रेस, आकाशवाणी, दूरदर्शन और विचार अभिव्यक्ति के अन्य साधनों की स्वतन्त्रता भी इसी के अन्तर्गत आती है।

(ii) विधि के समक्ष समानता

समानता के अधिकार का अर्थ है संविधान की दृष्टि में सभी नागरिक समान है। राज्य किसी के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करता। समानता के अधिकार का वर्णन अनुच्छेद 14 से 18 में किया गया है। समानता के मूल अधिकार निम्नलिखित अधिकार होते हैं–

(iii) शांतिपूर्ण तथा बिना शस्त्रों के सभा करने की स्वतन्त्रता

संविधान के अनुसार नागरिकों को शांतिपूर्ण ढंग से और बिना अस्त्र–शस्त्र के सभा या सम्मेलन करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है।

(iv) समुदाय या संघ बनाने की स्वतन्त्रता

संविधान द्वारा नागरिकों को समुदाय या संघ निर्माण करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। कोई भी नागरिक अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी समुदाय का सदस्य हो सकता है।

(v) भ्रमण करने की स्वतन्त्रता

प्रत्येक नागरिक को भारत के किसी भी भाग में बिना आज्ञापत्र के घूमने की स्वतन्त्रता प्राप्त है।

(vi) निवास की स्वतन्त्रता

देश के सभी नागरिकों को अपनी इच्छानुसार भारत के किसी भी भाग में स्थाई अथवा अस्थाई रूप से निवास करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है।

(vii) व्यवसाय की स्वतन्त्रता

प्रत्येक नागरिक को जीविका कमाने के लिए कोई व्यवसाय, व्यापार अथवा करोबार करने का स्वतन्त्रता है। इन 6 स्वतन्त्रताओं के अतिरिक्त भारतीय संविधान द्वारा नागरिकों को सातवीं स्वतन्त्रता 'सम्पत्ति की स्वतन्त्रता' प्रदान की गयी थी लेकिन 44 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा सम्पत्ति की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गई है।

संविधान में व्यवस्था की गई है कि राज्य द्वारा नागरिकों की इन स्वतन्त्रताओं पर सार्वजनिक हित तथा अनुसूचित जातियों और जनजातियों के हित में उचित प्रबन्ध लगाए जा सकते हैं। राज्य किसी व्यवसाय को करने के लिए योग्यताएँ भी निर्धारित कर सकता है। प्रतिबंधों के औचित्य के प्रसंग में विवाद आदि उत्पन्न होने पर इसका निर्णय उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय करेंगे।

सूचना का अधिकार, 2005

भारत एक लोकतान्त्रिक देश है। लोकतन्त्र पूर्ण रूप से जनता की शासन व्यवस्था है जिसमें शासन अपने कार्यों हेतु पूण रूप से जनता के प्रति जवाब देह होता है। शासन का संचालन भी जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों के माध्यम से ही होता है।

सूचना के अधिकार से तात्पर्य उस वैधानिक अधिकार से है जो किसी देश के लोगों को सरकारी कार्यों से सम्बन्धित सूचनाएं प्राप्त करने के अवसर एवं पहुँच प्रदान करता है। इसके द्वारा नागरिकों को सरकार से प्रश्न पूछने व विभिन्न दस्तावेजी सूचनाएं प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता है। इस अधिनियम का उद्देश्य प्रशासन में खुलापन, पारदर्शिता और जवाबदेही लाना है ताकि लोकतन्त्र में नागरिकों को सूचनाओं से वंचित न रखा जाए बल्कि विभिन्न विभागों में सूचना की पारदर्शिता सुनिश्चित की जाए।

सूचना का अधिकार अधिनियम (2005) दिनांक 15 जून, 2005 को पारित हुआ। राष्ट्रपति के अनुबोधन के उपरान्त यह अधिनियम जम्मू–कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में दिनांक 12 अक्टूबर 2005 को लागू हो गया है।

स्वतन्त्रता के अधिकार के अन्तर्गत कुछ और भी व्यवस्थाएँ की गई हैं जो इस प्रकार है–

(i) कानून का उल्लंघन न होन तक दण्ड से स्वतन्त्रता

अनुच्छेद 20 में व्यवस्था की गई है व्यक्ति द्वारा जब तक अपराध के समय में लागू किसी कानून का उल्लंघन न किया जाए। तब तक उसे अपराधी ठहराकर दण्डित नहीं किया जा सकता।

(ii) जीवन और शरीर रक्षा का अधिकार

अनुच्छेद 21 में जीवन और शरीर रक्षा के अधिकार को मान्यता प्रदान की गई है। इसमें कहा गया है किसी व्यक्ति को उसके जीवन तथा शारीरिक स्वाधीनता से 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' को

छोड़कर अन्य किसी प्रकार से वंचित नहीं किया जा सकता। व्यक्ति के इस अधिकार को संक्टकाल की घोषणा होने पर स्थागित या मर्यादित नहीं किया जा सकता है।

(iii) शिक्षा का अधिकार

इसे 86 वें संविधान संशोधन (वर्ष 2002) द्वारा संविधान में जोड़ा गया है। इस अनुच्छेद (अनुच्छेद 21क) में कहा गया है कि राज्य कानून द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा।

(iv) बंदीकरण की अवस्था में अधिकार– (अनुच्छेद 22) द्वारा बंदी बनाए जाने वाले व्यक्ति को कुछ अधिकार प्रदान किए गए हैं। उसे बन्दी बनाए जाने के कारण बतलाए जाएंगे, उसे वकील से परमार्श करने और बचाव के लिए प्रबन्ध करने का अधिकार होगा और उसे बंदी बनाए जाने के बाद 24 घण्टे के अन्दर निकटतम न्यायधीश के सम्मुख उपस्थित किया जाएगा।

3. शोषण के विरूद्ध अधिकार

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23 और 24 में नागरिकों को शोषण के विरूद्ध अधिकार प्रदान किया गया है। इस अधिकार के अन्तर्गत के अन्तर्गत निम्नलिखित व्यवस्थाएँ की गई है।

(i) मनुष्यों के क्रय–विक्रय पर रोक

संविधान के 23 वें अनुच्छेद के द्वारा मानव व्यापार को अवैध घोषित किया गया है। सभी व्यक्तियों, स्त्रियों एवं बालक– बालिकाओं का क्रय–विक्रय अवैध घोषित किया गया है।

(ii) बेगार तथा बलपूर्वक श्रम का अन्त

संविधान के 23 वें अनुच्छेद में लिखा है, ''लोगों से बेगार एवं इसी प्रकार का अन्य कोई ''बलपूर्वक कराया गया श्रम अवैध समझा जाएगा।'' इस आधार पर किसी से बेगार लेना और बलपूर्वक काम लेना मना है।

(iii) कारखानों आदि में बालकों को काम पर लगाने का निषेध

संविधान के 24 वें अनुच्छेद के अन्तर्गत प्रावधान है कि 14 वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने या खान या किसी अन्य घातक कार्य में नहीं लगाया जाएगा।

4. धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार

भारतीय संविधान के 25 से 28 अनुच्छेद में भारतीय नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान किया गया है। भारतीय संविधान द्वारा देश में पंथ–निरपेक्ष राज्य की स्थापना की गई है। इसका अभिप्राय यह है कि राज्य का अपना कोई विशेष धर्म नहीं होगा तथा राज्य की दृष्टि में सभी धर्म समान होंगे। इस अधिकार में निम्नलिखित सम्मिलित हैं

(i) किसी भी धर्म (पंथ) को मानने तथा उसका प्रचार करने की स्वतन्त्रता

संविधान के अनुच्छेद 25 के अनुसार, ''सभी व्यक्तियों को अन्तः कारण की स्वतन्त्रता तथा किसी धर्म को स्वीकार करने, आचरण करने और प्रचार की पूर्ण स्वतन्त्रता है।''

(ii) धार्मिक मामलों का प्रबन्ध करने की स्वतन्त्रता

क. प्रत्येक धर्म के अनुयायियों को यह अधिकार दिया गया है कि वे धार्मिक तथा सेवा सम्बन्धी कार्यों के लिए संरचनाएँ बना सकेंगे तथा उनका संचालन कर सकेंगे।

ख. धार्मिक संस्थाओं की सम्पत्तियों का प्रबन्ध राज्य द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार कर सकेंगे।

ग. अपने धार्मिक मामलों का प्रबंध अपनी इच्छानुसार कर सकेंगे तथा धार्मिक मामलों के प्रबन्ध मे उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता होगी।

घ. धार्मिक कार्यों पर जो धनराशि खर्च होगी वह कर से मुक्त होगी।

ङ. किसी भी सरकारी या सरकारी सहायता या मान्यता प्राप्त स्कूल में किसी विशेष धर्म की शिक्षा को अनिवार्य नहीं किया जाएगा।

5. संस्कृति तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार

भारतीय संविधान की धारा 29 व 30 के अन्तर्गत, समस्त नागरिकों को संस्कृति तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार दिया गया है। इसके अन्तर्गत नागरिकों को निम्नलिखित अधिकार प्रदान किए गए है–

1. अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति को बनाए रखने का अधिकार

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 के अनुसार'', नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति को सुरक्षित रखने का पूर्ण अधिकार है, किसी भी नागरिक को धर्म, वंश, जाति तथा भाषा आदि के आधार पर सरकारी या सरकारी सहायता प्राप्त करने वाली शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश देने से इन्कार नहीं किया जा सकता।

2. अल्पसंख्यकों को अपनी शिक्षण संस्थाएँ खोलने का अधिकार

अनुच्छेद 30 के अनुसार धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करने तथा प्रशासन का अधिकार प्रदान किया गया है। राज्य इस आधार पर शिक्षण संस्थाओं की सहायता देने में कोई भेदभाव नहीं करेगा कि वे धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के अधीन है।

6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार

हमारे मूल अधिकारों में संवैधानिक उपचारों के अधिकार का सबसे अधिक महत्व है। हमारे संविधान ने नागरिकों की रक्षा की समुचित व्यवस्था की है। संविधान की धारा 32 के अन्तर्गत संवैधानिक उपचारों का अधिकार भारत के नागरिकों को प्रदान किया गया है। इसके अनुसार यदि कोई अन्य व्यक्ति अथवा राज्य या सरकार नागरिकों के इन अधिकारों को आघात पहुँचाते हैं अथवा छीनते हैं तो सम्बन्धित व्यक्ति को न्यायालय में जाने का अधिकार हैं और न्यायालय (उच्च न्यायालय अथवा सर्वोच्च न्यायालय) नागरिकों के इन अधिकारों की रक्षा के लिए आवश्यक आदेश जारी कर सकता है। संवैधानिक उपचारों के अधिकार की व्यवस्था के महत्व को स्पष्ट करते हुए डॉ0 अम्बेडकर ने कहा था यह ***अधिकार 'संविधान की हृदय तथा आत्मा है।''*** इनके अन्तर्गत मूल अधिकारों की रक्षा हेतु न्यायालय द्वारा निम्नलिखित पाँच प्रकार के लेख जारी किए जा सकते हैं–

1. बंदी प्रत्यक्षीकरण

यह अवैध रूप से बंदी बनाए गए व्यक्ति की अपील पर जारी किया जाता है। यदि न्यायालय उसके बन्दीकरण को अवैध समझता है तो वह उसको मुक्त करने का आदेश दे सकता है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लिए यह लेख सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इस प्रकार अनुचित एवं गैर कानूनी रूप से बंदी बनाए गए व्यक्ति बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख के आधार पर मुक्त हो जाते हैं।

2. परमादेश– यह वह आदेश है जो किसी भी व्यक्ति अथवा संस्था को अपना कर्तव्य पालन करने के लिए बाध्य कर सकता है। इस प्रकार का लेख उस समय जारी किया जाता हैं जब कोई पदाधिकारी अपने सार्वजनिक कर्त्तव्य का निर्वाह नहीं करता।

3. प्रतिषेध– किसी व्यक्ति अथवा संस्था को किसी कार्य की न करने की आज्ञा प्रतिषेध कहलाती है। इस प्रकार का आज्ञापत्र उच्चतर न्यायालय द्वारा अपने से निम्न न्यायालय के लिए निकाला जाता है।

4. उत्प्रेषण– यह आज्ञापत्र अधिकांशतः किसी विवाद को निम्न न्यायालयों से उच्च न्यायालयों में भेजने के लिए जारी किया जाता है। इसके द्वारा उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालय को आदेश देकर किसी मुकदमें का रिकार्ड मांग सकता है।

5. अधिकार पृच्छा– जब कोई व्यक्ति अवैधानिक रूप से कोई पद प्राप्त कर लेता है तो न्यायालय उसके लिए यह लेख जारी करता है कि वह पद खाली कर दे। इस प्रकार उस व्यक्ति को अवैधानिक रूप से किसी पद या अधिकार का प्रयोग करने से रोका जा सकता है।

सम्पत्ति का अधिकार

सम्पत्ति के अधिकार का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक नागरिक को चल तथा अचल सम्पत्ति पर अपना स्वामित्व रखने का अधिकार है। हमारे संविधान में अनुच्छेद 31 के अन्तर्गत नागरिकों को सम्पत्ति सम्बन्धी निम्न प्रकार के अधिकार प्रदान किए गए थे–

1. कानून के विरूद्ध किसी व्यक्ति से उसकी सम्पत्ति नहीं छीनी जा सकती है।

2. कानून भी किसी व्यक्ति की सम्पत्ति तभी ले सकता है। जबकि यह सार्वजनिक कार्य के लिए आवश्यक हो तथा राज्य व्यक्ति को उस सम्पत्ति के बदले मुआवजा दें।

अप्रैल, 1979 में किए गए 44 वें संविधान द्वारा 'सम्पप्ति' का अधिकार मूल अधिकार नहीं रह गया है। इस संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 31 को समाप्त कर दिया गया है। इस प्रकार इस संशोधन द्वारा सम्पत्ति का अधिकार मूल अधिकार न रहकर साधारण कानूनी अधिकार बन गया है।

मूल अधिकारों का निलम्बन (स्थगन)

मूल अधिकारों को न्यायालय का संरक्षण प्राप्त है तथा संविधान मे इनको पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की गई। संसद तथा राज्यों के विधानमण्डल इस सम्बन्ध में अधिक हस्तक्षेप नहीं कर सकते। यदि अनुचित हस्तक्षेप करने की कोशिश की भी जाती है। तो न्यायालय उचित संरक्षण प्रदान करता है, परन्तु निम्नांकित कुछ विशेष परिस्थितियों में इन मूल अधिकारों को मर्यादित या स्थागित किया जा सकता है। ये परिस्थितियाँ निम्न हैं–

1. संकट काल की घोषणा होने पर

राष्ट्रपति द्वारा संकटकाल की घोषणा कर दिए जाने पर मूल अधिकार स्थागित और मर्यादित कर दिए जाते हैं। इस अवधि में न्यायालय लेख जारी नहीं कर सकते। लेकिन 44 वें संविधान संशोधन के अनुसार व्यक्ति के जीवन रक्षण तथा शारीरिक स्वतन्त्रता के अधिकार (अनुच्छेद 21) को आपातकाल घोषित होने पर स्थागित या मर्यादित नहीं किया जा सकेगा।

2. संविधान में संशोधन द्वारा– मूल अधिकारों के सम्बन्ध में यदि कोई परिवर्तन करना हो तो यह संविधान में संशोधन द्वारा किया जा सकता है। संसद समय–समय पर संशोधन करके मूल अधिकारों को परिस्थिति के अनुसार मर्यादित कर सकती है। उदाहरण 44 वें संविधान संशोधन से पूर्व सम्पत्ति का अधिकार एक मूल अधिकार था, परन्तु अब यह मात्र कानूनी अधिकार रह गया है।

3. सुरक्षा सेवाओं में– सेना अथवा सार्वजनिक शान्ति स्थापित करने वाली सेवाओं में नागरिकों के मूल अधिकार देश हित में संसद द्वारा सीमित किए जा सकते हैं।

ekSfyd dÙkZO;

भारतीय संविधान में नागरिकों के अधिकारों के साथ–साथ कर्त्तव्यों का भी उल्लेख किया गया है। 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के अनुसार संविधान के भाग IV के अन्तर्गत अनुच्छेद 51क जोड़ा गया, जिसमें नागरिकों के मूल कर्तव्यों का उल्लेख है। ये मौलिक कर्त्तव्य इस प्रकार है–

- ✯ संविधान का पालन तथा उसके आदर्शों, संस्थाओं एवं राष्ट्रीय प्रतीकों का सम्मान।
- ✯ राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रेरक आदर्शों का पालन।
- ✯ भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करना और उसे अक्षुण्ण बनाए रखना।
- ✯ देश की रक्षा करना एवं आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करना।
- ✯ समरसता एवं भ्रातृत्व की भावना का विकास तथा स्त्रियों का सम्मान करना।
- ✯ हमारी समन्वित संस्कृति की गौरवशाली परम्परा की रक्षा करना।
- ✯ प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा एवं समस्त प्राणियों के प्रति दया की भावना।
- ✯ वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद एवं ज्ञानार्जन का विकास।
- ✯ सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा एवं हिंसा से दूर रहना।
- ✯ व्यक्तिगत एवं सामूहिक उत्कर्ष का प्रयास।
- ✯ अभिभावकों का यह कर्त्तव्य होगा कि वे 6 से 14 वर्ष तक के अपने बच्चों को शिक्षा का अवसर प्रदान करें। (86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 के द्वारा जोड़ा गया।)

मौलिक कर्त्तव्य का महत्व

संविधान में वर्णित मौलिक कर्त्तव्य सबसे अधिक नैतिक तथा महत्वपूर्ण अंग है। मौलिक कर्त्तव्य ही नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करते हैं। संविधान में नागरिक कर्त्तव्यों के उल्लेख से आशा की गई है कि भारतीय नागरिकों को अपने कर्त्तव्यों का अधिक स्पष्ट रूप से बोध और वह अच्छे रूप से इनका पालन कर सकेंगे। इन कर्त्तव्यों की अवहेलना किए जाने पर अभी तक किसी प्रकार के दण्ड की व्यवस्था नहीं की गई है, किन्तु संसद द्वारा इस सम्बन्ध में उचित दण्ड की व्यवस्था की जा सकती है।

vH;kl ç'u

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान में दिए गए मूल अधिकारों का वर्णन कीजिए।

2. भारतीय संविधान में उल्लिखित समानता और स्वतन्त्रता के मूल अधिकारों की विवेचना कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. मूल अधिकारों का क्या अर्थ है ?

2. शोषण के विरूद्ध अधिकार से आप क्या समझते हैं ?

3. मौलिक कर्त्तव्यों का क्या महत्व हैं ?

अतिलघुउत्तरीय

1. मूल अधिकारों की रक्षा के लिए कौन सा मूल अधिकार प्रदान किया गया है?

2. समानता के अधिकार से क्या तात्पर्य हैं ?

3. 'बन्दी प्रत्यक्षीकरण' लेख का क्या अर्थ हैं ?

4. नीति निदेशक तत्वों का वास्तविक उद्देश्य क्या हैं ?

uhfr funs'kd rRo

राज्य के नीति निदेशक तत्वों का भारतीय संविधान में विशेष महत्व है। इसका उल्लेख भारतीय संविधान के चौथे अध्याय में किया गया है। राज्य के नीति निदेशक तत्वों का अर्थ है 'वे तत्व अर्थात सिद्धान्त जो कि राज्य की नीति का निर्देशन करते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जिन सिद्धान्तों को राज्य द्वारा अपनी शासन की नीति का आधार बनाया जाता है वे ही राज्य के नीति निदेशक तत्व कहे जाते हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद–37 में लिखा है, ''राज्य के नीति निदेशक तत्वों को किसी न्यायालय द्वारा बाध्यता नहीं दी जा सकेगी, किन्तु कानून निर्माण में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्त्तव्य होगा।''

''राज्य के नीति निदेशक तत्वों का उद्देश्य जनकल्याण को प्रोत्साहित करने वाली सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है''–डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद

नीति निदेशक तत्व

संविधान में जो नीति निदेशक तत्व दिए गए हैं, उनका अध्ययन निम्न वर्गीकरण के आधार पर किया जा सकता है।

1. आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी तत्व

आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी नीति निदेशक तत्वों का उद्देश्य लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। इन सिद्धान्तों में आर्थिक सुरक्षा तथा आर्थिक न्याय की व्यवस्था करने का आदेश दिया गया है। आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी प्रमुख तत्व निम्नलिखित है–

- ✯ सभी नागरिकों को समान रूप से विकास करने के लिए पूर्ण अवसर प्रदान किया जाएगा।
- ✯ पुरुषों तथा स्त्रियों को समान कार्य के समान वेतन दिया जाएगा।
- ✯ शैशव तथा किशोरावस्था का शोषण नहीं किया जाएगा।
- ✯ न्यायपूर्ण आर्थिक व्यवस्था की स्थापना का प्रयत्न किया जाएगा।
- ✯ सभी स्त्री–पुरुषों को समान रूप से जीविका प्राप्त करने की सुविधा प्रदान की जाएगी।
- ✯ नागरिकों के शोषण का अन्त किया जाएगा।
- ✯ मजदूरों के लिए काम की न्यायोचित परिस्थितियां पैदा की जाएंगी और उनके हितों की रक्षा की जाएगी।
- ✯ राज्य सभी नागरिकों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करेगा।

2. सामाजिक प्रगति सम्बन्धी तत्व

- स्वास्थ्य के लिए हानिकारक मादक पदार्थों पर राज्य प्रतिबन्ध लगाएगा।
- अल्पसंख्यकों एवं पिछड़े वर्गों हेतु राज्य विशेष व्यवस्था करेगा।
- राज्य चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध करेगा।
- जनजातियों, अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े वर्गों के आर्थिक एवं सामाजिक अन्याय तथा शोषण से राज्य उनकी रक्षा करेगा।
- राज्य मनोरंजन के साधनों की व्यवस्था करेगा।

3. शिक्षा, स्वास्थ्य एवं संस्कृति की सुरक्षा अथवा विकास सम्बन्धी तत्व

नागरिकों का अधिक से अधिक हित करने के लिए शिक्षा एवं सुरक्षा सम्बन्धी तत्वों का संविधान में समावेश किया गया है। ये तत्व निम्नलिखित है–

- राज्य छः वर्ष तक के बच्चो के लिए शिक्षा तथा स्वास्थ्य प्रबन्ध करेगा।
- संविधान के 46 वें अनुच्छेद में लिख है कि दलित एवं पिछड़े वर्ग का शैक्षिक उत्थान करना राज्य का कर्तव्य होगा।
- राज्य प्राचीन स्मारकों, ऐतिहासिक स्थान इमारतों तथा कलात्मक वस्तुओं की रक्षा की व्यवस्था करे।

4. न्याय एवं शासन सुधार सम्बन्धी तत्व

नागरिकों को न्याय दिलाने की दृष्टि से तथा शासन को सही प्रकार से चलाने के लिए राज्य के नीति निदेशक तत्वों के निम्नलिखित व्यवस्थाएं की गई हैं–

1. राज्य को चाहिए कि वह ग्राम पंचायतों का गठन करे।
2. राज्य को समस्त नागरिकों के समान आचार संहिता की व्यवस्था करनी चाहिए।
3. न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक करे।

5. अन्तरराष्ट्रीय शांति एवं सुरक्ष सम्बन्धी तत्व

राज्य के नीति निदेशक तत्वों में अन्तरराष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा सम्बन्धी तत्वों का विशेष महत्व है। राज्य को यह निर्देश हैं कि वह निम्नलिखित व्यवस्था करें–

1. राज्य विभिन्न राष्ट्रों के बीच शांतिपूर्ण और सम्मानपूर्ण सम्बन्धी को बनाए रखने का प्रयत्न करें।
2. अन्तरराष्ट्रीय शानित एवं सुरक्षा के उपाय करें।
3. अन्तरराष्ट्रीय सन्धियों तथा कानूनों का पालन करें।
4. अन्तरराष्ट्रीय विवादों का निबटारा समझौतों द्वारा करें।

कुछ नए नीति निदेशक तत्व

संविधान के 42वें संशोधन द्वारा कुछ नीति निदेशक तत्व जोड़े गए हैं जो निम्नलिखित है–

1. निर्धनों को निःशुल्क कानूनी सहायता मिले।

2. बच्चों को स्वतन्त्रता तथा सम्मान के साथ जीने का समान अवसर मिले।

3. उद्योगों के प्रबन्ध आदि में श्रमिकों के सुझावों को महत्व दिया जाए। प्रबन्ध में उनकी भी भागीदारी हो।

राज्य के नीति निदेशक तत्वों की आलोचना

भारतीय संविधान में राज्य के नीति निदेशक तत्वों का बहुत अधिक महत्व है। लेकिन इन तत्वों को कानूनी शक्ति प्राप्त नहीं है और इस कारण इन तत्वों की आलोचना की गई है।

नीति निदेशक तत्वों का महत्व

भारतीय संविधान में वर्णित नीति निदेशक तत्वों की कटु आलोचना की जाती है, लेकिन फिर भी न्यायाधीशों तथा विद्वानों ने इनके महत्व को स्वीकार किया है। इन सिद्धान्तों या तत्वों के महत्व को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता हैं।

1. लोक कल्याण कारी राज्य की स्थापना

राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना करते है तथा आदर्श राज्य की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं।

2. शासन का पथप्रदर्शन

भारतीय संविधान द्वारा स्थापित लोकतान्त्रिक व्यवस्था में समय–समय पर अलग–अलग राजनीतिक दलों को शासन शक्ति प्राप्त होगी। शासन करने वाले राजनीतिक दल की चाहे जो भी नीति हो, उसे इन निदेशक तत्वों का सम्मान करना ही होगा। इस प्रकार निदेशक तत्व शासन का मार्ग निश्चित करेंगे।

3. निदेशक तत्वों के पीछे जनमत की शक्ति

निदेशक तत्वों को न्यायालय द्वारा क्रियान्वित नहीं किया जा सकता, लेकिन इनके पीछे जनमत की शक्ति होती है, जो लोकतन्त्र का सबसे बड़ा न्यायालय है। यदि कोई सरकार निदेशक तत्वों का उल्लंघन करती है तो उसे व्यवस्थापिका में भारी विरोध का सामना करना होगा तथा चुनाव के समय निर्वाचकों को जवाब देना होगा।

4. मूल अधिकारों के पूरक

ये तत्व मूल अधिकारों के पूरक है क्योंकि इन तत्वों की क्रियान्विति पर ही मूल अधिकारों का उपभोग सम्भव है।

मूल अधिकारों और नीति निदेशक तत्वों में अन्तर

भारतीय संविधान में मूल अधिकारों तथा राज्य के नीति निदेशक तत्वों का समावेश किया गया है। इन दोनों का उद्देश्य भारत की उन्नति करना तथा भारतीय नागरिकों को विकास के अधिकतम अवसर प्रदान करना है। इस दृष्टि से मूल अधिकार यदि साध्य हैं तो राज्य के नीति निदेशक तत्व साधन, लेकिन दोनों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी अग्रलिखित प्रमुख अन्तर है–

क्र.सं.	मूल अधिकार	राज्य के नीति निदेशक तत्व
1	मूल अधिकार नागरिकों की वैधानिक मांग है। इनको न्यायालय का संरक्षण प्राप्त है। अगर किसी व्यकित के अधिकार का अतिक्रमण होता है तो वह व्यक्ति न्यायालय की शरण ले सकता है।	नीति निदेशक सिद्धान्तों के पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है नीति निदेशक तत्वों को न्यायालय का संरक्षण प्राप्त नहीं है। राज्य द्वारा उल्लंघन होने पर न्यायालय मे चुनौती नहीं दी जा सकती।
2	मूल अधिकारों का विषय व्यक्ति हैं इसका सम्बन्ध व्यक्ति के विकास से है।	नीति निदेशक तत्वों का विषय राज्य है तथा इनका लक्ष्य सामाजिक कल्याण है।
3	मूल अधिकारों को कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में स्थगित या निलम्बित किया जा सकता है।	राज्य के नीति निदेशक तत्वों को स्थागित या निलम्बित नहीं किया जा सकता है।
4	मूल अधिकार राजनीतिक स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं।	नीति निदेशक तत्व आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं।
5	मूल अधिकारों की प्रकृति नकारात्मक हैं	नीति निदेशक तत्वों की प्रकृति सकारात्मक है।

vH;kl ç'u

दीर्घ उत्तीरय प्रश्न

प्रश्न–1 भारतीय संविधान में दिए गए राज्य के नीति निदेशक तत्वों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न–2 राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों का क्या महत्व है ? नीति निदेशक सिद्धान्तों और मूल अधिकारों में अन्तर बताइए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न–3 नीति निदेशक सिद्धान्तों या तत्वों का क्या अर्थ हैं ?

प्रश्न–4 राज्य के नीति निदेशक तत्वों में से किन्ही दो का उल्लेख कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न–5 मूल अधिकार या नीति निदेशक तत्वों में कोई एक अन्तर बताइए।

प्रश्न–6 राज्य के नीति निदेशक तत्वों की उपयोगिता अथवा महत्व एक वाक्य में लिखिए।

प्रश्न–7 किन्हीं दो नीति निदेशक तत्वों के नाम बताइए।

miHkksDrk tkx:drk

उपभोक्ता शोषण के प्रकार, अधिकार और कर्तव्य उपभोक्ता सुरक्षा के उपाय उपभोक्ता जागरूकता को जानने से पहले यह जरूरी है कि उपभोक्ता का अर्थ क्या है? कोई भी व्यक्ति दो प्रकार से उपभोक्ता हो सकता है–

1. माल का उपभोक्ता (Consumer of goods) 2. सेवाओं का उपभोक्ता (Consumer of service)

जब कोई व्यक्ति कोई माल (सामान) खरीदता है जैसे कि पंखा, फ्रिज, कार टी0वी अथवा कोई अन्य वस्तु, तो वह उसका उपभोक्ता हो सकता है।

इसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति कोई सेवा या सेवाएं लेता है तो वह उपभोक्ता की श्रेणी में आता है। जैसे कि यदि कोई बैंक में खाता खोल कर बैंक की सेवाएं प्राप्त करे या अपनी सम्पति का बीमा कराये, या किसी वाहक द्वारा अपना माल (Geods) एक स्थान से दुसरे स्थान पर भेजे, या किसी वकील या डॉक्टर की सेवांए प्राप्त करें तो वह उन सेवाओं का उपभोक्ता कहलायेगा।

यदि खरीदे गये सामान में कुछ खराबी है। (defective) जैसे फ्रिज ठीक काम नहीं करता या कार की मशीन में कोई खराबी हो, टी0वी0 में खराबी यदि तो यह एक उपभोक्ता का विवाद बन सकता है। इसी प्रकार यदि प्रदान की गई सेवा में कोई कमी (deficiency in service) है तो भी उपयोग्ता को उसके लिए उपचार प्राप्त है। जैसे– यदि बीमाकर्त्ता बीमा की शर्तों के अनुसार बीमा राशि प्रदान नहीं करता या बिना औचित्य के ग्राहक के चेक का अनादर (dishonor) करता है, या टेलीफोन विभाग किसी फोन का अनुचित बिल भेज देता है या रेलगाड़ी में उचित सुरक्षा व्यवस्था के अभाव के कारण किसी यात्री की मृत्यु हो जाती है ऐसी स्थितियों में सेवा की कमी मानी जाती है।

क्रय की गई किसी वस्तु में खराबी या प्रदान की गई किसी सेवा में कमीं के होने पर उपभोग्ता संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित विशेष न्यायालयों अर्थात उपभोक्ता विवाद प्रतितोष अभिकरणों (Consuner dispute reobuessal agencies) में अपना परिषद या शिकायत (complaint) दायर कर सकता है? उपभोक्ता संरक्षण या अधिकार के अन्तर्गत विशेष अभिकरण अर्थात न्यायालय स्थापित किए गए है। यह अभिकरण विवाद के निपटारे के लिए संक्षिप्त प्रक्रिया का विकास कर सकते है ताकि परिवाद का निपटारा कम समय में किया जा सके। ऐसे दावे के लिए कोई कोर्ट फीस भी नहीं देनी पड़ती और न ही किसी वकील द्वारा वाद लाना आवश्यक है।

उपभोक्ता विवाद प्रतितोष अभिकरण के प्रकार (Consemur dispute redressal Agencics)
वह जिला फोरम (District form)
राज्य आयोग (State commission)
राष्ट्रीय आयोग (National commission)
प्रश्न– उपभोक्ता का क्या अर्थ है ?
प्रश्न– उपभोक्ता शोषण से आप क्या समझते हैं?
प्रश्न– उपभोक्ता अपनी शिकायतें कहाँ पर कर सकते हैं ?

Hkkjrh; vFkZO;oLFkk esa d`f"k dk ;ksxnku

मुख्य बिन्दु

✯ भारतीय कृषि की प्रमुख विशेषताएँ व महत्व की जानकारी देना।
✯ भारतीय कृषि में उत्पादकता
✯ हरित क्रान्ति व इसका प्रभाव
✯ आर्थिक विकास
✯ कृषि विकास हेतु सरकार द्वारा अपनाएँ गये उपाय
✯ भारतीय कृषि नीति

Hkkjrh; vFkZO;oLFkk esa d`f"k dk ;ksxnku

किसी देश के आर्थिक विकास में कृषि क्षेत्र का बहुत अधिक महत्व होता है किसी भी देश के आर्थिक विकास में कृषि छः प्रकार से योगदान कर सकता है–

1. खाद्यान्न तथा कच्चा माल पैदा करके
2. औद्योगिक क्षेत्र द्वारा उत्पादित उपभोग तथा पूँजीगत वस्तुओं के विक्रय के लिए बाजार पैदा करके।
3. औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम उपलब्ध कराके।
4. निर्यात योग आधिक सृजन के द्वारा विदेशी मुद्रा अर्जित करके।
5. बढ़ते हुए बेरोजगारों के लिए शरणार्थी गृह (Rescue home) के रूप में कार्य करके।
6. बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य सुरक्षा प्रदान करके।

भारतीय राष्ट्रीय उत्पाद का बहुत बड़ा भाग कृषि क्षेत्र से प्राप्त होता है। आर्थिक समीक्षा 2012–13 के अनुसार हमारे सकल घरेलू उत्पादन में (2004–2005 कीमत पर) इसका योगदान लगभग 14.1% था, तथा 2001 जनगणना के अनुसार कुल रोजगार में कृषि क्षेत्र का हिस्सा 58.2% था । 50 के दशक में राष्ट्रीय उत्पादन का लगभग 50 प्रतिशत कृषि से प्राप्त साठ से सत्तर के दशक में यद्यपि इसमें गिरावट आयी, 44 प्रतिशत से ऊपर कृषि क्षेत्र से प्राप्त हुआ। अस्सी तथा नब्बे के दशक में अंशदान मे और कमी आयी। इस समय, 2012–2013 आर्थिक सामीक्षा के अनुसार 2011–12 में राष्ट्रीय आय में इसका हिस्सा लगभग 14.1% है।

भारतीय कृषि की विशेषताएं

भारत में उगायी जाने वाली फसलों को तीन वर्गों में रख सकते है, रबी, खरीफ तथा जायद। वैसे इस आधार पर वर्तमान में फसलों को कठोर रूप में वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है क्योंकि सिंचाई की उपलब्धता के बढ़ने तथा टेक्नालॉजिकल प्रगति के कारण बहुत सी फसलें ऐसी विकसित हो गयी हैं जो रबी तथा खरीफ दोनों में आ जाती है। खरीफ की फसल जुलाई में बोयी जाती है और सितम्बर के अन्त तथा अक्टूबर में काटी जाती है। खरीफ की फसल के अन्तर्गत चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का, कपास, तिल, गन्ना, सोयाबीन, मूंगफली की फसलें प्रमुख है। रबी की फसल अक्टूबर में बोयी जाती है और अप्रैल में काटी जाती है। गेहूँ, जौ, चना, ज्वार, मटर, सरसों इत्यादि रबी दोनों में आने वाली फसलें है। चावल खरीफ तथा रबी दोनों में आने वाली फसल है। इसी प्रकार तिलहन भी रबी तथा खरीफ दोनों में होने वाली फसल है पर मुख्यतया रबी फसल है। जायद फसल कुछ स्थानों पर होती है जिसकी अवधि मार्च से जून होती है, इसके अन्तर्गत खरबूज, तरबूज, ककड़ी एवं साब्जियाँ आती है। बहुत सी ऐसी फसलें होती है जो बोने की दृष्टि से रबी के अन्तर्गत आती है पर अन्तिम रूप से कताई के कारण खरीफ में आती है इसलिए इन्हें हम इन दोनों किसी वर्ग में नहीं रखते है बल्कि

अलग से दिखाते है जैसे– गन्ना 20.12.2013 के दौरान 631.67 लाख हेक्टयर रबी फसल का क्षेत्रफल था जो 2011–12 में 629.86 लाख हेक्टेयर था।

प्रयोग या उपादेयत्ता के आधार पर फसलों का बटँवारा इस आधार पर फसलों को दे वर्गों में रखा जा सकता है– खाद्यान्न (Non food grains) या खाद्य फसल तथा अखाद्याय फसल या नकदी फसल।

आर्थिक समीक्षा (2012–13) इस आधार पर भारत की प्रमुख फसलों को निम्न प्रकार देता है–

1. खाद्यान्न (या खाद्य फसल)

(क) चावल

गेहूँ

मक्का

मोटे अनाज

(ख) दालें

2. गैर खाद्यान्न (नकदी फसलें)

(क) तिलहन

मूँगफली

रेपसीड और सरसों

(ख) रेशेदार (fibrous)

कपास

जूट

मेस्ता

(ग) बगानी फसलें

चाय

कॉफी

रबड़

(घ) अन्य

गन्ना

तम्बाकू

आलू

फसलों के इस विभाजन को खाद्यान्न फसले तथा व्यापारिक या नकदी फसल वर्गीकरण भी कह सकते है। क्रापिंग पैटर्न से अभिप्राय किसी समय बिन्दु पर विभिन्न फसलों के क्षेत्रफल के अनुपात, एक समयावधि में इनके वितरण में होने वाले बदलाव तथा इस वितरण में होने वाले बदलाव के कारकों से है।

भारत में क्रापिंग पैटर्न अधिकांशतया प्राकृतिक दशाओं जैसे– मृदा की स्थिति तथा उसका गुण, जलवायु, वर्षा की मात्रा आदि द्वारा प्रभावित होता है, यद्यपि टेक्नालॉजिक्ल कारक भी इसको बहुत अधिक प्रभावित करते है। इसलिए क्रापिंग पैटर्न एक कृषि क्षेत्र से दूसरे कृषि क्षेत्र में भिन्न होता है। प्रत्येक कृषि क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली कुछ पूर्व निश्चित फसलें होती है। एक कृषि क्षेत्र से आशय एक ऐसे क्षेत्र से है जिसमें मिट्टी के प्रकार, जलवायु की दशा, वर्षा की मात्रा, पैदा की जाने वाली फसलों आदि की दृष्टि से समानता होती है। भारत एक बहुत बड़ा देश है जिसमें भौगोलिक दशाओं में बहुत भिन्नता मिलती है। इसके कारण कृषि में बहुत अधिक क्षेत्रीय विषमता पायी जाती है। इसीलिए कौंसिल आफ एग्रीकल्चर रिसर्च भारत को निम्नांकित छः क्षेत्रों में विभाजित करता है–

1. चावल–जूट तथा चाय क्षेत्र (पूर्वी भारत)
2. गेहूँ क्षेत्र– उत्तरी भारत (पंजाब, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश)
3. कपास क्षेत्र (गुजरात, महाराष्ट्र क्षेत्र)
4. मेज तथा मोटा अनाज– (महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश क्षेत्र)
5. मिलेट तथा तिलहन क्षेत्र– (हिमांचल प्रदेश)

भारतीय कृषि हरित क्रान्ति

कृषि में क्रान्ति की शुरूआत 1960 में नार्मन ई0 बोरलांग द्वारा मेक्सिकों में प्रयोग में लायी गयी गेहूँ की उन्नत प्रजाति के बीच के साथ होती है भारत में हरित क्रान्ति 'उन्नत बीज, उर्वरक तथा सिंचाई' के संयोग की परिणाम थी इसलिए उन्नत बीच–उर्वरक तथा सिंचाई क्रान्ति कहना गलत नहीं होगा। इस प्रकार नयी कृषि रणनीति उन्नत प्रजातीय बीज या किसी एक संस्था या नीति से सम्बद्ध नहीं थी, यह नीतियों, उपायों तथा व्यवहारों का एक पैकेज है जो पूरी कृषि अर्थव्यवस्था से सम्बंधित था और जिसके परिणाम स्वरूप कृषि में स्पष्ट परिवर्तन दिखायी दिया, जिसे हम हरित क्राति कहते हैं। यह रणनीति या हरित क्रान्ति के प्रथम चरण में तो प्रभाव गेहूँ तथा सीमित रहा पर दूसरे चरण में धीरे–धीरे करके अन्य फसलों जैसे धान (चावाल) ज्यार, बाजरा, जूट, कपास तथा गन्ना में भी दिखायी पड़ा।

भारत में हुयी हरित क्रान्ति के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार है

- ✯ भारत में हरित क्रान्ति का प्रारम्भ 1966 माना जाता है।
- ✯ कृषि उत्पादन में सामान्य तथा गेहूँ तथा चावल के उत्पादन में विशिष्ट रूप से वृद्धि हुई है।
- ✯ हरित क्रान्ति का प्रभाव गेहूँ पर अधिक केन्द्रित रहा।

आज कृषि क्षेत्र में एक दूसरी हरित क्रान्ति की आवश्यकता है। जैसी आवश्यकता कुछ वर्षों पहले थी। 60 के दशक के प्रारम्भ में व्रीव जनसंख्या वृद्धि तथा कृषि क्षेत्र की अल्प उत्पादकता के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था भुखमरी की स्थिति में थी, पूरी अर्थव्यवस्था खाद्यान्नों की भारी कमी से परेशान थे? 60 के दशक के मध्य जो हरित क्रान्ति आयी, उसके परिणाम स्वरूप खाद्यान्नों का उत्पादन आज तिगुना से भी अधिक है तथा आज भारत खाद्यान्नों में पूर्णतया आत्म निर्भर है। खाद्यान्नों का उत्पादन जो 1960–61 में 82 मिलियन टन था आज 2010–11 में 232.1 मिलियन टन है, गेहूँ का उत्पादन जो 1960–61 में केवल ''मिलियन था आज 2010–11 में 81.5 मिलियन टन तथा इसी अवधि में चावल का उत्पादन जो 1960–61 में 34.6 मिलियन टन था आज 94 मिलियन टन है। पर धीरे–धीरे इस क्रान्ति का प्रभाव कम हो रहा है। कृषि उत्पादन की गिरती वृद्धि दर अर्थव्यवस्था में एक गम्भीर समस्या बनकर उभरी है। आज फिर कृषि क्षेत्र के सामने वैसी ही चुनौती है। अर्थव्यवस्था में व्रीव आर्थिक वृद्धिदर तथा परिणाम स्वस्थ लोगों की आय तथा क्रयशान्ति में वृद्धिदर तथा बढ़ती हुयी जनसंख्या के कारण कृषि क्षेत्र से अपेक्षा बढ़ी है क्योंकि कृषि क्षेत्र से प्राप्त खाद्यानों की पूर्ति में बहुत अधिक वृद्धि के बावजूद भी आज हम खाद्यानों की कमी से प्रभावित है इधर हाल में तेजी से बढ़ती हुयी खाद्य–स्फीति इसकी ओर स्पष्ट संकेत देती है। प्रक्षेपणों सें इसका संकेत मिलता है कि भारतीय जनसंख्या 2050 तक 11.6 बिलियन हो जायेगी परिणाम स्वरूप खाद्यान्नों की मांग चालू मांग की दुगुनी होकर 450 मिलियन टन की हो जायेगी। इतना ही नहीं सरकार द्वारा प्रस्तावित खाद्य सुरक्षा बिल के कारण भाविष्य में खाद्यान्नों की मांग में तेजी से वृद्धि होगा। पर कृषि के निराशजनक निष्पादन कृषि क्षेत्र की घटती हुयी या लगभग स्थिर उत्पादकता, कृषि क्षेत्र की घटती हुयी या लगभग स्थिर, उत्पादकता, कृषि क्षेत्र में गिरते हुए सार्वजनिक विनियोग, वर्तमान कृषि ढाँचा आदि ने खाद्यान्नों की पूर्ति पक्ष को अत्यन्त कमजोर कर दिया है। इसलिए कृषि क्षेत्र में वैसी ही एक अन्य क्रान्ति की आवश्यकता है।

25 जनवरी 2006 को एम0एम0 स्वामीनाथन ने कोयेम्बट्र में हरित क्रांति के बाद अब सतत क्रान्ति की बात कही जिसे डॉ0 मनमोहन सिंह ने द्वितीय हरित क्रान्ति के रूप में देखा जिससे कि देश का वार्षिक खाद्यान्न उत्पादन 210 मिलियन टन के वर्तमान स्तर से दो गुना होकर 420 मिलियन टन हो सके। उल्लेखनीय है कि सबसे पहले ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम ने 93 वें (2006) विज्ञान कांग्रेस में द्वितीय हरित क्रान्ति की बात की। इसके लिए स्वामीनाथन ने सर्वोत्कृष्ट उत्पादन के तकनीकों के प्रयोग, आर्गोनिक फार्मिग को बढ़ावा देना तथा समुन्नत करना, मिट्टी को अधिक स्वस्थ्य तथा उर्वरक बनाने रेनवाटर हार्वेस्टिंग को अनिवार्य बनाने तथा किसानों को उचित मूल्य पर साख व्यवस्था कराने पर बल दिया है।

भारत में कृषि भूमि की उत्पादकता अन्य देशों की तुलना में कम है तथा अपनी ही आपेछित उत्पादन क्षमता को प्राप्त नहीं कर सकी है। चावल, गेहूँ तथा गन्ना के सम्बंध में हम निम्नलिखित देशों की उत्पादकता निम्नलिखित है।

गेहूँ	(कि0ग्राम– प्रति हेक्टेयर)
भारत	3140 (2011–12)
फ्रान्स	6256
यू0के0	7225
चीन	4608
आस्ट्रेलिया	1056
चावल	
भारत	2372 (2011–12)
यू0एस0ए0	8092
जापान	654
चीन	6422

अब हम एक–एक उन आगतों को जानेगे जो कृषि क्षेत्र में प्रयुक्त होते है, जो कृषि में उत्पादन, उत्पादिता तथा वृद्धि देर को प्रभावित करते है तथा अवरोधक कारक को रूप में देखे जाते है–

1. बीज

कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि के लिए बीज सबसे प्रमुख आगत है। विभिन्न फसलों के प्रमाणित बीजों के उत्पादन तथा वितरण को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार ने 1963 में राष्ट्रीय बीज निगम (National seed corporation- NSC) तथा 1969 में स्टेट फामर्स कारपोरेशन आफ इण्डिया की स्थापना की।

(क) प्रजनन बीज (Breeder seed) बीज उत्पादन की कड़ी में प्रजनक बीज पहला चरण है। इस बीज का उत्पादन इन्डियन कौंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च (ICAR) तथा भारतीय कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा होता है। कृषि मंत्रालय का बीज विभाग मांग पक्ष का समन्वयक करता है तो (ICAR) बीज के उत्पादन को संगठित करता है।

(ख) फाउन्डेशन बीज (Foundation Seed) इस बीज का उत्पादन प्रजनक बीजों से किया जाता है। इस बीज का उत्पादन राष्ट्रीय बीज निगम (NSC) स्टेट फार्म कारपोरेशन ऑफ इंडिया (SFCI) कृषि विश्वविद्यालयों तथा उन राज्यों में जहाँ बीज निगम नहीं है, वहाँ कृषि विभाग द्वारा किया जाता है।

(ग) प्रमाणित बीज (Certified seed) प्रमाणित बीज फाउण्डेशन बीज के प्राजेनी (Progeny) होते हैं। क्वालिटी बीज वे होते है, जो प्रमाणित बीज के स्टैंडर्ड के होते है पर इनका उत्पादन फाउण्डेशन बीजों द्वारा नहीं किया जाता है।

(घ) जेनेटिकली मॉडिफाइड बीज (G.M.Seed) जब किसी पौधे के प्राकृतिक जीन में कृत्रिम उपायों द्वारा उसकी मूल संरचना में परिवर्तन कर दिया जाता है तो ऐसे पौधे से प्राप्त बीज को जी0एम0 बीज कहते है। इस मुख्य उद्देश्य फसलों को बीमारियों एवं कीटों के द्वारा फसल को होने वाले नुकसान से बचाना रासायनिक तत्वों के इस्तेमाल में कमी लाने और फसली पौधों में वातावरण के प्रति दबाव सहने की क्षमता बढ़ाने में मद्द पहुँचाना है। इससे अनुत्पादक भूमि पर भी खेती संभव होती है तथा फसलों की गुणवत्ता में वृद्धि की जा सकती है। इन बीजों तथा फसलों के साथ कुछ जोखिमें तथा धनियाँ भी जुड़ी है। आवश्यकता इस बात की है कि विश्वसनीय तथा पारदर्शी ढंग से इनके साथ जुड़ी हुयी जोखिमों तथा लाभों का परीक्षण किया जाए।

हरितक्रान्ति के दोष

हरितक्रान्ति के दोष निम्नलिखित है–

1. कुछ फसलों तक सीमित

हरितक्रान्ति को मुख्य दोष इसका प्रभाव कुछ ही फसलों (गेहूँ, चावल, मक्का ज्वार तथा बाजरा) तक सीमित होना था। सभी फसलों को इसका लाभ नहीं मिल सका। व्यावसायिक फसलें इससे अछूती रही थी।

2. कुछ राज्यों तक सीमित

हरितक्रान्ति का क्षेत्र केवल आन्धुप्रदेश, उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु तक ही सीमित रहा, अतः इससे देश का सन्तुलित विकास नहीं हो पाया। अन्य प्रदेश इससे वंछित रह गये, जिससे प्रादेशिक विषमताएँ बढ़ गयीं।

3. बड़े कृषकों को लाभ

हरितक्रान्ति से जरूरतमन्द छोटे किसानों को लाभ नहीं मिला। यह बड़े किसानों को हितैषी बनकर रह गयी। परिणामस्वरूप वे और अधिक धनी हो गये।

4. बेरोजगारी

मशीनों का प्रयोग होने से कृषि क्षेत्र में बेरोजगारी बढ़ गई।

5. लक्ष्य से कम उत्पादन

हरितक्रान्ति उत्पादन के पूर्व लक्ष्यों को पाने में विफल रही है।

6. पर्यावरण पर दुष्प्रभाव

हरितक्रान्ति के पर्यावरणीय दुष्प्रभावों के कारण पारिस्थितिक सन्तुलन बिगड़ रहा है। उर्वरकों, कीटनाशकों तथा सिंचाई के अव्यधिक प्रयोग के कारण मिट्टियों पर बुरा प्रभाव पड़ा ही है, भूमिगत जल तथा वायुमण्डलीय प्रदूषण भी हुआ है।

कृषि में निवेश तथा पूँजी निर्माण

अन्य व्यापारिक इकाइयों की ही तरह कृषि में होने वाले निवेश– सार्वजनिक निवेश तथा निजी विवेश के ऊपर निर्भर करता है। कृषि क्षेत्र में विनियोग की कमी ग्रामीण अवस्थापना जैसे ग्रामीण सड़कें, सिंचाई, ऊर्जा, बाजार, कोल्ड स्टोरेज आदि के विकास में कमी लायेगी। इसके परिणाम स्वरूप कृषि क्षेत्र की उत्पादिता तथा उत्पादन प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है विनियोग तथा कृषि विकास की बीच उच्च सहसम्बंध पूर्वनिर्धारित है। एफ0ए0ओ0 के अनुमान के अनुसार वैश्विक कृषि उत्पादन में बढ़ती हुई खाद्य मांग को पूरा करने के लिए 2050 तक 70 प्रतिशत की वृद्धि आवश्यक है, इसके लिए यह आवश्यक है कि कृषि के निवेश में वर्तमान 142 बिलियन डालर से बढ़कर 209 बिलियन डालर हो जाय पर 1970 से वैश्विक स्तर पर कृषि में निवेश निरन्तर गिर रहा है। उल्लेखनीय है भारत में विगत 10 वर्षों में कृषि में सकल पूंजी निर्माण में 8.1 प्रतिशत की वृद्धि हुयी। यह 11वीं योजना में बढ़कर 9.7 प्रतिशत हो गया जो 10 वीं में केवल 2.7 प्रतिशत ही था।

राष्ट्रीय कृषक आयोग, जिसे अधिकांशता एम0एस0 स्वामीनाथन आयोग के नाम से जाना जाता है, ने दिसम्बर 2005 से अक्टूबर 2006 की अवधि में कृषि तथा कृषकों के सम्बन्ध में अव्यत्त ही व्यापक संस्तुतियों के साथ 5 रिपोर्ट सरकार को दी। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्व को महसूस करते उन अवरोधक तत्वों तथा मुद्दों को दृष्टि में रखते हुए जिनके कारण कृषि क्षेत्र का विकास तेज नहीं हो रहा है तथा कृषि पर निर्भर सभी लोगों– सभी प्रकार के कृषकों, ग्रामीण क्षेत्र में रह रहे उस पर निर्भर श्रमिकों तथा कृषि सम्बद्ध क्रियाओं पर निर्भर लोगों की दयनीय स्थिति तथा कृषकों में बढ़ती हुयी आत्महत्या की घटनाओं को दृष्टि में रखते हुए जिनके कारण कृषि क्षेत्र का विकास तेज नहीं हो रहा है तथा कृषि पर निर्भर सभी लोगों सभी प्रकार के कृषकों, ग्रामीण क्षेत्र में रह रहे उस पर निर्भर श्रमिकों तथा कृषि सम्बद्ध क्रियाओं पर निर्भर लोगों की दयनीय स्थिति तथा कृषकों में बढ़ती हुयी आत्महत्या की घटनाओं को दृष्टि में रखते हुए तथा यह भी देखते हुए कि राष्ट्रीय कृषि नीति को दृष्टि में रखते हुए तथा यह भी देखते हुए कि राष्ट्रीय कृषि नीति 2000 के अन्तर्गत जिसमें दसवीं योजना के दौरान 4 प्रतिशत के वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया था, योजनावधि में 1.7 प्रतिशत वृद्धि दर को प्राप्त किया जा सकता है, सरकार ने स्वामीनाथन आयोग की अधिकांश संस्तुतियों को लागू करने के उद्देश्य से 26 नवम्बर 2007 को 'राष्ट्रीय कृषक नीति' घोषित की जिसमें केवल उत्पादन पर बल न देकर कृषकों की आर्थिक स्थिति पर बल दिया गया तथा जिसमें कृषि क्षेत्र के विकास की माप कृषि उत्पादन से न करके कृषकों की आय में वृद्धि से करने की बात कही गयी जिसकी संस्तुति कृषक आयोग ने की थी। इस नीति के सन्दर्भ में कृषक की अव्यंत ही व्यापक धारणा प्रयोग में ली गयी। इस नीति के सन्दर्भ में कृषक से आशय उन व्यक्तियों से है जो फसलों तथा अन्य प्राथमिक कृषि वस्तुओं के उगाने या जीवन यापन की आर्थिक क्रिया में लगे है। इसके अन्तर्गत सभी स्वामित्वधारी, किसान, कृषि श्रमिक, बटायीदार, काश्तकार पोल्ट्री, मधुमक्खी पालक, मत्स्य पालक इस प्रकार सभी जो दूर दराज तक किसी न किसी रूप में कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्र से जुड़े हैं, आदि सम्मिलित है। उल्लेखनीय है कि पहली कृषि नीति

1992 में तथा दूसरी कृषि नीति 2000 में जिसे इन्द्रधनुषी क्रान्ति वाली नीति कहते है, घोषित की गयी। ज्ञातव्य है राष्ट्रीय कृषि नीति निर्धारित करने की परम्परा की शुरूआत 1990 में हुयी।

राष्ट्रीय कृषक नीति की प्रमुख व्यवस्थाओं का अध्ययन हम निम्नांकित शीर्षकों में कर सकते हैं–

(क) प्रमुख नीतिगत लक्ष्य

1. कृषकों की निवल आय में पर्याप्त वृद्धि के द्वारा कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाना तथा यह सुनिश्चित करना कि इस आय में हुयी प्रगति ही कृषि प्रगति की माप होगी।
2. उत्पादकता, लाभदेयत्म तथा प्रमुख कृषि प्रणालियों की स्थिरता कायम करने के लिए भूमि, जल जैवि–विविधता तथा जेनेटिक संसाधनों को सुरक्षति तथा समुन्नत बनाना।
3. समर्थक सेवाओं जिसमें बीज, सिंचाई, ऊर्जा, मशीनरी, संयत्र, उर्वरक, ऋण आदि सम्मिलित है को विकसित करना।
4. फसलों, कृषि, पुश, मछली, जंगल आदि के सम्बंद्ध में बायोसिक्योरिटी को मजबूत बनाना।
5. कृषकों की आय बढ़ाने के लिए उचित मूल्य तथा व्यापार नीति की व्यवस्था करना।
6. कृषकों को उचित पर्याप्त तथा समय पर क्षतिपूर्ति के लिए उचित 'जोखिम प्रबन्ध के उपाय' की व्यवस्था करना।
7. सभी कृषि नीतियों तथा कार्यक्रमों में मानवीय तथा लिंगिंक आयामों को स्थान देना।
8. 'पोषणीय ग्रामीण आजीविका' पर स्पष्ट रूप से ध्यान रखना।
9. समुदाय केन्द्रित भोजन, जल तथा ऊर्जा सुरक्षा प्रणाली को आगे बढ़ाना तथा प्रत्येक बच्चा, स्त्री तथा आदमी पोषक सुरक्षा सुनिश्चित करना।
10. कृषि क्रियाओं तथा कृषि उत्पादों के विधामन में ग्रामीण युवकों को आकृष्ट करने के उपाये करना।
11. पोषणीय कृषि तथा बायोटेक्नॉलाजी तथा इनफार्मेशन कम्युनिकेशन टेक्नॉलीजी द्वारा विकसित उत्पादन तथा प्रक्रिया के आउटसोर्सिंग के सम्बन्ध में भारत को वैश्यिक केन्द्र के रूप में विकसित करना।
12. प्रत्येक कृषि तथा विज्ञान स्नातक को उद्यमी के रूप में विकसित तथा प्रशिक्षित करने की दृष्टि से कृषि पाठ्यक्रम का पुनर्गठन करना।
13. कृषकों के लिए एक सामाजिक सुरक्षा विकसित करना तथा लागू करना।
14. ग्रामीण परिवारों के लिए गैर कृषि रोजगार के पर्याप्त अवसर विकसित करना।
15. कृषि क्षेत्र के विकास के लिए कृषि को राज्य सूची से हटाकर इसे समवर्ती सूची में लाने की सिफारिश करना।

(ख) कृषकों को सशक्त करने के लिए सम्पतिमूलक सुधार

ये सुधार भूमि, जल, पशुधन, जिसमें मुर्गीपालन सम्मिलित है, बायो ससांधानों, मत्स्यपालन तथा पशु जेनेटिक संसाधनों से सम्बधेधित हैं। कृषक नीति में इस बात पर बल दिया गया कि देश में भूमि का वितरण अत्यन्त ही विषयक है इसलिए आवश्यक है कि भूमि सुधार कानून में बहुत सखती बरती जाय। यह महसूस करते हएु कि जल–दुर्लभता कृषि विकास में सबसे बड़ा अवरोध है कृषक नीति में रेनवाटर हारवेस्टिंग को वरीयता देने की बात कही गयी।

(ग) सहायक सेवायें

नीति में विज्ञान तथा टेक्नॉलाजी को कृषि क्रियाओं तथा उत्पादन वृद्धि में प्रमुख प्ररेक रूप में स्वीकार किया गया है नीति में उन नयी टेक्नॉलाजी को प्रोत्साहित करने की बात की गयी है जो भूमि तथा पानी की प्रति इकाई पर उत्पादकों में वृद्धि लायें। इसके अनुसार शोध स्ट्रेटजी प्रकृति तथा लघु किसान के पक्ष में लिंगिक संवेदनशील होनी चाहिए। नीति में एक नेशनल बायो टेक्नॉलाजी रेगुलेटरी अथॉरिटी के खोलने की बात भी कही गयी है जो डी0एन0ए0 टेक्नॉलाजी या टेक्नॉलाजी रेगुलेटरी अथॉरिटी के खोलने की बात भी कही गयी है जो डी0एन0ए0 टेक्नॉलाजी या जेनेटिक इन्जीनियरिंग के सुरक्षति तथा दायित्वपूर्ण प्रयोग को सुनिश्चित करेगा। नीति में संरक्षात्मक कृषि, नेशनल एग्रीकल्चरल बॉयोसिक्योरिटी सिस्टेम (एन0ए0बी0एस) जो फसल, पशुपालन, मत्सयपालन, फारेस्ट्री को अपने में सम्मिलित करता हुआ होगा, की स्थापना पर बल दिया गया है।

कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित सहायक सेवाओं में विज्ञान तथा टेक्नॉलजी के अतिरिक्त कृषि में प्रयुन्त होने वाली अनेक आंगतों जैसे– बीज, मृदा स्वास्थ्य, कीटनाशक, संयत्र, पशुचारा, ऋण तथा बीमा आदि की उपलब्धता तथा गुणवत्ता बढ़ाने के लिए अनेक कदम उठाये गये हैं। यह महसूस करते हुए कि कृषकों की स्थिति में सुधार बिना उनके उत्पादों के लाभदायक मूल्य के सम्भव नहीं है नीति में कृषि मूल्यों, विपणन तथा व्यापार के सम्बन्ध में विशेष ध्यान दिया गया है। इस दिशा में नीति में उल्लिखित निम्नांकित कदम इस प्रकार है–

- ✯ पूरे देश में एम0एस0पी0 प्रणाली का प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन।
- ✯ बाजार हस्तक्षेपक नीति (Market Intervention and chame MIS) को सुदृढ़ करने पर बल, विशेषरूप से वर्षापूरित क्षेत्रों में संवेदनशील वस्तुओं के सम्बन्ध में आकस्मिक परिस्थितियों में तेजी से इसको प्रयोग में लाने पर बल।
- ✯ सामुदायिक खाद्यान्न बैंक की स्थापना।
- ✯ पी0डी0एस0 के माध्यम से खाद्यान्न सुरक्षा बास्फेट का विस्तार।
- ✯ पी0पी0पी0 के अन्तर्गत कृषि वस्तुओं के लिए टर्मिनल बाजार विकसित करना।
- ✯ किसानों काल सेन्टर (के0सी0सी0) तथा 2–1 किसान काल सेन्टर 21 जनवरी 2004 से देश के लगभग सफी राज्यों में लागू है इस योजना की टोलफ्री टेलीफोन लाइन 1800–180–1551

है। यह किसान समुदाय को कृषि सूचना देता है। प्रत्येक किसान काल सेन्टर एजेन्ट एल–1 एजेन्ट कहा जा है, किसानों के पूछता तथा प्रश्नों का नियमित रूप से जवाब देते है।

✯ **ए0पी0ई0डी0ए0–** कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद– निर्यात विकास प्राधिकरण

यह कृषि उत्पाद निर्यात प्रर्वतक संस्था है। यह 14 से अधिक कृषि उत्पादों जैसे– पुष्पोत्याद तथा सब्जी, प्रंसंस्करित खाद्य, अनाज, से निर्मित उत्पाद हर्बल आदि के निर्यात का अनुश्रवण करता है। कृषि निर्यात क्षेत्रों के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार की शीर्ष एजेन्सी है। कृषि निर्यात क्षेत्रों में प्रमुख हैं– उत्तराखण्ड में बासमती चालव, मध्य प्रदेश में मसाला, तमिलनाडु में आम, महाराष्ट्र में प्याज, झारखण्ड में सब्जी तथा उड़ीसा में अदरक तथा हल्दी आदि के कृषि निर्यात क्षेत्र।

भारत में जेनीटैकिली मॉडीफाइड– जी0एम0सी0 (जीन परिशोधित) खेती

भारी विरोध के बावजूद भी इधर–हाल के वर्षों में विश्व में जी0एम0 खेती में वृद्धि हुई है। 2008 में भारत में जी0एम0 फसलों के अन्तर्गत 7.6 मिलियन हेक्टेयर भूमि थी जबकि यू0एस0ए0 में हेक्टेयर इसके अन्तर्गत है। भारत में जहाँ तक जी0एम0 खेती की बात है केवल कपास की ही खेती अन्तर्गत आती हैं भारत में वाणिज्यिक कृषि के लिए स्वीकृत एकमात्र जी0एम0 फसल (Bt- Bacillus thurigiensis) कपास की है। इसकी बुआई में भारत का स्थान विश्व में चौथा है। Bt कपास के बीजों की आपूर्ति करने वाली दो कम्पनियां है गुजराज की महिकों मोंसीटो तथा दूसरी तमिलनाडु की रासी (Rasi) सीडस लिमिटेड है उल्लेखनीय है कि पर्यावरण विशेषज्ञों के विरोध के बावजूद भी जेनेटिक इन्जीरियरिंग अप्रूबल कमेटी GTAC ने 2002 में Bt कपास के वाणिाज्यिक बुआई की स्वीकृति दी।

vH;kl iz'u

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. हरितक्रान्ति सम्बन्धित है–

(क) कृषि के व्यपारीकरण से (ख) कृषि उत्पादन में आत्मनिर्भरता से

(ग) पशु धन से (घ) कृषि उत्पादन वृद्धि से

2. भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि क्षेत्र का योगदान कितना है?

(क) 16.5 प्रतिशत (ख) 18.5 प्रतिशत

(ग) 30 प्रतिशत (घ) 65 प्रतिशत

प्रश्न– भारतीय कृषि की क्या विशेषताएं है ?

प्रश्न– हरित क्रान्ति से क्या समझते हैं ?

प्रश्न– हरित क्रान्ति का भारतीय कृषि पर क्या प्रभाव हुआ है ?

प्रश्न कृषि विकास हेतु सरकार द्वारा अपनाएं गये उपाय बताये ?

प्रश्न– भारतीय कृषि नीति से आप क्या समझते हैं ?

प्रॉजेक्ट कार्य

- भारतीय कृषि विकास की भावी सम्भावनाओं की सूची बनाएँ–
- पता करके एक सूची बनाएं की किसानों को आर्थिक सहायता देने हेतु वर्तमान कौन–कौन सी योजनाएँ चल रही है।

eqnzk

मुद्रा वह वस्तु है जो व्यापक क्षेत्र में विनियम के माध्यम, मूल्य के मापक, मूल्यों के संचय के साधन के रूप में स्वीकार की जाती है और जिसे सरकारी संरक्षण प्राप्त होता है।

- मुद्रा का अर्थ
- मुद्रा का प्रकार
- साख मुद्रा
- चेक
- बैंक ड्राफ्ट
- प्रतिज्ञा पत्र
- हुण्डी
- ग्रेशम का नियम
- मुद्रा स्फीति
- मुद्रा अपस्फीति
- मुद्रा संकुचन
- मुद्रा अवमूल्यन
- अर्न्तरराष्ट्रीय बाजार में
- भारतीय रुपये का मूल्य
- भारत की मौद्रिक नीति

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा को अलग–अलग दृष्टिकोण से परिभाषित किया है–

डॉ0 मार्शल के अनुसार– ''मुद्रा में वे सब वस्तुएं शामिल हैं जो किसी भी समय एवं स्थान पर बिना सन्देह और बिना किसी जांच के अन्य वस्तुओ और सेवाओं को खरीदने और व्यापारिक दायित्वों को चुकाने के साधन के रूप में प्रचलित हैं।''

मुद्रा का वर्गीकरण (प्रकार) मुद्रा का वर्गीकरण कई आधारों पर किया जा सकता है–

(अ) प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण,

(ब) वैधानिकता के आधार पर वर्गीकरण

(अ) प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण

प्रकृति के आधार पर मुद्रा दो प्रकार की होती है– वास्तविक मुद्रा तथा हिसाब की मुद्रा वास्तविक मुद्रा में सिक्के तथा नोट आते हैं तथा हिसाब की मुद्रा का प्रयोग हिसाब को रखने में किया जाता है।

(ब) वैधानिकता के आधार पर मुद्रा का वर्गीकरण

इसके अन्तर्गत विधिग्राह्य मुद्रा तथा साख की मुद्रा आती है। विधिग्राह्य मुद्रा रूपया, पैसा, करैंसी नोट है।

साख मुद्रा व्यक्ति के साख पर निर्भर करता है साख मुद्रा का निर्गमन व्यक्तियों अथवा व्यापारिक बैंको द्वारा होता है। साख मुद्रा के पाँच प्रचलित रूप होते हैं– चेक, बैंक ड्राफ्ट, प्रतिज्ञा पत्र, हुण्डी विनियम विपत्र

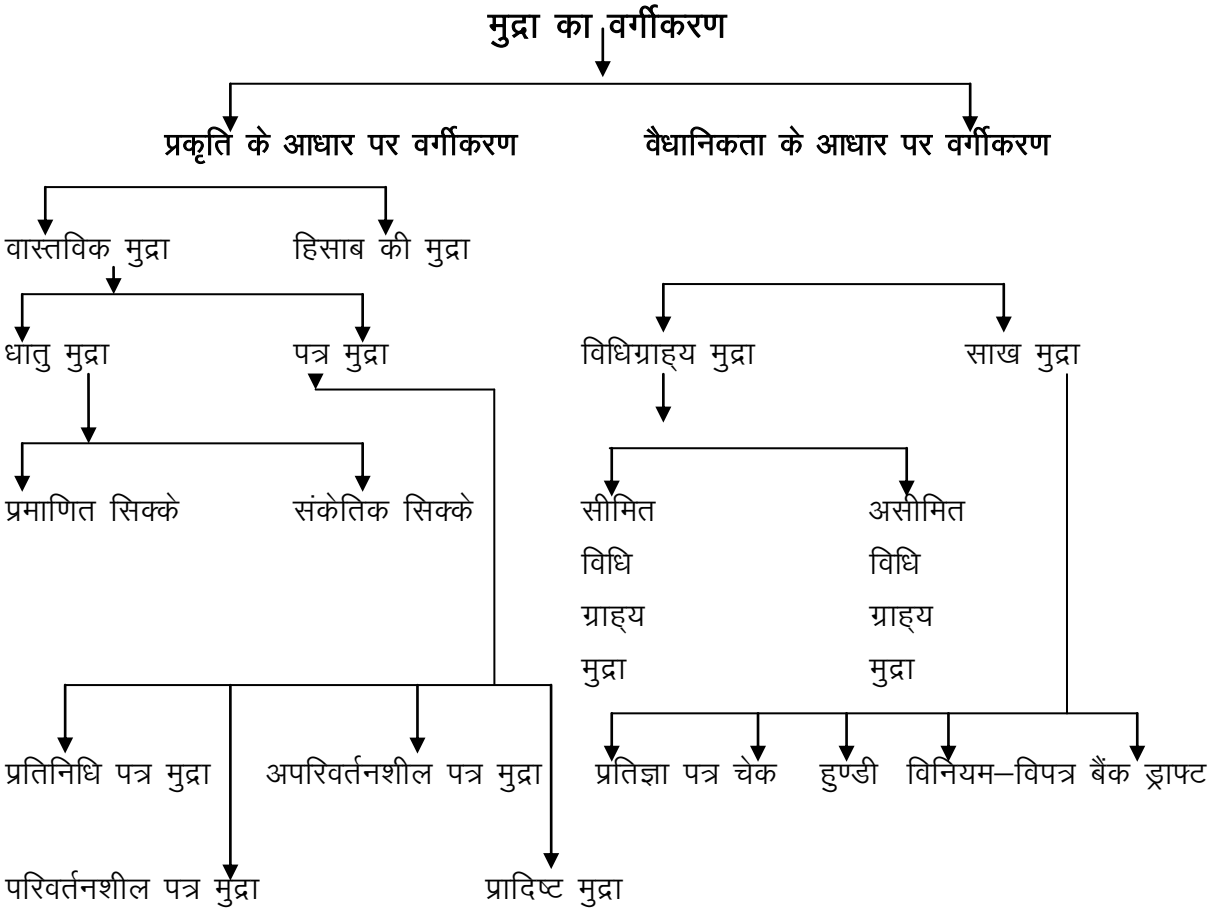

चेक

चेक एक शर्तरहित लिखित आज्ञा पत्र है जिस पर लेखक के हस्ताक्षर होते हैं तथा जिसका लिखने वाला बैंक विशेष को यह आदेश देता है कि वह निश्चित धनराशि का भुगतान उसके आदेशानुसार किसी लिखित व्यक्ति को या उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति या वाहक को दे चेक के तीन रूप होते हैं वाह्न चेक, आदेशानुसार चेक तथा रेखांकित चेक।

बैंक ड्राफ्ट

बैंक ड्राफ्ट आज्ञा–पत्र होता है जिसका लिखने वाला बैंक अपनी किसी शाखा को यह लिखित आज्ञा देता है कि उसमें लिखित धनराशि का उसमें उल्लिखित व्यक्ति, फर्म या संस्था को अथवा उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति के माँगने पर भुगतान कर दिया जाए।

प्रतिज्ञा पत्र

प्रतिज्ञा पत्र एक महत्वपूर्ण साख पत्र है। इसका प्रयोग सामान्तया ऋणों के लेन देन में कियाजाता है। इसका लेखक और भुगतान करने वाला दोनों अलग–अलग व्यक्ति होते हैं। प्रतिज्ञा–पत्र शर्तरहित प्रतिज्ञा हैं प्रतिज्ञापत्र द्वारा भुगतान किसी निश्चित व्यक्ति को या उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को या वाहक को दिया जाता है। इसके द्वारा भुगतान का समय निश्चित होता है। इसमें करेन्सी नोट सम्मिलित नहीं किए जाते हैं।

हुण्डी

हुण्डी भारतीय भाषा में लिखा गया एक साख–पत्र है जिसमें लिखने वाला किसी निश्चित व्यक्ति को आदेश देता है कि वह उसमें लिखित धनराशि का भुगतान स्वयं को या किसी आदेशित व्यक्ति को या उसके आदेशानुसार धारक को दे दे। यह विभिन्न भारतीय भाषाओं में तथा प्राचीन शैली में लिखी जाती है। इस पर मूल्यानुसार टिकट लगाया जाता है।

विनिमय विपत्र

विनिमय–पत्र एक लिखित आज्ञापत्र है जिस पर आदेशकर्ता के हस्ताक्षर होते हैं और यह शर्तरहित होता है। इसे ऋण देने वाला लिखता है और ऋण लेने वाला स्वीकार करता है। इसमें भुगतान की जाने वाली रकम निश्चित होती है। विनिमय पत्र लिखने वाले को स्वयं भुगतान प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता है।

ग्रेशम का नियम

''बुरी मुद्रा अच्छी मुद्रा को प्रचलन से बाहर कर देती है।''

ग्रेशम का नियम– ''यदि किसी देश में एक ही समय में अच्छी तथा बुरी मुद्रा का प्रचलन है तो बुरी मुद्रा में अच्छी मुद्रा को चलन से बाहर करने की प्रवृत्ति होती है।'' बुरी मुद्रा की यह प्रवृत्ति ग्रेशम के नियम से प्रसिद्ध है।

मार्शल के अनुसार– ''यदि बुरी मुद्राएँ परिणाम में सीमित नहीं है, तो वे अच्छी मुद्राओं को प्रचलन से बाहर कर देती है।''

कम तौल वाले, पुराने कम शुद्धता व कम मूल्य वाले सिक्के को बुरी मुद्रा कहते है, जबकि अच्छी मुद्रा में नयें व पूरे भार वाले सिक्के होते हैं, जिनकी शुद्धता प्रमाणित होती है।

ग्रेशम के नियम के लागू होने के प्रमुख कारण

अच्छी मुद्रा प्रचलन से बाहर होने का कारण–

- लोग अच्छी मुद्रा का संग्रह कर लेते हैं।
- लोग अच्छे– सिक्कों को पिघला लेते हैं।
- अच्छे सिक्कों का निर्यात हो जाता है।

बुरी मुद्रा का प्रचलन में रहने का कारण

- क्रय–विक्रय में अच्छी और बुरी मुद्रा में कोई भेद नहीं किया जाता।
- यह एक स्वभाविक प्रवृत्ति है कि लोग अच्छे सिक्के को अपने पास रखना चाहते हैं।

सामान्यतः कीमत स्तर में होने वाले निरन्तर वृद्धि को मुद्रा स्फीति कहते हैं।

क्राउथर के अनुसार, ''मुद्रा स्फीति वह परिस्थिति है जिसमें मुद्रा का मूल्य गिरता है अथवा वस्तुओं की कीमतें बढ़ती हैं।''

मुद्रा स्फीति दो प्रकार की होती है–

1. आंशिक मुद्रा स्फीति

2. पूर्ण मुद्रा– स्फीति

eqnzk LQhfr dh fo'ks"krk,¡

मुद्रा स्फीति एक गतिशील प्रक्रिया है जिसे दीर्घ काल में ही अनुभव किया जा सकता है। मूल्य वृद्धि के कारण मुद्रा के क्रय शक्ति में कमी आ जाती है जिस कारण प्रचलन में मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है। और इसके फलस्वरूप लोगों की मौद्रिक आय बढ़ जाती है। सामान्य आवश्यकताओं से अधिक मुद्रा का प्रसारण करना मुद्रा स्फीति का प्रमुख कारण है। मुद्रा स्फीति एक चक्रीय गति है। प्रत्येक पूर्ति पर अगर माँग अधिक होती है तो मुद्रा स्फीति की स्थिति होती है।

मुख्य रूप से मुद्रा प्रसार एक आर्थिक घटना है जो एक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत फलित होती है और अर्थिक शक्तिओं की प्रतिक्रिया द्वारा बलवती होती है। स्फीति मांग वृद्धि होती है या लागत वृद्धि होती है अथवा दोनों ही हो सकती है।

मुद्रा अपस्फीति तथा मुद्रा संकुचन

मुद्रा अपस्फीति अथवा मुद्रा संकुचन, मुद्रा स्फीति की विपरीत स्थिति होती है। मुद्रा संकुचन वह दशा है जिसमें माँग पूर्ति की अपेक्षा मुद्रा की साख गिर जाती है। इस कारण वस्तुओं के मूल्य में कमी आ जाती है।

क्राउथर के अनुसार, ''मुद्रा संकुचन वह अवस्था होती है जिसमें मुद्रा का मूल्य बढ़ता है। अर्थात कीमते गिरती हैं।''

मुद्रा संकुचन के कारण– मुद्रा संकुचन के निम्नलिखित प्रमुख कारण है–

1. बैंक दर ऊँची करना– देश का केन्द्रिय बैंक, बैंक दर बढ़ा देता है। तो मुद्रा के कम रह जाने से देश में मुद्रा का संकुचन हो जाता है।

2. भारी कर लगाना– सरकार कभी–कभी भारी कर लगाकर देश में चलन मुद्रा की मात्रा को कम देती है। जिससे मुद्रा संकुचन हो जाता है।

3. जनता से ऋणु लेना– जब सरकार जनता से ऋण लेकर चलन मुद्रा की मात्रा को कम देती है तो ऐसी स्थिति में मुद्रा संकुचन हो जाता है।

4. चलन मुद्रा की मात्रा कम करना– जब सरकार मुद्रा प्रसार में कमी करने के लिए मुद्रा की मात्रा को निरन्तर घटाती जाती है तो कभी–कभी मुद्रा की मात्रा वास्तविकता चलन में इनती कम रह जाती हैं कि माँग को भी पूरा नहीं कर पाती इसके फलस्वरूप मुद्रा संकुचन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

मुद्रा का अवमूल्यन

जब विदेशी मुद्राओं में देश की मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है तो इसे मुद्रा का अवमूल्यन कहते हैं। अर्थात जब कोई देश अपनी मुद्रा के बदले देश की पहले से कम मुद्रा लेने के लिए तैयार हो जाता है तो इसे मुद्रा का अवमूल्यन कहते हैं जैसे मान लीजिए भारत के 100 रु0 40 डालर के बराबर हैं यदि किसी कारणवश भारत सरकार 100 रुपये की विनिमय दर 30 डालर निर्धारित कर देती है तो इसे रुपयें का डालर में अवमूल्यन कहते हैं।

डॉ0 गांगुली के अनुसार–''अवमूल्यन का अभिप्राय देश के मुद्रा में बाह्य मूल्य में कमी कर देना है।''

अवमूल्यन के उद्देश्य– अवमूल्यन के निम्नलिखित उद्देश्य है–

✯ **देशी उद्योग धंधे को संरक्षण–** जब किसी देश में वस्तुओं के दामों में गिरावट होती है तो हमारे देश में उस देश से अधिक मात्रा में सामान आने लगता है। इससे स्वदेशी उद्योग धन्धे खतरे में पड़ जाते हैं। इसे रोकने के लिए अपने देश में मुद्रा का अवमूल्यन करना आवश्यक हो जाता है।

✯ **आन्तरिक मूल्य स्तर को ऊँचा करना–** जब देश में मूल्य स्तर गिरा रहता है तो अवमूल्यन के परिणाम स्वरूप देशी वस्तुएं विदेशियों के लिए सस्ती हो जाती हैं जिससे वे अधिक वस्तुएं माँगने लगते हैं। विदेशों में स्वदेशी वस्तुओं की मांग बढ़ने से देश में आन्तरिक मूल्य स्तर बढ़ने लगता है।

अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में भारतीय रुपये का मूल्य

अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में भारतीय रुपये का मूल्य मापने के लिए हम एक यू0एस0 डालर की तूलना भारतीय रुपये से करते हैं जो समय–समय पर बदलता रहता है। जैसे हमने एक डालर आज की तारीख में 60 रुपये (भारतीय रुपया) में खरीदा। अब इसी डालर का मूल्य बदल गया। मान लीजिए अब हमने एक डालर 80 रुपये में खरीदा तो भारतीय रुपये का मूल्य कम हो गया और यू0एस0 डालर का मूल्य बढ़ गया। अगर भारत में यू0एस0 डालर की मांग बढ़ जाती है तो भारतीय रुपये का मूल्य अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में कम हो जायेगा।

भारत की मौद्रिक नीति

मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य आर्थिक स्थायित्व लाना है। परन्तु भारत में पूंजी और तकनीक ज्ञान का अभाव होने के कारण आर्थिक साधन निष्क्रिय पड़े रहते हैं। इनके सामने समस्या है कि किस प्रकार अर्थव्यवस्था में व्याप्त अदृदेश्य बेरोजगारी को दूर किया जाए।

भारत की मौद्रिक नीति का उद्देश्य निम्नलिखित उद्देश्य है

1. मौद्रिक नीति और आर्थिक विकास को प्रोत्साहन– भारत में पूंजी निर्माण की दर बहुत ही नीची है। पूंजी निर्माण के लिए तीन स्वतन्त्र परिवर्तनशील तत्व आवश्यक हैं–

1. बचत 2. वित्तीय क्रियाशीलता 3. विनियोग

जिस सीमा तक मौद्रिक नीति बचत, वित्तीय क्रियाशीलता तथा विनियोग को प्रभावित कर सकती है, उस सीमा तक मौद्रिक नीति भारत के आर्थिक विकास में सहायक हो सकती है।

2. आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त वित्त प्रबन्धन करना और कीमत स्थिरता कायम रखना होना चाहिए।

3. आर्थिक असमानताओं को कम करना

आर्थिक विकास के साथ–साथ आर्थिक असमानताओं में वृद्धि होती है। यह एक बड़ी समस्या है। अतः मौद्रिक नीति में इस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए कि कम आय वाले व्यक्तियों को सस्ती दरों में ऋण उपलब्ध हो सके। भारत में राष्ट्रीकरण के बाद इस ओर कई कदम उठाये गये हैं। जैसे ग्रामीण विकास कार्यक्रम, नेहरू रोजगार योजना, प्राथमिक क्षेत्र आदि कई क्षेत्रों पर ऋणों पर सब्सिडी दी जा रही है। इस सभी प्रयोगों की सफलता के लिए समर्पित शासन तंत्र की आवश्यकता होती है जिसके अभाव में भारत में सुविधाओं का दुरुपयोग हो रहा है।

4. ऋण प्रबन्धक

भारत में मौदिक नीति का एक बहुत बड़ा कार्य सार्वजनिक ऋण का प्रबन्धन करना है। सार्वजनिक ऋण की व्यय लागत को न्यूनतम बनाना है। केन्द्रिय बैंक सरकारी बांड़ों के क्रय–विक्रय तथा सार्वजनिक ऋण के ढाँचे तथा संरचना में समय–समय पर परिवर्तन करने का दायित्व लेना है।

vH;kl ç'u

बहुविकल्प प्रश्न

1. बैंक ड्राफ्ट है–

(क) साख मुद्रा (ख) वास्तविक मुद्रा (ग) प्रतिनिधि पत्र मुद्रा (घ) परिवर्तनशील पत्र मुद्रा

2. मुद्रा संकुचन का कारण है–

(क) सरकार द्वारा भारी कर लगाना (ख) सरकार द्वारा जनता से ऋण लेना

(ग) सरकार द्वारा मुद्रा की मात्रा को निरन्तर घटाना (घ) उपर्युक्त तीनों कथन सत्य है।

3. चेक के रूप हैं–

(क) 1 (ख) 2 (ग) 3 (घ) 4

4. कीमत स्तर में निरन्तर वृद्धि कहलाती है–

(क) मुद्रा स्फीति (ख) मुद्रा अपस्फीति (ग) मुद्रा अवमूल्यन (घ) मौद्रिक नीति

5. निम्न में कौन सा मुद्रा का प्रमुख कार्य नहीं है–

(क) विनिमय का माध्यम (ख) मूल्य का मापन (ग) सामाजिक आय का वितरण (घ) मूल्य का संचय

लघु उत्तरीय प्रश्न

6. साख मुद्रा के प्रचलित रूपों के नाम लिखिए।

7. मुद्रा स्फीति तथा मुद्रा संकुचन में अन्तर लिखिए।

8. ग्रेशम के नियम की व्याख्या कीजिए।

प्रोजेक्ट कार्य

1. प्रमुख देशों की मुद्राओं की तूलना में भारतीय रुपये का मूल्य अंकित करते हुए चार्ट तैयार कीजिए।

2. शिक्षक/शिक्षिका अपनी इच्छानुसार मुद्रा से सम्बन्धित कोई भी प्रोजेक्ट बनवा सकते है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त– गुप्त सूर्य प्रकाश

2. मौद्रिक अर्थशास्त्र– सिन्हा बी0पी0

Hkkjr dk vkS|ksfxd fodkl

जब एक समान वस्तुओं के उत्पादन में अनेक उत्पादक इकाइयां लगी होती है तब यह सभी इकाइयां मिलकर उद्योग कहलाती हैं। औद्योगीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें उद्योगों का नियमित व क्रमिक विकास होता रहता है तथा धीरे–धीरे उसमें नवीनता एवं आधुनिकता का समावेश होता रहता है। औद्योगिक विकास करके ही कोई देश पिछड़ी या अविकसित अवस्था से विकसित देशों की श्रेणी में आ सकता है। औद्योगिक विकास के बिना आर्थिक विकास सम्भव नहीं है।

- भारत का औद्योगिक विकास
- लघु उद्योग
- कुटीर उद्योग
- भारत की नई औद्योगिक नीति
- बहुराष्ट्रीय कम्पनियां

जब किसी देश में औद्योगिक विकास होने लगता है तब उत्पादन की परम्परागत विधियों के स्थान पर क्रमशः अपेक्षाकृत नवीन विधियों एवं मशीनों का प्रयोग होने लगता है। जिस देश में औद्योगीकरण की गति जितनी तेज होगी, वह देश उतनी ही तेजी से आर्थिक विकास करता है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए उद्योगों का विकास होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए भारत ने अपनी दूसरी पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास को सर्वोत्तम प्राथमिकता दी है। इसके अलावा विभिन्न योजनाओं में औद्योगिक विकास हेतु सतत एवं सधन प्रयास किया है।

उद्योगों के विकास से उर्वरक, मशीनरी आदि की आपूर्ति में सुधार होता है। जिसके फलस्वरूप कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि होती है, कृषि पर जनसंख्या का दबाव कम होता है और रोजगार में वृद्धि होती है।

औद्योगीकरण से शहरीकरण को बढ़ावा मिलता है। ग्रामीणों का शहरों की ओर प्रस्थान होता है जहाँ उन्हें रोजगार के अवसर मिलते हैं। इससे ग्रामीणों की आय में वृद्धि होती है और उनके रहन–सहन में सुधार होता है और उनका दृष्टिकोण बदलता है।

औद्योगीकरण के द्वारा किसी देश के उपलब्ध साधनों का समुचित उपयोग किया जा सकता है। इसके द्वारा केवल प्राकृतिक साधनों का ही नहीं बल्कि मानवीय साधनों का भी अधिकतम एवं कुशलतम प्रयोग हो सकता है। योजना आयोग के अनुसार ''औद्योगिक विकास हमारे विकास की व्यूह रचना में संरचनात्मक, विविधिकरण, आधुनिकरण व स्वावलम्बन के उद्देश्यों की पूर्ति में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।''

औद्योगीकरण सभी देशों के लिए बहुत ही लाभदायक है परन्तु औद्योगीकरण के फलस्परूप अर्थव्यवस्था में कुछ हानियाँ भी होती है जैसे औद्योगीकरण के कारण वर्ग संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। पहला वर्ग पूंजीपतियों का तथा दूसरा वर्ग श्रमिकों का। पूँजीपतियों की संख्या कम होती है लेकिन उनके पास आय और सम्पत्ति अधिक होती है। इसके विपरीत मजदूरों या श्रमिकों की संख्या अधिक होती है। वे अपनी आजीविका चलाने के लिए पूँजीपतियों के औद्योगिक इकाइयों में काम करते हैं। पूँजीपति अधिक से अधिक लाभ कमाना चाहते है लेकिन श्रमिक अधिक मजदूरी, अधिक बोनस तथा बेहतर कार्य परिस्थितियों की मांग करते हैं जबकि पूंजीपति कम से कम भुगतान करके अधिक से अधिक लाभ कमाना चाहते हैं। अतः दोनों एक दूसरे का विरोध करते हैं जिसके कारण वर्ग संघर्ष उत्पन्न हो जाता है।

औद्योगीकरण के फलस्वरूप मुद्रा प्रसार हो जाता है, इसका कारण है कि बड़े पैमाने में उत्पादन आरम्भ होने में समय लगता है। इस कारण मांग का जन्म तो हो जाता है परन्तु वस्तु की पूर्ति तुरन्त नहीं हो पाती है। औद्योगीकरण से अनेक अन्य समस्याएँ भी उत्पन्न हो जाती है। जैसे जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होती है, जनसंख्या का शहरों में स्थानान्तरण होने लगता है। वातावरण प्रदूषित होने लगता है। हड़ताल तथा तालाबन्दी शुरू हो जाती है। नगरों में नागरिकों को असुविधा होने लगती है। कीमतों में वृद्धि होने लगती हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात समय–समय पर औद्योगिक नीतियाँ घोषित की गई जिनमें से 1948, 1956 तथा 1991 की औद्योगिक नीतियाँ विशेष महत्व की है।

1956 की औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र को प्रधानता दी है। 1991 की नई औद्योगिक नीति में उदारीकरण की प्रक्रिया चलायी गई जिसमें निजी क्षेत्र को अधिक स्वतन्त्र एवं महत्वपूर्ण भूमिका दी गई और सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को सीमित कर दिया गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक विकास के लिए उठाये गये कदमों के फलस्वरूप भारत में बड़े पैमाने पर औद्योगिक विकास हुआ जिससे आर्थिक विकास की प्रक्रिया तेज हुई है।

कुटीर उद्योग

कुटीर उद्योग वह उद्योग है जो पूर्ण रूप से या मुख्य रूप से परिवार के सदस्यों की सहायता से या तो पूर्णकालिक व्यवसाय के रूप मे या अंशकालिक व्यवसाय के रूप में चलायें जाते हैं जिनमें परम्परागत विधियों तथा स्थानीय कच्चे माल का प्रयोग होता है और जिनमें प्रायः स्थानीय बाजारों में बिक्री को लिए माल तैयार रहता है।''

कुटीर उद्योग में सूत कातना, गुड़ बनाना, बीड़ी बांधना, रस्सी और चटाई बुनना, रंग और छपाई करना, हस्तशिल्प आदि को सम्मिलित किया गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कुटीर उद्योगों का अत्याधिक महत्व है। महात्मा गाँधी के अनुसार ''भारत का मोक्ष उसके कुटीर उद्योग में निहित है।''

लघु उद्योग

लघु उद्योगों की परिभाषाएं विभिन्न आधारों पर की गई थी। मार्च, 1999 में लघु उद्योगों में उन सब कारखानों को शामिल किया गया जिसमें, एक करोड़ तक की पूंजी का मशीनों तथा संयत्रों में निवेश हुआ है। अति लघु उद्योग वे उद्योग है जिनमें 25 लाख तक की पूंजी का निवेश हुआ हो।

वर्तमान भारत में लघु उद्योगों में उच्च तकनीक निर्यात उद्योगों एवं लेखन सामग्री तथा औषधि निर्माण के क्षेत्र के लिए 5 करोड़ रुपयें की सीमा निर्धारित की है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्व

1. बेरोजगारी हल करने में सहायक है– इन उद्योगों में सीमित पूंजी द्वारा अधिक रोजगार अवसर पाया जाना सम्भव है।
2. ग्रामीण अर्थव्यवस्था के अनुकूल है– देश की अधिकांश जनसंख्या गांव में रहती है अतः ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सहायक है।
3. वंशानुगत कला का विकास– बनारसी साड़ी, बर्तन एवं हस्तशिल्प जैसे वंशानुगत कला का विकास होता है।

4. कृषि पर जनसंख्या का दबाव कम करने में सहायक लघु तथा कुटीर उद्योग व्यक्तियों को रोजगार देकर कृषि पर निर्भरता को कम करता है।

कुटीर तथा लघु उद्योग की समस्याएं

1. कच्चे माल की समस्या– निम्नलिखित तीन समस्याएं है–

- उपलब्ध कच्चे माल की घटिया किस्म।
- कच्चे माल का ऊँचा मूल्य
- कच्चा माल समय पर नहीं मिल पाता।

2. बड़े उद्योगों से प्रतियोगिता– बड़े उद्योगों से बनी वस्तुएं प्रमाणित, आकर्षण व सस्ती होने के कारण इनकी वस्तुएं बेचने में कठिनाई होती है।

कुटीर एवं लघु उद्योगों की समस्याओं के समाधान हेतु उपाय

- **सहकारी समितियों का विकास–** इससे कच्चे माल की प्राप्ति की समस्या, वित्तीय समस्या, विपणन की समस्या आदि अनेक समस्याओं का समाधान हो जाएगा तथा वस्तु का उचित मूल्य प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।
- **गुणवत्ता नियन्त्रण–** कुटीर एवं लघु उद्योगों को अपनी वस्तुओं में प्रमापीकरण के साथ–साथ गुणवत्ता नियन्त्रण भी करना चाहिए। इसके लिए लघु उद्योगों द्वारा बनाई हुई वस्तुओं को बड़े उद्योग कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल करें। उदाहरण–साइकिल, मोटर साइकिल व मोटर पुर्जे लघु उद्योगों के द्वारा बनाए जाने चाहिए तथा बड़े उद्योग इन पुर्जों की जोडकर साइकिल, मोटर साइकिल व मोटर बनानी चाहिए।

लघु उद्योगों के विकास के लिए सरकारी प्रयास

1. **विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना–** लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास की जिम्मेदारी लेते हुए केन्द्रीय सरकार ने इन उद्योगों के विकास के लिए एक अलग विभाग की स्थापना की है।
2. विपणन सुविधाएं– कुटीर एवं लघु उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं के विपणन में भी सरकार सहायता करते है। जैसे शोरूम अथवा इम्पोरियल
3. करो में रियायत– लुघ एवं कुटीर उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं पर सरकार द्वारा कोई कर नहीं लगाए जाते हैं और यदि लगाए जाते भी हैं तो इनकी दरे अत्याधिक कम होती है।

भारत की नई औद्योगिक नीति

1991 में भारत सरकार द्वारा घोषित औद्योगिक नीति में व्यापक परिवर्तन किए गए और उसे उदारवादी औद्योगिक नीति का स्वरूप प्रदान किया गया। नई औद्योगिक नीति के अनुसार औद्योगिक उत्पादकता में निरन्तर सुधार करना है तथा लाभदायक रोजगार अवसरों में निरन्तर वृद्धि करना, उद्योगों में व्याप्त कमियों तथा विकृतियों को दूर करना, नियन्त्रणों एवं प्रतिबन्धों में कमी करके भारतीय उद्योगों में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता का विकास करना, निर्यात बढ़ाने के लिए आयातों को उदार बनाना तथा पिछड़े क्षेत्रों का औद्योगिक विकास करना है।

नई औद्योगिक नीति में सरकार ने 6 उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी उद्योगों के लिए औद्योगिक लाइसेन्सिंग को समाप्त कर दिया है। ये 6 उद्योग है– शराब, सिगरेट, खतरनाक रसायन, सुरक्षा का सामान, तथा औद्योगिक विस्फोटक परन्तु इन उद्योगों में जो मदें लद्यु क्षेत्र के लिए आरक्षित है उनका उत्पादन करने के लिए लघु क्षेत्र की इकाइयों में लाइसेन्स की आवश्यकता नहीं होगी।

नई औद्योगिक नीति में लद्यु उद्योगों को यह विकल्प दिया गया है कि वे अपनी अंशधारिता का 24 प्रतिशत तक बड़े और अन्य औद्योगिक उपक्रमों को दे सकते हैं। इससे उन्हें अधिक मात्रा में पूंजी प्राप्त हो सकेगी।

अब तक सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 17 उद्योग सुरक्षित थे लेकिन नई नीति में इनकी संख्या घटाकर 3 कर दिया गया है। ये तीन क्षेत्र है– प्रतिरक्षा सम्बन्धी हथियार व उत्पाद, परमाणु उर्जा से सम्बन्धित खनिज तथा तेल परिवहन। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित उद्योगों को निजी क्षेत्र में खोला जायेगा।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ

बहुराष्ट्रीय कम्पनी ऐसी फर्मे होती है जिनका प्रधान कार्यालय तो एक देश में होता है किन्तु उनकी व्यापारिक क्रियायें बहुत से अन्य देशों में होती है। इन्हें राष्ट्र–पारीय निगम भी कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि इनकी क्रियाएं मूल देश में आरम्भ होने के बाद अन्य देशों में भी फैल जाती हैं।

बहुराष्ट्रीय निगमों की विशेषताएँ

बहुराष्ट्रीय निगमों की अनेक विशेषताएं है जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित विशेषताएँ है–

- ✯ अर्न्तराष्ट्रीय क्रियाकलाप– इन निगमों की क्रियायें कई देशों में फैली होती है। जैसे फिलिप्स इग्लैंग की कम्पनी हैं किन्तु इसका व्यापार भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बंगलादेश सहित विश्व के अनेक देशों में फैला है।
- ✯ प्रबन्धक– इसके प्रबन्धक में मण्डल में अनेक राष्ट्रों के व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। इनका आकार पूँजी और बिक्री दोनों ही दृष्टिकोण से बड़ा होता है तथा इन निगमों का पूँजी का हिस्सा अनेक राष्ट्रों में फैला होता है।
- ✯ विज्ञापन विक्रय तथा प्रचार पर बल– बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, विक्रय तथा प्रचार पर बल देती है। इनका कारोबार सामान्यतः विशिष्टीकरण होता है। जैसे लिप्टन, चाय, रेड लेबल चाय, जी0ई0सी0 पंखे, कोकाकोला, कोलगेट टूथपेस्ट, लिरिल, पियर्स, लाइफ ब्वाय नहाने के साबुन, फेयरएण्ड लवली, नायसिल नीविया आदि प्रसाधन सामग्री

बहुराष्ट्रीय निगमों से लाभ – निम्नलिखित लाभ है।

प्राकृतिक साधनों का विदोहन– वहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा विनियोजित पूँजी के सहयोग से प्राकृतिक साधनों का विदोहन करते हैं। जैसे भारत में खनिज तेल की खोज में इसकी अहम भूमिका है।

- ✯ रोजगार के अवसर मिलते हैं– बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ रोजगार के अवसर पैदाकर रोजगार देते हैं।

✯ बहुराष्ट्रीय कम्पनी केवल विश्व निवेश में ही प्रभावशाली नही होती अपितु अर्न्तराष्ट्रीय उत्पादन, व्यापार वित्त तथा तकनीक में भी महत्व रखती हैं।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से हानियाँ

✯ इन निगमों का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना होता है। ये राष्ट्र के हितों के स्थान पर अपने लाभ को प्राथमिकता देती है। बड़े आकार में होने के कारण स्वदेशी उद्योग इनकी प्रतिस्पर्द्धा में नही टिक पाते और वे नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार स्वावलम्बन के स्थान पर परावलम्बन को स्थान मिलता है।

✯ कभी–कभी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने साथ आधुनिकतम तकनीक नही लाती बल्कि पुरानी तकनीक से ही उत्पादन करती हैं। अतः उनके आगमन से देश का तकनीकी विकास होना आवश्यक नहीं होता है।

vH;kl ç'u

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. लघु उद्योग के लिए निवेश सीमा है–

(क) 3 करोड़ रुपये (ख) 1 करोड़ रुपये (ग) 60 लाख रुपये (घ) 50 लाख रुपये

2. भारत का आर्थिक विकास निर्भर है–

(क) सभी प्रकार के उद्योगों पर (ख) छोटे पैमाने के उद्योगों पर

(ग) बड़े पैमाने के उद्योगों पर (घ) कुटीर उद्योगों पर

3. औद्योगिक विकास होने से–

(क) बेरोजगारी बढ़ती है (ख) प्रति व्यक्ति आय घटती है

(ग) प्रतिव्यक्ति आय बढ़ती है (घ) कुछ कहा नहीं जा सकता

4. कुटीर उद्योग चलाये जाते हैं–

(क) परिवार के सदस्यों की सहायता से (ख) ट्रस्ट के द्वारा

(ग) मोहल्ले के कुछ लोग आपस में मिलकर (घ) केवल शहर वासियों द्वारा

5. सूत कातना उद्योग है–

(क) कुटीर उद्योग (ख) रसायन उद्योग (ग) आधार भूत उद्योग (घ) लघु उद्योग

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

6. औद्योगीकरण का अर्थ लिखिए।

7. कुटीर उद्योग किसे कहते हैं ?

8. कुटीर एवं लघु उद्योग का महत्व लिखिए।

प्रॉजेक्ट कार्य/क्रियाकलाप

1.अपने पड़ोस अथवा आस–पास के कुटीर तथा लघु उद्योगों की सूची बनाइए।

2. विभिन्न बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की सूची बनाकर उसके उद्दगम स्थान व उसके द्वारा उत्पादित होने वाली वस्तुओ पर एक प्रोजेक्ट रिपोर्ट तैयार करें।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. भारत का आर्थिक विकास– गुप्त सूर्य प्रकाश

2. भारत का आर्थिक विकास– सिन्हा डॉ0वी0सी0

इतिहास–

1. 6, 7, 8 एन0सी0ई0आर0टी0 इतिहास
2. 3, 4,5 हमारा परिवेश
3. 6 ,7, 8 हमारा इतिहास
4. प्राचीन भारत का इतिहासः वी0डी0 महाजन
5. भारत का इतिहासः डॉ0 हरिनेत्र पाण्डेय
6. मध्यकालीन इतिहास : हरिश्चन्द्र वर्मा
7. मध्यकालीन इतिहास : एल0पी0शर्मा
8. एन0सी0एफ0 2005

भूगोल

1. कक्षा 3, 4,5 हमारा परिवेश
2. कक्षा 6, 7, 8 पृथ्वी और हमारा जीवन
3. कक्षा 6, 7,8 भूगोल एन0सी0ई0आर0टी0
4. Certificate Physical and Human Geography : Goh cheng Leong (oxford India)
5. भौतिक भूगोल : सविन्द्र सिंह
6. भूगोल (भाग 1, खण्ड 1) : सुरेश प्रसाद
7. भूगोल : डी0आर0 खुल्लर
8. खगोलिकी : एस0एस0ओझा

संविधान

1. कक्षा 6, 7, 8 हमारा इतिहास और नागरिक जीवन
2. कक्षा 6,7,8,9,10 एन0सी0ई0आर0टी0
3. भारतीय संविधानः सुभाष काश्यप
4. भारतीय संविधान : डी0डी0 बसु
5. भारत का संविधान : भारत सरकार

अर्थशास्त्र

1. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त : सूर्य प्रकाश गुप्त
2. मौद्रिक अर्थशास्त्रः डॉ0 वी0सी0 सिन्हा
3. भारत का आर्थिक विकास : सूर्य प्रकाश गुप्त
4. भारत का आर्थिक विकास : डॉ0 वी0सी0 सिन्हा